भारत की विदेश नीति

Foreign Policy of India

प्रश्न पत्र-VIII
Paper-VIII
Group A (b)

एम.ए. राजनीति विज्ञान(उत्तरार्द्ध)
M.A. Political Science (Final)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक-124 001

Copyright © 2004, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

इकाई-I

अध्याय 1	भारत की विदेश नीति के उद्देश्य व सिद्धान्त	5
अध्याय 2	भारत की विदेश नीति के निर्माण की अवस्था व ऐतिहासिक विकास	16
अध्याय 3	भारत की विदेश नीति के निर्धारक तत्व	25
अध्याय 4	भारत में विदेश-नीति निर्माण की प्रक्रिया	30

इकाई-II

अध्याय 5	भारत की गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में भूमिका : भारत और त तीय विश्व	36
अध्याय 6	भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ	51

इकाई-III

अध्याय 7	भारतीय विदेश नीति में आर्थिक तत्व : विदेशी सहायता व व्यापार; बहुराष्ट्रीय संस्थाओं एवं निगमों की भूमिका	59
अध्याय 8	भारत की परमाणु नीति	69
अध्याय 9	भारत का सुरक्षा परिवेश और विदेश नीति	78

इकाई-IV

अध्याय 10	भारत-पाक सम्बन्ध : नीति व निष्पादन	87
अध्याय 11	भारत-चीन सम्बन्ध : नीति व निष्पादन	103
अध्याय 12	संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति भारत की विदेश नीति	115
अध्याय 13	रूस के प्रति भारत की विदेश नीति	127

इकाई-V

अध्याय 14	बदलता अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश और उसका भारतीय विदेश नीति पर प्रभाव	140
अध्याय 15	भारतीय विदेश नीति : उपलब्धियां एवं चुनौतियां	151
अध्याय 16	हिन्द महासागर क्षेत्रीय सहयोग एवं शान्ति का क्षेत्र	164

M.A. Political Science (Final)
PAPER-VIII
Group A (b)
Foreign Policy of India

Max. Marks : 100

Time : 3 Hours

Note: *10 questions will be set-2 from each Unit. The candidate is required to attempt 5 questions, selecting one from each Unit.*

Unit – I

Objectives and Determinants of India's Foreign Policy.

i. Formative Phase
   a. Legacies of the freedom struggle.
   b. Domestic background
   c. Nehru's perspective: critical analysis
   d. International Situation

ii. Process of foreign policy making in India.

Unit–II

India's role in the Non-alignment movement: India and the Third world. India and the UN.

Unit–III

Economic factors in India's Foreign Policy : Politics of aid and trade, Role of multinational institutions and corporations. India's Nuclear Policy.

India's security Environment and India's Foreign Policy.

Unit–IV

India-Pakistan relations : policy and performance

India-China relations: policy and performance

India's policy toward the USA and Russia

Unit–V

Changing international environment, its impact on Indian Foreign Policy.

India foreign policy: achievements and challenges

Indian ocean regional co-operation and zone of peace.

इकाई-I

अध्याय-1

भारत की विदेश नीति के उद्देश्य व सिद्धान्त

(Objectives and Principles of India's Foreign Policy)

आधुनिक युग अन्तर्राष्ट्रीयता का युग है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में राष्ट्रों की पारस्परिक अन्तर्निर्भरता वह सच्चाई है जिससे कोई देश बच नहीं सकता। आज विश्व के सभी देश अपने-अपने राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति व उनमें सम्वर्द्धन के लिये प्रयासरत् हैं। प्रत्येक देश अपने राष्ट्रीय हित के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विदेशी सम्बन्धों में स्वतन्त्र विदेश नीति का प्रयोग करता है। विश्व के अधिकांश देश यह प्रयास करते हुए देखे जाते हैं कि उनकी विदेश नीति का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े। इसलिए सभी देश अपने-अपने राष्ट्रीय हितों का अन्तर्राष्ट्रीय हितों से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं। वे अपनी विदेश नीति में राष्ट्रीय हित के उन लक्ष्यों को गौण स्थान पर रख देते हैं, जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में खट्टास पैदा करते हैं। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। भारत की अपने स्वतन्त्र व राष्ट्रीय हितों का अन्तर्राष्ट्रीय हितों से सामंजस्य स्थापित करने वाली विदेश नीति है। भारत की विदेश नीति को समझने से पहले हमें यह समझना चाहिए कि विदेश नीति क्या है ?

विदेश नीति क्या है ?

(What is Foreign Policy ?)

किसी भी स्वतन्त्र व प्रभुसत्तासम्पन्न देश की विदेश नीति मूल रूप में उन सिद्धान्तों, हितों तथा लक्ष्यों का समूह होती है जिनके माध्यम से वह देश दूसरे देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने , उन सिद्धान्तों, हितों व लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत् रहता है। किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति उसकी आन्तरिक नीति का ही एक भाग होती है जिसे उस देश की सरकार ने बनाया है। वास्तव में विदेश नीति शासक-वर्ग की इच्छा का परिणाम होती है जिसे क्रियान्वित करना सरकारी व गैर-सरकारी अभिकरणों का प्रमुख कर्त्तव्य है। विदेश नीति को कई विद्वानों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है :-

(1) मॉडेल्स्की के अनुसार-"कोई राष्ट्र अन्य राष्ट्रों के व्यवहार में परिवर्तन करवाने के लिए और गतिविधियों को अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण के अनुकूल बनाने के लिए जो उपाय करता है, विदेश नीति कहलाती है।"

(2) हार्टमेन के अनुसार-"विदेश नीति जानबूझ कर चयन किए गए राष्ट्रीय हितों का एक क्रमबद्ध वक्तव्य है।"

(3) फैलिकस ग्रास के अनुसार-"अपने क्रियात्मक रूप में विदेश नीति एक सरकार के प्रति एक देश द्वारा दूसरे देश के प्रति अथवा एक सरकार द्वारा एक अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के प्रति अपनायी गई एक विशेष क्रिया पद्धति है।"

(4) पी०ए० रेनाल्डज के अनुसार-"विदेश नीति का अर्थ एक राष्ट्र के विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा निर्धारित उन गतिविधियों की सीमाओं से है जिनके माध्यम से वे अपने सम्भावित राष्ट्रीय हितों की पूर्ति हेतु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से जुड़े अन्य राष्ट्रों के साथ कार्यरत् रहते हैं।"

(5) ग्लाइचर के अनुसार-"अपने व्यापक अर्थ में विदेश नीति उन उद्देश्यों, योजनाओं तथा क्रियाओं का सामूहिक रूप है जो एक राज्य अपने बाह्य सम्बन्धों का संचालित करने के लिए करता है।"

(6) ह्यूज गिब्सन के अनुसार-"विदेश नीति, ज्ञान और अनुभव पर आधारित एक ऐसी सुनिश्चित और व हत योजना होती है, जिसके द्वारा किसी सरकार के शेष संसार के साथ सम्बन्धों का संचालन किया जाता है। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय हितों को प्रोत्साहित और सुरक्षित करना होता है।"

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि विदेश नीति राष्ट्रीय हित को प्राप्त करने का वह साधन है जो अन्तर्राष्ट्रीय हितों को कोई हानि पहुँचाए बिना ही ऐसा करता है। मूल रूप से विदेश नीति के दो प्रमुख तत्व होते हैं। वे हैं ऐसे राष्ट्रीय उद्देश्य जिन्हें कोई राज्य प्राप्त करना चाहता है और उन्हें प्राप्त करने के साधन। विदेश नीति के निर्माता सबसे पहले राष्ट्रीय उद्देश्यों की पहचान करते हैं और फिर उनकी प्राप्ति के साधन सुनिश्चित करते हैं। सारांश तौर पर विदेश नीति राज्यों के ऐसे व्यवहार को कहा जा सकता है जिससे वे अपने कार्यों को नियन्त्रित करते हैं और अपने राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति के लिए अन्य राज्यों के व्यवहार में परिवर्तन या उस पर नियन्त्रण करने के प्रयास भी करते हैं।

विदेश नीति व राष्ट्रीय हित

(Foreign Policy and National Interest)

विदेश नीति और राष्ट्रीय हित में गहरा सम्बन्ध होता है। विदेश नीति को राष्ट्रीय हित के सन्दर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है। विदेशनीति के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित की रक्षा करने और उसको आगे बढ़ाने के लिए तर्कसंगत निर्णय लिए जाते हैं। किसी भी देश की विदेश नीति के उद्देश्य - सुरक्षा और एकता को बनाये रखना, राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरों को दूर करना, आर्थिक हितों को आगे बढ़ाना, राष्ट्रीय शक्ति का विकास करना जिससे राष्ट्रीय प्रतिष्ठा में व द्धि हो, राजनीतिक व्यवस्था को सुद ढ़ करना और अन्य देशों में उसके निर्यात की इच्छा करना, एक नयी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के उदय और उसे सुद ढ़ करने के प्रयास करना आदि हैं। इन समस्त उद्देश्यों का समूह देश का राष्ट्रीय हित होता है अर्थात् राष्ट्रीय हित विदेश नीति के सभी उद्देश्यों को समेट लेता है। राष्ट्रीय हित की रक्षा व सम्वर्द्धन के सभी प्रयास विदेश नीति के अन्तर्गत शामिल होते हैं। किसी भी देश की विदेश नीति की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह राष्ट्रीय हित को कहां तक प्राप्त कर पाती है। वास्तव में राष्ट्रीय हित ही विदेश नीति का मूल उद्देश्य या साध्य होता है। किसी भी देश की विदेश नीति का निर्धारण राष्ट्रीय हित के सन्दर्भ में ही किया जाता है। भारत ने अपने राष्ट्रीय हित की प्राप्ति व सम्वर्द्धन के लिए ही विश्व के सभी राष्ट्रों के साथ शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व व गुटनिरपेक्षता की नीति (Policy of Peaceful co-existance and Non-alignment) ही अपनाई है। आवश्यकता पड़ने पर भारत देश विशेष के प्रति अपनी विशेष नीति भी अपनाई है।

विदेश नीति और राष्ट्रीय हित के सन्दर्भ में एक बात जो ध्यान रखने योग्य है, वह यह है कि कोई भी देश राष्ट्र-हित को छोड़कर अन्य किसी आधार पर आनी विदेश नीति का निर्माण नहीं कर सकता और न ही उस देश की सरकार राष्ट्र-हित के विरुद्ध कार्य कर सकती। मार्गेन्थों ने कहा है-"जब तक विश्व राजनीतिक रूप से राष्ट्रों में संगठित है, तब तक राष्ट्रीय हित ही विश्व सम्बन्धों की प्राथमिकता है।" अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में कोई किसी का स्थायी मित्र या स्थायी शत्रु नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए राष्ट्रीय हित में भी कुछ बदलाव अवश्य आते हैं जो विदेश नीति को भी बदल देता है। उदाहरण के लिये भारत की पाकिस्तान के प्रति नीति में 13 सितम्बर 2002 के बाद बदलाव आया। उसने संसद पर आतंकी हमले के बाद पाकिस्तान से अपने राजनयिक सम्बन्ध तोड़ लिए थे। लेकिन इस वर्ष (2004) भारत ने फिर से अपनी क्रिकेट टीक को पाकिस्तान में खेलने की अनुमति दे दी और लाहौर बस सेवा फिर से शुरु की गई तथा सीमा पर से सेनाएं पीछे हटाकर युद्ध-विराम जैसी स्थिति कायम की। ऐसा राष्ट्रीय हित के द ष्टिगत ही किया गया। ऐसा ही बदलाव सभी देशों की विदेश नीतियों में देखने को मिलता है। जब कोई विदेश नीति राष्ट्र-हित के लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहती है तो उसे बदल दिया जाता है।

विदेश नीति के संचालन में राष्ट्रीय हित रूपी साध्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राष्ट्रीय हित तथा विदेश नीति के आपसी सम्बन्धों को जानने कि लिए राष्ट्रीय हित द्वारा विदेश नीति को प्रभावित करने वाली भूमिका का अध्ययन करना जरूरी है। राष्ट्र-हित की प्रभावकारी भूमिका को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

(1) राष्ट्रीय हित विदेश नीति को अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में प्रतिस्थापित करता है।

(2) राष्ट्रीय हित विदेश नीति को नियन्त्रित करने वाले मापदण्डों का विकल्प प्रदान करता है।

(3) राष्ट्रीय हित विदेश नीति को निरन्तरता प्रदान करता है और उसे गतिशील बनाता है।

(4) विदेश नीति स्वयं को राष्ट्रीय हित के सन्दर्भ में परिवर्तित अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में समायोजित करती है, अर्थात स्वयं को बदली अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुसार ढालती है।

(5) राष्ट्रीय हित विदेश नीति को मजबूत आधार प्रदान करते हैं क्योंकि ये समाज के समन्वित एवं सर्वसम्मति पर आधारित मूल्यों की अभिव्यक्ति होते हैं।

(6) राष्ट्रीय हित विदेश नीति का दिशा-निर्देशन करते हैं।

जिस तरह राष्ट्रीय हित विदेश नीति का आधार होता है, उसी तरह विदेश नीति राष्ट्रीय हित का निर्देशन करती है। कुछ विद्वानों का मानना है कि विदेश नीति को हमेशा राष्ट्र हित पर आधारित करना सम्भव नहीं होता। कई बार राष्ट्रीय हित इतने अस्पष्ट होते हैं कि उन्हें विदेश नीति द्वारा ही स्पष्ट किया जाता है। उदाहरण के लिए सुरक्षा का हित इतना अधिक अस्पष्ट होता है कि उसे स्पष्ट होने के लिए विदेश नीति से सम्बन्धित होना पड़ता है। इसलिए आज यह मान्यता प्रबल हो चुकी है कि जिस तरह राष्ट्रीय हित विदेश नीति का आधार है, उसी तरह राष्ट्रीय हित को आकार व अर्थ देने में विदेश नीति की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता।

भारत में विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्य

(Objectives of India's Foreign Policy)

किसी भी देश की विदेश नीति का निर्माण कुछ निश्चित उद्देश्यों को मध्येनजर रखकर ही किया जाता है। एक देश की विदेश नीति के उद्देश्य दूसरे देशों की विदेश नीतियों से कुछ साम्य व असाम्य अवश्य रहते हैं। आज सुरक्षा, सम द्धि व शान्ति का लक्ष्य किसी भी देश की विदेश नीति की आधारभूत विशेषता होता है। भारत भी इसी ध्येय को प्राथमिकता देता है। राष्ट्रीय सुरक्षा व आर्थिक

विकास भारत की विदेश नीति के आधारभूत उद्देश्य हैं। भारतीय संविधान निर्माताओं द्वारा वर्णित ये उद्देश्य आज भी विदेश नीति के महत्वपूर्ण भाग हैं। भारत में आज भी विदेश नीति के वही उद्देश्य हैं जो 57 वर्ष पहले थे। भारत की विदेश नीति के उद्देश्यों का संविधान में ही उल्लेख किया गया है। संविधान में सभी उद्देश्यों पर राष्ट्रीय हित के उद्देश्य को ही प्राथमिकता दी गई है। स्वतन्त्रता से पहले भी भारत की विदेश नीति के उद्देश्यों के लक्षण प्रकट होने लगे थे। उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद का विरोध भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोीन की महत्वपूर्ण विरासत व वर्तमान विदेश नीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य है जो नवीन उपनिवेशवाद व डालर साम्राज्यवाद का विरोध करती है। भारत की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

(1) **अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा बनाये रखना व उसे प्रोत्साहित करना (To maintain and promote International Peace and Security) :-** स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार द्वारा निर्धारित विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा कायम रखना बताया गया। उस समय रूस और अमेरिका में शीत युद्ध का जन्म हो चुका था। भारत अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को लेकर काफी चिन्तित था, क्योंकि भारत उपनिवेशवाद व दो विश्वयुद्धों का दंश अकेला झेल चुका था। भारत का यह भय था कि यदि विश्व में अशान्ति कायम हो गई तो उसका आगे बढ़ने का स्वप्न टूट कर बिखर जायेगा। ऐसे वातावरण में भारत अपने पड़ोसी देशों से भी सुरक्षित नहीं रह सकता था। इसी कारण नेहरु जी ने पंचशील-सिद्धान्त (1954) में भी इस ध्येय की सुरक्षा पर बल दिया ताकि भारत के पड़ोसी देशों तथा अन्य विश्व के देशों के साथ सम्बन्ध खराब न हों। भारत ने खाड़ी संकट, शीत युद्ध, लेबनान समस्या, अफगानिस्तान समस्या, वियतनाम समस्या आदि के प्रति चिन्ता व्यक्त करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि वह विश्व शान्ति व अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर सदैव चिन्तित रहा है। भारत ने ईराक संकट तथा अफगानिस्तान समस्या की समसामयिक प्रव त्ति के प्रति अमेरिका की नीति को सही ठहराया है और साथ में ही विश्व में आतंकवाद पर सार्वभौमिक मापदण्ड अपनाए जाने का आग्रह भी किया है। भारत आज भी विश्व शान्ति को अपना आदर्श श्मानकर अपनी विदेश नीति का संचालन करता है और साथ में ही राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत बनाए रखने की कोशिश भी करता है।

(2) **अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करना (Peaceful Settlement of International Disputes) :-** भारत का मापना है कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान शांतिपूर्ण ढंग से न किया गया तो विश्व में कभी शान्ति नहीं हो सकती तथा शान्ति के अभाव में न तो देश का आर्थिक विकास हो सकता है और न ही राष्ट्रीय सीमाएं सुरक्षित रह सकती हैं। इसी कारण भारत ने जम्मू और कश्मीर समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ में रखा ताकि इसका शान्तिपूर्ण ढंग से हल हो सके। पाकिस्तान की तरफ से की गई आतंकवादी कार्यवाहियों के बावजूद भी भारत ने धैर्य व संयम से ही काम लिया है। अरब-इजराइल समस्या, अफगानिस्तान संकट, क्यूबा संकट, खाड़ी संकट आदि के दौरान भारत ने इन संकटों के निवारण के लिए शान्तिपूर्ण उपायों का अवलम्बन लेने का ही समर्थन किया है। वर्तमान में ईराक व अफगानिस्तान में संयुक्त राष्ट्र संघ के शांति प्रयासों की भारत ने प्रसंशा की है। भारत ने हमेशा ही शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व व अहिंसा के सिद्धान्त को ही प्रमुखता दी है। इसके पीछे मूल ध्येय विश्वशान्ति कायम रखना ही रहा है। इसी कारण उसने अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं के माध्यम से ही हल करने पर जोर दिया है।

(3) **जातीय भेदभाव और साम्राज्यवाद का प्रबल विरोध (To oppose Racial discrimination and imperialism) :-** भारत स्वयं भी रंगभेद की नीति और साम्राज्यवाद दोनों विश्व मानवता व विश्व शान्ति दोनों के लिए भयंकर खतरा है। इसलिए वह स्वतन्त्रता से पहले

ही जातीय भेदभाव और साम्राज्यवाद के किसी भी रूप का विरोधी है। भारत ने शुरु से ही पराधीन राष्ट्रों की स्वतंत्रता का समर्थन किया है ताकि विश्व से उपनिवेशवाद स साम्राज्यवाद के जहर को नष्ट किया जा सके। भारत की आज भी संयुक्त राष्ट्र संघ में पूरी आस्था है, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ का चार्टर मानवाधिकारों की सुरक्षा का समर्थक है और वह विश्व से रंगभेद की नीति और साम्राज्यवाद को नष्ट करने के लिए वचनबद्ध है। भारत आज भी अमेरिका व कई यूरोपीय देशों में एशियाई व अफ्रीकी मूल के लोागों के प्रति अपनाई जाने वाली जातीय भेदभाव की नीति का विरोध करता है।

(4) **अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ सहयोग करना (Cooperation with International Organisations)** :- भारत की विदेश नीति प्रारम्भ से ही अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रति सकारात्मक रही है। भारत चाहता है कि विश्व से भूखमरी, बीमारी, निर्धनता, निरक्षरता, अकाल, आतंकवाद जैसी समस्याएं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के बिना हल नहीं हो सकती। इसी कारण वह विश्व स्वास्थ्य संगठन, कृषि संगठन, संयुक्त राष्ट्र बाल कोष आदि के साथ सहयोग करता रहता है। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रति सहयोग की नीति अपनाना भारत की विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य है।

(5) **निःशस्त्रीकरण का समर्थन (Support Disarmament)** :- भारत हमेशा से ही शस्त्र-दौड़ के प्रति चिन्तित रहा है। परमाणु शस्त्रों के विकास ने तो भारत की चिन्ता को और बढ़ा दिया। यद्यपि भारत स्वयं भी परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र है, लेकिन फिर भी विश्व शान्ति के लिए वह निःशस्त्रीकरण को आवश्यक मानता है। भारत का मानना है कि निःशस्त्रीकरण का सीधा सम्बन्ध आर्थिक विकास से होता है। यदि विश्व में पूर्ण निःशस्त्रीकरण हो जाए तो सम्पूर्ण विश्व से आर्थिक पिछड़ापन खत्म होने के कगार पर पहुंच सकता है। भारत हमेशा ही शान्ति का पुजारी रहा है। इसी कारण उसने निःशस्त्रीकरण के सभी प्रयासों का समर्थन किया है। यद्यपि भारत ने C.T.B.(1993) तथा NPT दोनों सन्धियों पर अपना समर्थन देने से इंकार कर दिया, परन्तु भारत आज भी समान सार्वभौमिक निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय कार्यक्रम का समर्थन करता है।

(6) **सैनिक सन्धियों से दूर रहना (To oppose Military Alliances)** :- भारत की विदेश नीति किसी भी सैनिक गुट या सन्धि का विरोध करने की रही है। भारत का मानना है कि विश्व में उभरने वाले सैनिक संगठन विश्व शान्ति के लिए भयानक खतरा हैं। इसलिए नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों को इनसे दूर रहना चाहिए। इसी कारण भारत ने SEATO, NATO तथा WARSA संधियों का हमेशा विरोध किया और वह किसी सैनिक संगठन का सदस्य नहीं बना। आज भी भारत किसी भी सैनिक संगठन के प्रयास का विरोध करता है।

(7) भारत की विदेश नीति और गुटनिरपेक्षता (Non Allignment) पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं। आज अधिकतर विद्वान गुटनिरपेक्षता को ही भारत की विदेश नीति कहते हैं। इसके पीछे मूल कारण यह है कि भारत शुरु से ही गुट निरपेक्षता की नीति का समर्थन करता रहा है। जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो उस समय विश्व का विभाजन पूंजीवादी तथा साम्यवादी गुट में हो चुका था। इनमें से प्रथम का नेत त्व अमेरिका और दूसरे का नेत त्व सोवियत संघ कर रहा था। भारत ने विश्व के नवोदित राष्ट्रों के सामने गुटनिरपेक्षता का विकल्प रखा ताकि विश्व में चल रहे शीत युद्ध को गर्म युद्ध में बदलने से रोका जा सके। इसी कारण 2004 में भी भारत ने इराक में अपनी सेना भेजने से मना किया। अतः भारत आज भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में गुट-निरपेक्षता की नीति का ही निर्वहन करता है।

(8) **अफ्रो-एशियाई एकता में विश्वास (Belief in Afro-Asian Unity)** :- भारत एशियाई तथा अफ्रीकी देशों की एकता बढ़ाने में विश्वास करता है। भारत आज सार्क (SAARC) का सदस्य

होने के नाते दक्षिणी एशिया को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनानें के विचार का समर्थन करता है। इसी तरह वह 'हिमतेक्ष' 'हिन्द महासागर रिम' क्षेत्रीय संगठन के द्वारा हिन्द महासागर में स्थित देशों के बीच क्षेत्रीय सहयोग बढ़ाने की नीति का समर्थक है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन द्वारा भी वह एशियाई व अफ्रीकी देशों में एकता बढ़ाने की नीति का समर्थन करता है।

(9) **पंचशील के सिद्धान्त का समर्थन (Support to 'Panchasheel')** :- भारत की विदेश नीति का निर्माण नेहरु युग में ही हुआ है। इसी कारण भारत की विदेश नीति को आलोचक आज भी नेहरु की नीति कहते हैं। नेहरु जी ने 1954 में विश्व के सामने अपने पांच सिद्धान्त पेश किए जो आज पंचशील सिद्धान्त के नाम से जाने जाते हैं। ये पांच सिद्धान्त हैं :- (i) एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता व स्वतन्त्रता का सम्मान करना, (ii) किसी के घरेलु मामलों में हस्तक्षेप न करना, (iii) किसी दूसरे पर आक्रमण न करना, (iv) मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास तथा (v) शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति में विश्वास। ये सभी सिद्धान्त आज भी भारत की विदेश नीति के महत्वपूर्ण ध्येय हैं।

(10) **शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति (Support Policy of Peaceful Coexistance)** :- भारत की विदेश नीति अहिंसा के विचार का समर्थन करती है। वह जीओ और जीने दो (Live and let live) के सिद्धान्त का पालन करती है। इसी कारण वह सभी देशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने की नीति है।

(11) **राष्ट्रमण्डल का समर्थन (Supporet Commonwealth of Nations)** :- भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य है। ब्रिटिश सम्राट या रानी राष्ट्रमण्डल का अध्यक्ष है। इसमें स्वतन्त्र व प्रभुसत्तासम्पन्न देश शामिल है। भारत का मानना है कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता बनाए रखना राष्ट्रीय हित में है। इसी कारण वह आज भी राष्ट्रमण्डल का समर्थक है।

(12) **नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का समर्थन (Support New International Economic Order)** :- भारत की विदेश नीति नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था (NIEO) की प्रबल समर्थक है। भारत चाहता है कि विश्व में आर्थिक सम्बन्धों की स्थापना की नए सिरे से की जानी चाहिए ताकि विश्व से आर्थिक भेदभाव खत्म हो सकें। इसी कारण वह WTO द्वारा किए जाने वाले भेदभावों का विरोध करता है। भारत का मानना है कि भेदभावपूर्ण आर्थिक सम्बन्धों को समाप्त किए बिना विश्व से गरीबी व भूखमरी को नष्ट करना असम्भव है। इसी कारण आज नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का समर्थन करता है और विश्व से नव साम्राज्यवाद को नष्ट करना चाहता है। इसके लिए वह ASEAN देशों के साथ सहयोग में व द्वि करके अपने इस ध्येय को क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग के द्वारा भी प्राप्त करने की द ढ़ इच्छा रखता है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति का प्रमुख ध्येय शुरु से ही रंगभेद की नीति व साम्राज्यवाद का विरोध करना रहा है। भारत ने हमेशा ही शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व तथा मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की नीति अपनाई है ओर विश्व शान्ति के विचार का प्रबल समर्थन किया है। पंचशील के सिद्धान्त के ध्येय के रूप में भारत की विदेश नीति अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की प्रबल पोषक रही है। गुटनिरपेक्षता, सैनिक संगठनों का विरोध तथा पंचशील के सिद्धान्त भारत की विदेश नीति के महत्वपूर्ण ध्येय रहे हैं। भारत की विदेश नीति पड़ोसी देशों तथा विश्व के अन्य देशों के प्रति सहयोग व त्याग की रही है। भारत ने हमेशा ही अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का सम्मान किया है और मानव अधिकारों के विकास में अपना अमूल्य योगदान दिया है। भारत आज भी नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का समर्थन करके विश्व से आर्थिक असमानता कम करके मानव अधिकारों की रक्षा करना चाहता है। भारत

मानव की भलाई के लिए आज निःशस्त्रीकरण के विचार का प्रबल समर्थक है। भारत की विदेश नीति आज भी लगभग वही है जो 1947 में थी। यद्यपि समयानुसार इसका कुछ विकास भी हुआ है, लेकिन विदेश नीति के मूल उद्देश्य आज भी वही हैं जो हमारे संविधान निर्माताओं ने निर्धारित किए थे। सरकारें बदलती रही हैं, लेकिन विदेश नीति का प्रवाह निरन्तर विकास की दिशा में रहा है। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय सुरक्षा और प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा करना ही भारत की विदेश नीति का ध्येय है।

भारत की विदेश नीति के सिद्धान्त

(Principles of India's Foreign Policy)

(1) **गुट निरपेक्षता का सिद्धान्त (Principle of Non-Alignment) :-** गुटनिरपेक्षता का सिद्धान्त भारत की विदेश नीति का केन्द्र बिन्दु है। विश्व शान्ति, मैत्रीपूर्ण सहयोग तथा एकता के सिद्धान्तों की पूर्ति इसी सिद्धान्त से की जाती है। भारत की विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धान्त होने के नाते कई बार राजनीतिक विश्लेषक भारत की विदेश नीति को गुटनिरपेक्षता की नीति तक कह देते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के वातारवण से उत्पन्न यह गुटनिरपेक्षता का सिद्धान्त समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक महत्वपूर्ण सच्चाई तथा भारतीय विदेश नीति की महत्वपूर्ण विशेषता है। सिद्धान्त का सार यह है कि यह सिद्धान्त हमेशा ही सैनिक गुटबन्दियों से दूर रहकर जागरुक मानसिकता के रूप में विश्वशान्ति को चुनौती देने वाली ताकतों का प्रबल विरोध करता रहा है। इस सिद्धान्त का सीधा अर्थ है-अमेरिकी तथा रूसी गुटों से अलग रहकर विश्व शान्ति के लिए प्रयास करना। भारत के प्रधानमन्त्री नेहरु ने 1947 में ही अपने देश की विदेश नीति के बारे में यह बात स्पष्ट कर दी थी कि भारत न तो पूंजीवादी गुट में शामिल होगा और न ही साम्यवादी गुट में, बल्कि इनसे दूर रहकर विश्वशान्ति के लिए ही प्रयास करता रहेगा। भारत ने सदैव अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति कायम रखने की दिशा में काम किया है चाहे उसे अमेरिका या रूस की आलोचना ही क्यों न सहन करनी पड़ी हो। भारत द्वारा गुटनिरपेक्षता को अपनी विदेश नीति का सिद्धान्त बनाने के पीछे अपना आर्थिक विकास, राजनीतिक स्वतन्त्रता व अक्षुण्ण सम्प्रभुता, विश्व शान्ति कायम रखना आदि उद्देश्य हो सकते हैं। गुटनिरपेक्षता की नीति के रूप में भारत की विदेश नीति को अवसरवादी, अलगाववाद, तटस्थता आदि कहकर भी आलोचना की गई, लेकिन भारत अपने आदर्श पर अड़िग रहा है। शीतयुद्ध के भयावह वातावरण, महाशक्तियों के दबाव जैसी परिस्थितियों में भी भारत ने इस नीति का त्याग नहीं किया है। एक सिद्धान्त के रूप में गुटनिरपेक्षता ने सदैव आंख मूंदकर कार्य नहीं किया है, बल्कि सही और गलत में भी अन्तर किया है। यद्यपि शीत युद्ध के अन्त के साथ ही भारतीय गुटनिरपेक्षता को अप्रांसांगिक माना जाने लगा है, लेकिन एक सिद्धान्त के रूप में यह आज भी भारत की विदेश नीति का महत्वपूर्ण अंग है।

(2) **पंचशील व शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिद्धान्त (Principle of Panchsheel and Peaceful Co-existance) :-** भारत की राजनीतिक संस्कृति सभी बाहरी राष्ट्रीयताओं को आत्मसात् करने की प्रतीति रखती है। भारत की राजनीतिक संस्कृति में अहिंसावाद का गुण पाया जाता है। भारत 'जीओ और जीने दो' (Live and Let Live) के सिद्धान्त में विश्वास करता है। इसका स्पष्ट प्रभाव भारत की विदेश नीति पर देखा जा सकता है। भारत ने अहिंसा के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने के लिए अपने विदेश नीति में पंचशील और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्त को प्रमुखता दी है। नेहरु जी ने 1954 में पंचशील सिद्धान्त को भारत की विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धान्त घोषित

किया था। भारत आज भी उसी सिद्धान्त का पालन करता है। ये पांच सिद्धान्त हैं : - (i) एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता व स्वतन्त्रता का सम्मान करना, (ii) एकं-दूसरे पर आक्रमण न करना, (ii) एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना, (iv) समानता के आधार पर एक-दूसरे को लाभ पहुंचाना तथा (v) शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व। इस पंचशील के आवश्यक पहलु के रूप में भारत शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्त में विश्वास रखता है। इसके पीछे अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को शान्तिमय बनाए रखने का मूल कारण ही निहित है। भारत ने अपनी सुरक्षा, आर्थिक विकास, उपनिवेशवाद व रंगभेद के विरोध, संयुक्त राष्ट्र संघ में आस्था, मैत्रीपूर्ण विदेशी सम्बन्ध आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पंचशील सिद्धान्त को ही अपनी विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धान्त अपनाया है।

(3) **उपनिवेशवाद तथा रंगभेद की नीति के विरोध का सिद्धान्त (Principle of the opposition to Colonalism and Policy of Apartheid)** :- भारत स्वयं भी उपनिवेशवाद और रंगभेद की नीति का दंश झेल चुका है। इसी कारण उसने अपनी विदेश नीति के सिद्धान्त के रूप में उपनिवेशवाद व रंगभेद की नीति के विरोध को प्रमुखता दी है। 1947 के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त करने वाले सभी एशियाई व अफ्रीकी देशों की स्वतन्त्रता का भारत ने जोरदार समर्थन किया है। भारत ने लीबिया, इन्डोनेशिया, मलाया, चीन, धाना आदि देशों की स्वतन्त्रता की जोरदार अपील UNO में की थी। भारत आज भी यूरोपीय व अमेरिकी देशों द्वारा फैलाए जा रहे नव-साम्राज्यवाद का विरोध करता है। भारत ने समय-समय पर विदेशों में भारतीय व एशियाई-अफ्रीकी मूल की जनता पर हो रहे जातीय अत्याचारों का प्रबल विरोध किया है। भारत आज भी आर्थिक साम्राज्यवाद और रंगभेद की नीति के विरोध के रूप में अपनी विदेश नीति में इस सिद्धान्त को महत्व देता है।

(4) **विश्व शान्ति का सिद्धान्त (Principle of World Peace)** :- भारत की विदेश नीति विश्व-शान्ति के सिद्धान्त की प्रबल समर्थक रही है। भारत हमेशा ही अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति कायम रखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने का समर्थन करता रहा है। भारत के संविधान में भी नीति निर्देशक सिद्धान्तों में स्पष्ट तौर पर कहा गया है-"भारत अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और क्षेत्र की उन्नति, राष्ट्रों के बीच न्याय और न्यायपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता व पंच-निर्णय द्वारा निपटाने के लिए प्रयत्न करेगा।" भारत ने विश्व शान्ति को खतरा उत्पन्न होने की हर हालत में सराहनीय कार्य किया है। कश्मीर समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपना, राष्ट्रमण्डल की सदस्यता ग्रहण करना, कच्छ के मामले को पंच निर्णय के लिए छोड़ना और पंचाट को मानना इस दिशा में महत्वपूर्ण माना जा सकता है। भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को भी हल करवाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। स्वेज नहर संकट, कोरिया संकट, कश्मीर समस्या, अफगानिस्तान संकट, खाड़ी संकट आदि के समय भारत ने विश्व के सामने मध्यस्थता व पंच निर्णय जैसे शान्तिपूर्ण विकल्प पेश किए। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति कायम रखने के लिए भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यवाही के प्रति ही अपनी निष्ठा व्यक्त की है। इसके लिए भारत ने निःशस्त्रीकरण तथा मानव अधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा किए गए प्रयासों को विश्व शान्ति की दिशा में महत्वपूर्ण माना है। विश्व शान्ति का आदर्श आज भी भारत की विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है।

(5) **आदर्शवाद बनाम यथार्थवाद का सिद्धान्त (Principle of Idealism Vs Realism)** :- भारत की विदेश नीति शान्ति, अहिंसा जैसे आदर्शों से युक्त रही है। आज भी भारत की विदेश नीति पर नेहरु, गांधी, महात्मा बुद्ध जैसे अहिंसावादी व शान्ति के पुजारी विचारकों का स्पष्ट प्रभाव है। नेहरु का पंचशील सिद्धान्त आज भारत की विदेश नीति को आदर्शवाद के सिद्धान्त

के रूप में प्रतिष्ठित करता है। भारत का विश्वशान्ति के प्रति अपनाया गया द ष्टिकोण भारत की विदेश नीति को आदर्शवाद की नीति घोषित करता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत की विदेश नीति कोरी आदर्शवादी है। सत्य तो यह है कि आवश्यकता पड़ने पर भारत ने आदर्शवाद का रास्ता छोड़कर यथार्थवाद का मार्ग भी ग्रहण किया है। इन्दिरा गांधी के शासन काल में भारत की विदेश नीति यथार्थवादी रही है। इसी तरह वाजपेयी युग में भारत की विदेश नीति आदर्शवाद तथा यथार्थवाद दोनों का सुन्दर मिश्रण रही है। 1962 में अमेरिका से सैनिक सहायता लेना भारत की गुटनिरपेक्षता तथा विश्व शान्ति के आदर्श के प्रतिकूल थी। इसी तरह बाद में रूस से सैनिक समझौता करना भारत के आदर्शवाद के विरुद्ध रहा है। इससे स्पष्ट है कि आवश्यकतानुसार भारत की विदेश नीति आदर्शवाद और यथार्थवाद दोनों को बराबर महत्व देती रही है।

(6) **गुजराल सिद्धान्त (The Gujral Doctrine)** :- 1996 में केन्द्र में 13 राजनीतिक दलों की सरकार बनने के बाद 1997 में भारत के प्रधानमन्त्री के रूप में इन्द्रकुमार गुजराल ने शपथ ली। गुजराल जी ने पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो प्रयास किए उन्हें गुजराल सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धान्त के तहत 1997 में भारत ने बंगला देश के साथ गंगा जल बंटवारे पर समझौता किया। इसी तरह भारत ने चीन के साथ भी शान्तिपूर्ण सम्बन्ध कायम करने के प्रयास किए। इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने के लिए गुजराल सरकार ने अपने पड़ोसी देशों की जनता को वीजा सम्बन्धी रियायतें प्रदान की। इस सिद्धान्त के तहत भारत ने अमेरिका के साथ भी सम्बन्धों को मधुर बनाने के प्रयास किए। भारत ने अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान के साथ मधुर सम्बन्ध कायम करने की दिशा में कई एकतरफा घोषणाएं भी की। इसी सिद्धान्त को आगे वाजपेयी जी ने भी अपनाया।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति विश्व शान्ति, गुटनिरपेक्षता, पंचशील व शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व आदि सिद्धान्तों पर आधारित रही है। विदेश नीति के सिद्धान्त के रूप में 1997 में गुजराल सिद्धान्त के रूप में जो महत्वपूर्ण अध्याय जुड़ा, वह आज भी भारत की विदेश-नीति का महत्वपूर्ण भाग है। वस्तुतः भारत की विदेश नीति आदर्शवाद व यथार्थवाद दोनों का सुन्दर मिश्रण रही है। भारत की विदेश नीति के सिद्धान्तों के रूप में आज भी वे सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं जो हमारे संविधान में वर्णित हैं और बाद में समयानुसार हमारे प्रबुद्ध विदेश नीति निर्माताओं व राजनेताओं द्वारा अपनाए जाते रहे हैं। सरकारें बदलती रही हैं, लेकिन भारत की विदेश नीति के सिद्धान्त स्थिर रहे हैं। भारत की विदेश नीति के आदर्शों के रूप में अपनाए गए सिद्धान्त आज भी भारत की विदेश नीति की महान विरासत है।

भारत की विदेश नीति के निहितार्थ

(Implications of India's Foreign Policy)

भारत की विदेश नीति के प्रमुख निहितार्थ या बातें निम्नलिखित हैं :-

(1) भारत की विदेश नीति असंलग्नता या गुटनिरपेक्षता की नीति है।

(2) भारत की विदेश नीति राष्ट्रीय हित को प्राथमिकता देती है।

(3) भारत की विदेश नीति सोवियत संघ तथा अरब राष्ट्रों की समर्थक है।

(4) यह अमेरिका व ब्रिटेन के साथ-साथ अन्य यूरोपीय राष्ट्रों से भी मधुर सम्बन्ध बनाए रखने की पक्षधर है।

(5) भारत की विदेश नीति सैनिक गुटबन्दी की विरोधी है।

(6) यह साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा रंगभेद के किसी भी रूप का प्रबल विरोध करती है।

(7) यह निःशस्त्रीकरण के सार्वभौमिक व पक्षपातपूर्ण कार्यक्रमों की समर्थक है।

(8) यह उत्तर-दक्षिण संवाद तथा उत्तर-उत्तर सहयोग की समर्थक है।

(9) यह संयुक्त राष्ट्र संघ तथा मानवाधिकारों की रक्षा करने वाली अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का पक्ष लेती है।

(10) यह एफ्रो-एशियाई एकता की समर्थक है।

(11) यह पड़ोसी देशों के साथ मधुर व सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों पर जोर देती है। गुजराल सिद्धान्त इसका प्रमुख आधार है।

(12) यह विश्व शान्ति के किसी भी प्रयास का प्रबल समर्थन करती है।

(13) यह नेहरु जी के पंचशील और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धान्त में विश्वास करती है और उसे ही आधार रूप में अपनाए हुए है। इसी कारण कुछ आलोचक भारत की विदेश नीति को नेहरु की नीति कहते हैं।

(14) यह विश्व में मानवाधिकारों को ईमानदारी के साथ लागू करने की बात का समर्थन लेती है।

(15) यह नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) की समर्थक है और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों की भेदभावपूर्ण व्यवस्था को समाप्त करना चाहती है। इसीलिए यह विश्व व्यापार संगठन (WTO) के भेदभावपूर्ण ढांचे व कार्यप्रणाली की निन्दा करती है।

(16) यह क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग को बढ़ाने की इच्छुक है और ASEAN के माध्यम से इस कार्य को पूरा करना चाहती है।

भारत की विदेश नीति के उपकरण

(Instruments of India's Foreign Policy)

किसी भी देश की विदेश नीति का क्रियान्वयन करने के लिए कुछ उपकरणों या साधनों की आवश्यकता होती है। विदेश नीति के उपकरण ही अमुक देश की विदेश नीति के उद्देयों को प्राप्त करने में मदद करते हैं। ये उपकरण ही अमुक देश की विदेश नीति के निर्माण या निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। भारत की विदेश नीति का निर्धारण व क्रियान्वयन जिन उपकरणों के द्वारा होता है, वे निम्नलिखित हैं :-

(1) **सन्धिवार्ता व सन्धि** :- भारत अपने अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को हल करने के लिए सन्धि वार्ताएं करता है। 1965, 1971 तथा 1999 में पाकिस्तान के साथ किए गए युद्ध-समझौते भारत की विदेश नीति का ही एक भाग हैं। पाकिस्तान के साथ भारत के सम्बन्धों का संचालन आज भी शिमला समझौते तथा लाहौर घोषणापत्र के रूप में होता है। भारत विश्व के अन्य देशों से भी सन्धिवार्ताएं जारी रखे हुए है और कई मामलों पर उसने विदेशी राष्ट्रों से सन्धियां व समझौते किए हैं।

(2) **अन्तर्राष्ट्रीय संगठन** :- भारत की विदेश नीति जिस अन्तर्राष्ट्रीय संगठन से संचालित व प्रभावित होती है, उनमें UNO प्रमुख है। इसके अतिरिक्त वह विश्व स्वास्थ्य संगठन, WTO, IMF, UNESCO, UNICEF आदि से भी प्रभावित होती है। भारत विश्व शान्ति व सम द्धि के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का पूरा सम्मान करता है।

(3) **क्षेत्रीय सहयोग संगठन** :- भारत की विदेश नीति का निर्धारण व क्रियान्वयन उसकी सदस्यता वाले क्षेत्रीय सहयोग संगठनों से भी होता है। इसमें SAARC (दक्षिणी एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन) आशियन तथा 'हिन्द महासागर रिम' क्षेत्रीय संगठन प्रमुख हैं।

(4) **युद्ध** :- भारत ने आवश्यकता पड़ने पर पाकिस्तान तथा चीन के साथ युद्ध भी करने पड़े हैं ताकि उसकी स्वतन्त्र विदेश नीति पर कोई आंच न आए। कारगिल की लड़ाई व 13 सितम्बर 2002 को भारत की संसद पर हुए आतंकवादी हमले के बाद भारत द्वारा सीमाओं पर फौज की तैनाती व युद्ध के लिए तैयार रहना उसकी विदेश नीति के आदर्शों की रक्षा करने के लिए ही एक प्रयास था।

(5) भारत अपनी विदेश नीति का संचालन कूटनीतिक अधिकारियों के माध्यम से करता है। विदेशों में भारत के दूत हैं जो उसकी विदेश नीति का क्रियान्वयन करते हैं और इसी आधार पर भारत की विदेश नीति में बदलाव भी आते रहते हैं। कूटनीतिक सम्बन्धों के आधार पर ही यह फैसला किया जाता है कि किस देश के साथ कैसी नीति अपनानी है।

(6) **गुप्तचर विभाग** :- भारत में उसकी विदेश नीति के उपकरण के रूप में एक गुप्तचर विभाग भी कार्य करता है। यह विभाग विदेशों में भारत के प्रति अपनाई जा रही नीतियों व राजनयिक व्यवहार की पूर्ण जानकारी सरकार को देता है जिसके आधार पर ही भारत अपनी विदेश नीति में परिवर्तन लाता है और उसे नए ढंग से क्रियान्वित करता है। हाल ही में पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों को मधुर बनाने की कवायद इसी के द ष्टिगत की गई है कि अब पाकिस्तान का द ष्टिकोण भारत के प्रति कुछ उदार है।

अतः निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय हित की रक्षा व उसकी प्राप्ति करना है। इसके लिए वह विदेशों में राजनीतिक अधिकारी नियुक्त करती है, अन्तर्राष्ट्रीय व क्षेत्रीय संगठनों का सम्मान करती है और अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर कूटनीतिक वार्ताएं जारी रखकर अपने निहित उद्देश्यों को प्राप्त करती है।

अध्याय-2

भारत की विदेश नीति के निर्माण की अवस्था व ऐतिहासिक विकास

(Formative Phase and Historical Evolution of India's Foreign Policy)

किसी भी देश की विदेश नीति इतिहास से गहरा सम्बन्ध रखती है। भारत की विदेश नीति भी इतिहास और स्वतन्त्रता आन्दोलन से सम्बन्ध रखती है। ऐतिहासिक विरासत के रूप में भारत की विदेश नीति आज उन अनेक तथ्यों को समेटे हुए है जो कभी भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन से उपजे थे। 1950 में संसद में बोलते हुए नेहरु जी ने कहा था-"आज यह नहीं समझना चाहिए कि हम विदेश-नीति के सर्वथा नए युग की शुरुआत कर रहे हैं, बल्कि हमारी विदेश नीति ऐसी है जो अतीत के सुन्दर इतिहास और राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित है। इसका विकास उन सिद्धान्तों के आधार पर हुआ है जिनकी घोषणा हम अतीत में कर चुके हैं।" इसका तात्पर्य यही है कि भारत की विदेश नीति के निर्माण में परम्परा तथा स्वतन्त्रता संग्राम की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यहां शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व व विश्वशान्ति का विचार हजारों वर्ष पुराने उस चिन्तन का परिणाम है जिसे महात्मा बुद्ध व महात्मा गांधी जैसे विचारकों ने प्रस्तुत किया था। इसी तरह भारत की विदेश नीति में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व रंगभेद की नीति का विरोध महान राष्ट्रीय आन्दोलन की उपज है। भारत की विदेश नीति के निर्माण की अवस्था को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

(I) स्वतन्त्रता से पहले भारत की विदेश नीति का निर्माण

(Making of foreign Policy in Pre-Independent India)

यद्यपि स्वतन्त्रता से पहले भारत की विदेश नीति का विकास भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में ही हुआ, लेकिन इससे पहले भी भारतीय चिन्तन में शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, अहिंसा जैसे सिद्धान्तों के साथ-साथ कौटिल्य के चिन्तन में कूटनीतिक उपायों का भी वर्णन मिलता है। कुछ विद्वान तो आज भी यह मानते हैं कि विदेश नीति के कुछ उपकरण व साध्य कौटिल्य की ही देन है।

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में अंग्रेजों ने भारत की विदेश नीति का निर्धारण अपने व्यापारिक हितों की सुरक्षा व व द्धि के द ष्टिगत किया था। अंग्रेजों ने चीन, अफगानिस्तान तथा तिब्बत को बफर स्टेट माना। उन्होंने चीन में भी विशेष रुचि ली और भारत-चीन सीमा का निर्धारण किया। अंग्रेजों ने नेफा (अरुणाचल प्रदेश) को भारतीय सीमा में ही रखा और भूटान व सिक्किम

को विशेष महत्व दिया। उन्होंने अपने व्यापारिक शर्तों के लिए इस क्षेत्र में सुरक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं संभाला।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व विदेश नीति

(India's Freedom Movement and Foreign Policy)

भारत की विदेश नीति के आधुनिक सिद्धान्तों का निर्माण भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना होने के बाद ही हुआ। 1885 से ही कांग्रेस ने अंग्रेजों की दमनकारी नीति का विरोध करना शुरु कर दिया और कुछ ऐसे बुनियादी सिद्धान्तों की नींव डाली जो आज भी भारत की विदेश नीति का आधार है अर्थात् राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेस की वास्तविक भूमिका व स्वतन्त्रता आन्दोलन के अनुभव ही आधुनिक भारत की विदेश नीति की प ष्ठभूमि हैं। कांग्रेस की स्थापना से पहले भारतीयों का विदेश नीति निर्धारण में कोई योगदान नहीं था। कांग्रेस की स्थापना के बाद ही भारत विदेश नीति के निर्धारण में भूमिका ने जन्म लिया।

1885 में पारित एक प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने उत्तरी बर्मा को अपने क्षेत्र में मिला लेने से ब्रिटेन की निन्दा की। इसी तरह 1892 में एक अन्य प्रस्ताव द्वारा भारत ने अपने आपको अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीतियों से स्वयं को स्वतन्त्रता बताया। इसी दौरान कांग्रेस ने भारत को बर्मा, अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत आदि निकटवर्ती राज्यों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही हेतु प्रयोग किये जाने पर असंतोष जताया गया। यह भारत की असंलग्नता की नीति की ही प ष्ठभूमि थी। प्रथम विश्व युद्ध तक कांग्रेस का अंग्रेजों के प्रति द ष्टिकोण-असंलग्नता की नीति का पालन अर्थात् ब्रिटिश नीतियों से स्वयं को दूर रखना ही रहा। इस दौरान कांग्रेस ने अंग्रेजों की साम्राज्यवादी व उपनिवेशवादी तथा दक्षिण अफ्रीका में लाई जा रही रंगभेद की नीति का विरोध किया जो आगे चलकर आधुनिक भारत की विदेश नीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य व सिद्धान्त बनी।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद 1921 में कांग्रेस ने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार की नीतियां भारत की नीतियां नहीं हैं और न ही वे किसी तरह भारत की प्रतिनिधि हो सकती। कांग्रेस ने यह भी घोषणा की कि भारत को अपने पड़ोसी देशों से कोई खतरा व असुरक्षा की भावना नहीं है। इसी कारण 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध में कांग्रेस ने अंग्रेजी हितों के लिए शामिल होने से मना कर दिया था। 1920 में चलाए गए खिलाफत आन्दोलन में भी भारत ने मुस्लमानों का साथ दिया जो आज भी भारत की अरब समर्थक विदेश नीति का द्योतक है। भारत ने हमेशा ही अरब-इजराइल संकट में अरबों का ही पक्ष लिया है। इसी दौरान कांग्रेस ने उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद विरोधी सम्मेलनों में भारत का प्रतिनिधित्व किया और उपनिवेशवाद के शिकार देशों के साथ मिलकर अंग्रेजों की नीतियों की निन्दा की। कांग्रेस के ही प्रयासों के परिणामस्वरूप 15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हो गया और अब भारत ने स्वतन्त्र विदेश नीति का निर्माण किया जो अतीत के अनुभवों पर व राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित थी।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की विरासत

(Legacies of Freedom Movement)

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मार्गदर्शन में 1885 से 1947 तक चलाया गया राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन ऐसी कुछ विशेष बातें या प्रभाव स्वतन्त्र भारत को सौंप गया जो स्वतन्त्र विदेश नीति के निर्माण से उसके वर्तमान विकास के स्तर तक महत्वपूर्ण विरासत के रूप में विद्यमान हैं। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की विरासत के रूप में भारत की विदेश नीति के प्रमुख सिद्धान्त व उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

(1) **असंलग्नता की नीति** (Policy of Non-Aligbment) :- स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान ही

कांग्रेस ने अंग्रेजों की अनेक नीतियों को भारत के सन्दर्भ में असम्बद्ध घोषित किया था। 1892 में कांग्रेस ने अपने को ब्रिटिश नीतियों से अलग बताया। इसी तरह 1921 में उसने घोषणा की कि वह ब्रिटिश सरकार की किसी भी नीति का प्रतिनिधित्व नहीं करती। कांग्रेस की यह नीति आगे चलकर विश्व स्तर पर गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का आधार बनी। भारत आज भी विश्व के सैनिक गुटों से असम्बद्धता रखता है।

(2) **साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा रंगभेद की नीति का विरोध (Policy of opposition to Imperalism, Colonialism and Racial Discrimination)** :- राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान ही 1885 में कांग्रेस ने उत्तरी बर्मा को भारत में मिलाने की निन्दा की और 1892 मे स्वयं को ब्रिटिश उपनिवेशवादी नीतियों से स्वतन्त्र घोषित किया। 1920 में भी राष्ट्रीय कांग्रेस ने आयरलैण्ड के राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन किया। इसी तरह साम्राज्यवाद के विरुद्ध 1927 में आयोजित ब्रुसैल्स सम्मेलन में भी भारत ने पराधीन व पिछड़े देशों के विरुद्ध साम्राज्यवादियों के शोषण की निन्दा की। कांग्रेस ने दक्षिण अफ्रीका में चलाई जा रही रंगभेद की नीति का भी विरोध किया। स्वतन्त्रता के बाद भी भारत ने विश्व के उन सभी पराधीन देशों के स्वतन्त्रता आन्दोलनों का समर्थन किया जो कभी उपनिवेशवाद के शिकार रह चुके थे। भारत ने स्वतन्त्रता के बाद अपनी विदेश नीति में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद तथा रंगभेद की नीति के विरोध के सिद्धान्त को शामिल किया और सिद्धान्त आज भी भारत की विदेश नीति की महान ऐतिहासिक विरासत है जो इसे राष्ट्रीय आन्दोलन से प्राप्त हुई है।

(3) **अरब समर्थक नीति (Pro-Arab Policy)** :- प्रथम विश्व युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने तुर्की के विरुद्ध जो कठोर कदम उठाए, उनकी भारत ने निन्दा की और तुकी के प्रति अपनी सहानुभूति दिखाई। इस दौरान चलने वाले खिलाफत आन्दोलन का भारतीय कांग्रेस ने समर्थन किया। मुसलमानों के प्रति भारत का सहयोगपूर्ण रवैया आज भी विदेश नीति के अन्तर्गत अरब समर्थन में देखा जा सकता है। अर्थात् मुस्लिम देशों के प्रति भारत का सकारात्मक रवैया आधुनिक विदेश नीति की महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विरासत है।

(4) **शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का सिद्धान्त (Policy of Peaceful Coexistance)** :- राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान कांग्रेस की नरम विचारधारा वाला गुट शान्तिपूर्ण ढंग से अपने उद्देश्य के लिए लड़ रहा था। महात्मा गांधी व नेहरु जी की अहिंसावादी नीति ही आगे चलकर शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धान्त के रूप में भारत की विदेश नीति का सिद्धान्त बनी। शान्तिवादी गुट का 'जीओ और जीने दो' (Live and Let Live) का सिद्धान्त आज भी विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है।

(5) **पड़ोसी देशों से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध (Friendly Relations with Neighbours)** :- राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय ही कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया था कि भारत को पड़ोसी देशों से कोई खतरा नहीं है। इसके पीछे निहित विचार यही था कि भारत की नीति प्रारम्भ से ही पड़ोसी देशों के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने की रही है। भारत आज भी पाकिस्तान व अन्य पड़ोसी देशों से मधुर सम्बन्धा स्थापित करने को प्राथमिकता देता है।

(6) **विश्व शान्ति व अन्तर्राष्ट्रवाद का समर्थन (Support to World Peace and Internationalism)** :- भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अंग्रेजी का प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध में साथ देने से इन्कार कर दिया और साम्राज्यवाद के खिलाफ संगठित 'League Against Imperialism' को ब्रुसैल्स सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया। भारत का हमेशा यही उद्देश्य रहा है कि विश्व शान्ति के किसी भी कदम का भरपूर स्वागत किया जाना चाहिये। आज भी भारत की विदेश नीति के प्रमुख सिद्धान्त के रूप में विश्वशान्ति के किसी भी विचार को प्रमुखता दी जाती है। भारत में विश्व शान्ति

का विचार आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना महात्मा बुद्ध व महात्मा गांधी के समय में था।

(II) स्वतन्त्रता के बाद भारत की विदेश नीति का निर्माण व विकास

(Making and Development of India's Foreign Policy after Independence)

15 अगस्त, 1947 को भारत की स्वतन्त्रता के बाद भारत की विदेश नीति का निर्माण जवाहर लाल नेहरु के मार्गदर्शन में ही हुआ। यद्यपि 1925 में ही नेहरु को विदेश विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया था, लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन की व्यस्तता के कारण नेहरु जी भारत के लिए स्वतन्त्र विदेश नीति नहीं दे सके। आगे चलकर ही उन्होंने भारत की विदेश नीति का प्रारूप तैयार किया ताकि स्वतन्त्र भारत के अन्दर उसे लागू किया जा सके। स्वतन्त्रता के बाद नेहरु जी ने स्पष्ट किया कि भारत अमेरिका, ब्रिटेन तथा सोवियत संघ के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम रखेगा। नेहरु जी ने स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति पर 7 सितम्बर 1947 को राष्ट्र के नाम सन्देश देते समय कहा कि "हमारा विचार प्रगतिशील तरीके से कार्य करने का है जिनसे हम अपने आंतरिक मामलों और विदेशी सम्बन्धों में कार्य करने की स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकें। हमारा विश्वास है कि शक्ति और स्वतन्त्रता अविभाज्य है और यदि कहीं भी किसी को स्वतन्त्रता से वंचित किया जाता है तो उससे कहीं अन्यत्र स्वतन्त्रता को खतरा उत्पन्न होता है जिसके कारण युद्ध और संघर्ष उत्पन्न होता है। हम विशेष रूप से उपनिवेशी और पराधीन देशों कसे स्वतन्त्र देखने के इच्छुक हैं और सभी जातियों के लिये सिद्धान्त व व्यवहार में समान अवसरों को मान्यता देना चाहते हैं। हम किसी पर प्रभुत्व नहीं चाहते और हम अन्य लोगों पर कोई विशेषाधिकार पूर्ण स्थिति का दावा नहीं करते हैं। लेकिन हम इस बात का अवश्य दावा करते हैं कि हमारे लोगों के साथ समान और सम्मानजनक व्यवहार हो। चाहे वे कहीं भी जायें, उनके विरुद्ध किसी तरह का भेदभाव न हो।"

राष्ट्रीय आन्दोलन के समय ही नेहरु जी की अंग्रेजी सरकार की नीतियों के प्रति असम्बद्धता ने अपना उग्र रूप ले लिया था। अन्तरिम सरंकार के प्रधानमन्त्री की हैसियत से उन्होंने 1946 में ही भारत की विदेश नीति के अन्तर्गत स्थान पा गए और आज भी हैं। इन उद्देश्यों में स्वतन्त्र विदेश नीति, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का समर्थन, उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद का विरोध, रंगभेद की नीति की निन्दा, पराधीन देशों की स्वतन्त्रता का समर्थन, पड़ोसी देशों से मधुर सम्बन्ध, प्रवासी भारतीयों की विदेशों में सुरक्षा आदि शामिल हैं। आगे चलकर शीत युद्ध की परिस्थितियों को देखते हुए नेहरु ने असंलग्नता की नीति को ही भारत की विदेश नीति का आधार बनाया। उसने घोषणा की कि भारत किसी गुट में शामिल न होकर ही विश्व शान्ति के लिए प्रयास करेगा।" नेहरु ने यह भी स्पष्ट किया कि भारत की गुटनिरपेक्षता तटस्थ नहीं है। यह अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति सचेत रहने की है। अमेरिकन सीनेट में भाषण देते हुए नेहरु जी ने कहा था-"जहाँ स्वतन्त्रता के लिए खतरा उपस्थित हो, न्याय को धमकी दी जाती हो अथवा जहाँ आक्रमण होता है, वहाँ न तो हम तटस्थ रह सकते हैं और न ही रहेंगे।" नेहरु जी की इसी नीति ने भारत को अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर सम्मान दिलाया।

नेहरु जी ने अपनी विदेश नीति में राष्ट्रीय हित के उद्देश्य को सर्वोपरि स्थान दिया। 4 दिसम्बर 1947 में उन्होंने संविधान सभा में कहा कि "हो सकता है कि हम शान्ति और स्वतन्त्रता की ही बात करें और जो हम कहें उसे द ढ़ संकल्प होकर लागू करना भी चाहें। परन्तु अन्ततोगत्वा, सरकार उस देश के हित में ही कार्य करेगी जिस पर वह शासन करती है और कोई भी सरकार ऐसा कार्य नहीं कर सकती जो देश हित के विरुद्ध हो।" नेहरु जी ने राष्ट्रीय हित के साथ-साथ विश्व शान्ति के लिए शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्त का अपने पंचशील सिद्धान्त में प्रतिपादन किया। नेहरु

जी ने कहा कि हमारी नीति ऐसी परिंस्थितियों को रोकने की होनी चाहिये जो विश्व शान्ति को खतरा उत्पन्न करे। इसी कारण भारत किसी सैनिक गुट में शामिल नहीं हुआ। विश्व शान्ति के लिए ही नेहरु जी ने निःशस्त्रीकरण का समर्थन करते हुए उसे भारत की विदेश नीति में जगह दी। विश्व शान्ति के लिए नेहरु जी ने उन सभी देशों की स्वतन्त्रता का समर्थन किया जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे थे।

नेहरु युग में भारत की विदेश नीति का व्यावहारिक रूप

(Foreign Policy of India in the Nehru Period)

जिस समय नेहरु ने भारत के प्रधानमन्त्री का पद गहण किया, उस समय भारत-पाक विभाजन से उत्पन्न कश्मीर समस्या एक प्रमुख मुद्दा थी। कश्मीर पर कबायली आक्रमण के विरुद्ध नेहरु ने UNO में शिकायत की और UNO आयोग का कठन किया गया। 1950 में कोरिया संकट में भारत ने दक्षिण कोरिया का पक्ष लिया। उसके बाद हिन्द चीन विवाद, स्वेज नहर संकट के दौरान भी भारत की विदेश नीति काफी सफल रही। 1951 में भारत ने सानफ्रांसिसको सम्मेलन में होने वाली जापान सन्धि पर आपत्ति उठाकर स्वतन्त्र द ष्टिकोण का परिचय दिया और इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किए। 1954 में नेहरु जी चीन की यात्रा पर गए और दोनों देशों में पंचशील सिद्धान्त लागू करने पर समझौता हुआ। इससे हिन्दू चीनी भाई-भाई का नारा बुलन्द किया गया। इसके बाद 1955 में बान्डुंग सम्मेलन में पंचशील सिद्धान्त को स्वीकार किया गया। 1959 में दलाई लामा ने भारत में राजनीतिक शरण प्राप्त की। इसी कारण 1962 में भारत पर चीन ने आक्रमण कर दिया और इस अग्नि परीक्षा में भारत की विदेश नीति असफल रही। इस दौरान नेहरु जी विदेशी सहायता प्राप्त करने के लिए अमेरिका व रूस गए। अमेरिका ने भारत की पूरी मदद नहीं की। इसी तरह 1962 में भारत को रूस से अधिक सहायता प्राप्त नहीं हो सकी। इसी कारण नेहरु जी की विदेश नीति की सर्वत्र निन्दा हुई। आलोचकों ने कहना शुरु कर दिया कि भारत अब गुटनिरपेक्ष देश नहीं रह गया है।, चीनी आक्रमण ने उसकी पोल खोल दी है और भारत द्वारा रूसी सहायता प्राप्त करने से भारत की गुटनिरपेक्षता अब प्रासंगिक व निष्पक्ष नही रह गई है। इसके बाद 1964 में नेहरु जी की म त्यु हो गई और आलोचकों ने नेहरु की नीति को भारत की विदेश नीति मानने की बजाय, उसे नए सिरे से निर्धारित करने की आवश्यकता पर जोर दिया।

नेहरु की भारत की विदेश नीति को देन

(Nehru's Contribution to India's Foreign Policy)

नेहरु जी लम्बे समय तक भारत के प्रधानमन्त्री रहे और भारत की विदेश नीति पर नेहरु का पूरा प्रभाव रहा। उसके शासन काल में भारत की विदेश नीति के कुछ नये सिद्धान्तों की नींव पड़ी। उसकी विदेश नीति के वही सिद्धान्त आज भी भारत की विदेश नीति के उद्देश्य व सिद्धान्त हैं। ये उद्देश्य व सिद्धान्त निम्नलिखित है :-

(1) उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व रंगभेद की नीति का विरोध।

(2) विश्व शान्ति का समर्थन।

(3) पंचशील व शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिद्धान्त।

(4) गुटपनिरपेक्षता का सिद्धान्त।

(5) निःशस्त्रीकरण का समर्थन।

(6) `मानवाधिकारों में विश्वास।

(7) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करना।

(8) पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध।

(9) आदर्शवादी व यथार्थवाद का सुन्दर समन्वय।

(10) संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन।

नेहरु की विदेश नीति का मूल्यांकन

(Evaluation of Nehru's Foreign Policy)

यद्यपि नेहरु जी ने विदेशों के साथ अच्छे समन्वय स्थापित करने की नीति अपनाई। उसने अपने पड़ोसी देशों के साथ भी मधुर सम्बन्ध स्थापित किए। उसने विश्वशान्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थन किया और निरस्त्रीकरण के विचार पर भी विश्व का ध्यान आकर्षित किया। उसने शीत युद्ध के वातावरण में अपना गुटनिरपेक्षता का सिद्धान्त तथा पंचशील का सिद्धान्त पेश करके विश्व शान्ति का आधार मजबूत किया। इतना होने के बाद भी 1962 में चीनी आक्रमण के समय नेहरु की विदेश नीति का आदर्शवादिता कपोल कल्पना साबित हुई और विदेश नीति के समीक्षकों ने भारत की विदेश नीति की आलोचना शुरु कर दी। उनका तर्क था कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का विचार और युद्ध दो परस्पर विरोधी बातें हैं। राष्ट्रीय हित की प्राप्ति केवल शान्तिपूर्ण तरीकों से ही नहीं हो सकती, बल्कि इसके लिए युद्ध जैसे अमानवीय साधनों का भी सहारा लेना पड़ता है। नेहरु की विदेश नीति की समीक्षा करते हुए जे० बंधोपाध्याय ने लिखा है-"नेहरु की विदेश नीति यथार्थवाद की बजाय आदर्शवाद पर अधिक जोर देती है।" आलोचकों का कहना है कि चीनी आक्रमण के बाद नेहरु की गुटनिरपेक्षता की नीति धराशायी हो चुकी है। चीनी आक्रमण के बाद भारत का झुकाव साम्यवादी गुट की तरफ बढ़ने से गुटनिरपेक्षता की कोई प्रासंगिकता नहीं हो सकती। दूसरी बात यह भी कही गई कि गुट निरपेक्षता आक्रमण के विरुद्ध कोई गारन्टी नहीं देती। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि नहेरु जी की विदेश नीति का भारत की विदेश नीति के निर्माण और विकास में कोई योगदान नहीं है। सत्य तो यह है कि भारत की विदेश नीति आज भी उन उद्देश्यों व सिद्धान्तों को समेटे हुए है जो नेहरु की विदेश नीति में थे। इसलिए नेहरु की विदेश नीति को अप्रासंगिक व कोरी आदर्शवादी मानना सर्वथा गलत है।

नेहरु के बाद भारत की विदेश नीति का विकास

(Evolution of India's Foreign Policy after Nehru)

नेहरु जी के बाद कार्यवाहक प्रधानमन्त्री के रूप में गुलजारी लाल नन्दा ने 27 मई, 1964 से 9 जून, 1964 तक भारत की विदेश नीति को नेहरु जी के सिद्धान्तों पर ही क्रियान्वित किया। उसके बाद लाल बहादुर शास्त्री ने प्रधानमन्त्री बनते ही भारत की विदेश नीति में परिवर्तन के संकेत दिए। इस दौरान 1965 में भारत पर पाकिस्तान ने आक्रमण कर दिया और 1966 में रूस की मध्यस्थता द्वारा ताशकन्द समझौत हुआ। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान ने हजरत बल दरगाह से पैगम्बर मुहम्मद साहब का पवित्र बाला चोरी होने पर भारत विरोधी अभियान चलाया। इसी तरह कच्छ की खाड़ी सम्बन्धी विवाद भी खड़ा किया। शास्त्री जी ने भारत की विदेश नीति को सैद्धान्तिक पक्ष से हटाकर व्यावहारिक बनाने पर जोर दिया, लेकिन उसने गुटनिरपेक्षता का परित्याग नहीं किया। शास्त्री जी ने प्रयासों के परिणामस्वरूप अमेरिका ने पाक को दी जाने वाली आर्थिक मदद बन्द कर दी। इसी तरह रूस ने भी UNO में भारत का साथ दिया। लेकिन दुर्भाग्यवश भारत की विदेश नीति को व्यावहारिक रूप देने वाले महान व्यक्तित्व की जल्दी ही म त्यु हो गई।

शास्त्री जी की म त्यु के बाद भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी बनी। इन्दिरा जी ने नेहरु जी की विदेश नीति को व्यावहारिक बनाने के लिए कूटनीतिक उपायों का प्रयोग किया। इन्दिरा गांधी के कार्यकाल में ही भारत-पाकिस्तान समस्या अधिक उग्र हुई। इस बार पाकिस्तान ने पूर्वी पाकिस्तान (बंगला देश) को लेकर भारत पर 3 दिसम्बर, 1971 को आक्रमण कर दिया। भारत ने इस युद्ध में पूर्वी पाकिस्तान को बंगला देश के रूप में स्वतन्त्र राष्ट्र को विश्व मानचित्र पर प्रतिष्ठित किया। इस युद्ध ने भारत को अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर एक महान शक्ति के रूप में स्थापित किया। इसी दौरान 1977 में ही भारत ने सोवियत संघ के साथ एक मैत्री एवं सहयोग की सन्धि की। 1971 के भारत-पाक युद्ध के बाद 2 जुलाई, 1972 को शिमला समझौता हुआ। इसमें दोनों देशों ने आपसी विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने के प्रयास शुरु कर दिये। इन्दिरा गांधी ने चीनी परमाणु परीक्षण (1964) के मध्येनजर भारत को भी परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनाने की कवायद तेज कर दी। 18 मई, 1974 को पोकरण नामक स्थान पर भारत ने प्रथम परमाणु परीक्षण किया और भारत को महान राष्ट्र बना दिया। इसके साथ ही इन्दिरा गांधी ने पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित किए। उसने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को नई दिशा दी। इसी दौरान उसने हिन्द महासागर को हमेशा के लिए शान्ति का क्षेत्र घोषित कराकर विश्व शान्ति की दिशा में महान कदम बढ़ाया। इन्दिरा गांधी ने राष्ट्रीय सुरक्षा को सर्वाधिक महत्त्व दिया। उसके बाद 24 मार्च, 1977 को मोरारजी देसाई भारत के प्रधानमन्त्री बने। उन्होंने अमेरिका तथा रूस के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास किए और स्वतन्त्र विदेश नीति के संचालन का संकल्प लिया। उन्होंने पड़ोसी देशों के साथ भी मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास किए। जून 1978 में उन्होंने अमेरिका की यात्रा की ओर उसके बाद 1979 में विदेश मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी जी अमेरिका की यात्रा पर गये। इसके भारत अमेरिका सम्बन्धों में नए युग की शुरुआत हुई। इसके अतिरिक्त उन्होंने भारत-बंगला देश के बीच नदी जल बंटवारे से सम्बन्धित फरक्का विवाद हल किया और पाकिस्तान व श्रीलंका की भी यात्रा की। इस दौरान भारत की विदेश नीति पूर्णतया सफल रही। इसके बाद अल्पकाल के लिए भारत के प्रधानमन्त्री चौ० चरणसिंह बने। उन्होंने पूर्ववर्ती सरकार की ही विदेश नीति का पालन किया। उसके बाद 1980 में दोबारा श्रीमती इन्दिरा गांधी भारत की प्रधानमन्त्री बनी। इस दौरान भारत-पाक सम्बन्धों में कटुता आई। उन्होंने एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप जड़ने शुरु कर दिये। 1981 में भारत ने चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए सांस्कृतिक समझौता किया। इस काल में भारत-अमेरिका सम्बन्धों को सुधारने की कवायद भी की गई, लेकिन अमेरिका द्वारा पाक को दी जाने वाली आर्थिक व सैनिक सहायता ने दोनों के सम्बन्धों में खट्टास पैदा कर दी। 1981 में श्रीलंका से औद्योगिक समझौता भी हुआ और 1982 में भारत के राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी स्वयं वहां गए। लेकिन फिर भी भारत-श्रीलंका के बीच तमिल समस्या पर गंभीर मतभेद उपजे। इस दौरान भारत ने रूस के साथ सम्बन्धों को अधिक मजबूत बनाया। 1984 में श्रीमती इन्दिरा गांधी की म त्यु हो गई और इस तरह भारत की विदेश नीति को यथार्थवादी बनाने की कवायद रुक गई।

श्रीमती इन्दिरा गांधी की म त्यु के बाद राजीव गांधी भारत के प्रधानमन्त्री बने। उन्होंने सर्वप्रथम अक्तूबर 1985 में राष्ट्रमण्डलीय सम्मेलन में अफ्रीकी नेता नेल्सन मन्डेला की रिहाई की मांग की। उसके बाद उन्होंने क्यूबा यात्रा की और 1985 में ही SAARC संगठन की सदस्यता ग्रहण की। इस संगठन के तहत भारत ने अपने पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की और इस दिशा में कुछ सार्थक कदम उठाए। इसी वर्ष वे अमेरिका की यात्रा पर गए ताकि भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में सुधार लाया जा सके। इसके अतिरिक्त वे अफ्रीकी देशों की यात्रा पर भी गए। उन्होंने पाकिस्तान के साथ भी सम्बन्ध सुधारने की नीति का अमल किया। उन्होंने 1986 में पाकिस्तान के साथ एक व्यापारिक समझौता भी किया। उन्होंने नेपाल, बंगला देश तथा भूटान के साथ भी नए स्तर के सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास किए। 1987 में वे भारत-श्रीलंका सम्बन्धों को नया आयाम देने के लिये श्रीलंका के दौरे पर गए और वहां की जातीय समस्या को

हल करने के लिए शान्ति सेना भी भेजी। उसने रूस के साथ भी मधुर सम्बन्ध बनाए। परन्तु एक बम्ब विस्फोट में उनकी म त्यु हो गई और भारत की व्यावहारिक विदेश नीति पर कुछ समय के लिए ग्रहण सा लग गया।

राजीव गांधी के बाद भारत के प्रधानमन्त्री वी०पी० सिंह ने भी पहले वाली ही विदेश नीति को क्रियान्वित किया। कुछ समय तक चन्द्रशेखर भी भारत के प्रधानमन्त्री रहे। इस दौरान नेपाल के साथ सम्बन्ध सुधारे गये। 1991 में पी०वी० नरसिम्हाराव ने प्रधानमन्त्री बनते ही आर्थिक उदारीकरण की नीति के तहत भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ने की कवायद शुरु की। इस दौरान भारत के पड़ौसी देशों के साथ-साथ ब्रिटेन, रूप तथा अमेरिका के साथ सम्बन्ध मजबूत हुए। इस काल में भारत ने NPT तथा CTBT सन्धि (1993) पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। इसलिए भारत की अमेरिका व उसके पिछलग्गू देशों के साथ सम्बन्धों में कुछ खट्टास आ गई। उसके बाद कुछ समय के लिए भारत में वाजपेयी व उसके बाद देवगौड़ा के नेत त्व वाली अल्पकालीन सरकारें बनी। इस दौरान भारत ने अपने पड़ौसी देशों के साथ-साथ नए देशों के साथ भी मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास किए। देवगौड़ा सरकार ने इजराइल के साथ सम्बन्ध स्थापित किए और ब्रिटेन के साथ सम्बन्धों को भी महत्व दिया। उसके बाद 21 अप्रैल 1997 को इन्द्रकुमार गुजराल ने प्रधानमन्त्री बनते ही पाक के साथ-साथ अन्य पड़ौसी देशों से मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपना 'गुजराल सिद्धान्त' पेश किया। इसके अतिरिक्त गुजराल ने 1997 में UNO की सुरक्षा परिषद् में भारत की सदस्यता का दावा भी पेश किया। गुजराल ने भी मुक्त व्यापार का समर्थन किया और दक्षिण एशिया को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया। उसने चीन व नेपाल से विशेष मैत्री वार्तायें भी की। इसके साथ ही वे अफ्रीकी यात्रा पर भी गए। इस युग में भारत के अमेरिका तथा पड़ौसी देशों के बीच अच्छे सम्बन्ध रहे।

गुजराल के बाद 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी ने भारत के शासन की बागडोर फिर से सम्भाली। वाजपेयी ने आर्थिक सुधारों के साथ-साथ राष्ट्रीय सुरक्षा पर भी अधिक जोर दिया। 1998 में ही भारत ने गोरी नामक प्रक्षेपास्त्र का परीक्षण किया। इसके बाद मई 1998 में भारत ने पांच भूमिगत परमाणु परीक्षण करके विश्व का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। यद्यपि इसकी विश्व समुदाय ने काफी आलोचना की, लेकिन भारत ने आत्मसुरक्षा व शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु तकनीक का उदाहरण देकर विश्व समुदाय का मुंह बन्द कर दिया। इस दौरान पाक द्वारा भी परमाणु परीक्षण करके भारत की विदेश नीति को चुनौती दी गई। 1998 में भारत-पाक के बीच कई मुद्दों पर बातचीत भी हुई, लेकिन कारगिल युद्ध ने भारत-पाक सम्बन्धों में खाई पैदा कर दी। इसके बाद वाजपेयी ने भारत-पाक सम्बन्धों में सुधार लाने के लिए लाहौर बस सेवा फिर से चालू की। लेकिन पाकिस्तान की ओर से आज तक कोई सार्थक कदम नहीं उठाया गया है। इसके अतिरिक्त वाजपेयी ने श्रीलंका, नेपाल, भूटान तथा बंगलादेश के साथ भी मधुर सम्बन्ध कायम किए। आर्थिक उदारीकरण के तहत इस युग में भारत के अमेरिका, ब्रिटेन तथा अन्य यूरोपीय देशों से मधुर सम्बन्ध स्थापित हुए। भारत के अफ्रीका व अन्य एशियाई देशों से भी सम्बन्धों में सुधार आया। वास्तव में वाजपेयी काल विदेश नीति का स्वर्णिम युग माना जा सकता है। पाकिस्तान को छोड़कर शेष सभी देशों से भारत के सम्बन्धों में सुधार ही आया है। हाल ही में चीन ने सिक्किम को भारत का ही अंग स्वीकार किया है। इससे भारत-चीन सम्बन्धों में नए युग की शुरुआत देखी जा सकती है। 22 मई, 2004 को भारत के प्रधानमन्त्री का पद ग्रहण करने के बाद प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने भी स्पष्ट कर दिया है कि भारत पड़ौसी देशों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम रखेगा। इस क्रम में भारत ने जुलाई 2004 में अमेरिका के साथ खुला आकाश समझौता करने पर बातचीत की तथा जून 2004 में भारत के विदेश मन्त्री नटवर सिंह पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारने की पेशकश की और एक सांझा परमाणु सिद्धान्त पेश किया। इस समय भारत ने रूस के साथ भी द्विपक्षीय सहयोग बढ़ाने पर विचार किया। इसी महीने में भारत ने पाकिस्तान के साथ हॉटलाईन समझौतों

को चालू करने पर सहमति की। दोनों देशों के बीच विमान सेवाएं फिर से बहाल की गई।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति परम्परा व आधुनिकता का सुन्दर मेल है। जहां कूटनीतिक उपायों की स्थापना कौटिल्य के समय में हो चुकी थी और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का जन्म भी महात्मा बुद्ध और महात्मा गांधी के युग में ही हो गया था, वही गुटनिरपेक्षता का सिद्धान्त, संयुक्त राष्ट्र संघ में आस्था, निःशस्त्रीकरण का समर्थन आदि सिद्धान्त आधुनिक युग की उपज है। विदेश नीति को समसामयिक बनाने में अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। शीतयुद्ध की उत्पत्ति ने भारत को गुटनिरपेक्ष नीति का पालन करने को विवश किया। नेहरु जी ने पंचशील और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का ऐतिहासिक सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए प्रयोग करके नया कीर्तिमान स्थापित किया। बदलते परिवेश में भारत ने भी अपनी विदेश नीति को बदला है और उसे समसामयिक बनाने का प्रयास किया है ताकि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका हो। सत्य तो यह है कि भारत की विदेश नीति आदर्शवादिता व यथार्थवादिता दोनों को साथ लेकर चल रही है। आवश्यकता पड़ने पर भारत अपने आदर्शवादी सिद्धान्तों की यथार्थवादिता या व्यावहारिकता का अमली जामा पहनाने में भी सक्षम है।

अध्याय-3

भारत की विदेश नीति के निर्धारक तत्व

(Determinants of India's Foreign Policy)

किसी भी देश की विदेश नीति का निर्धारण अनेक तत्वों से होता है। इसके पीछे मूल विचार यह होता है कि सरकारें तो बदलती रहती हैं, लेकिन विदेश नीति पहले जैसी ही रहती है। यद्यपि व्यवहार में तो कुछ अन्तर अवश्य हो सकता है, परन्तु सिद्धान्त तौर पर विदेश नीति के लक्ष्य व सिद्धान्त पहले जैसे ही रहते हैं। उदाहरण के रूप में हम भारत की विदेश नीति को ले सकते हैं। भारत में नेहरु युग से वर्तमान वाजपेयी युग तक विदेश नीति के अधिकार सिद्धान्त वही हैं जो नेहरु जी ने दिए थे। इसका प्रमुख कारण यह है कि विदेश नीति का निर्धारण कुछ स्थायी तत्वों से होता है जिसके कारण विदेश नीति की गतिशीलता पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। फैडल फोर्ड और लिंकन का कहना है-"मूल रूप से विदेश नीति की जड़ें ऐतिहासिक प ष्ठभूमि, राजनीतिक संस्थाओं, परम्पराओं, आर्थिक आवश्यकताओं, शक्ति के तत्वों, अभिलाषाओं, भौगोलिक परिस्थितियों तथा राष्ट्र के मूल्यों में पाई जाती हैं" ब्रेशर भी विदेश नीति के निर्धारिक तत्वों में भूगोल, अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश, व्यक्तित्व, आर्थिक और सैनिक स्थिति तथा जनमत को शामिल करता है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। भारत की विदेश नीति का निर्धारण भी इन्हीं तत्वों के आधार पर होता है। ये तत्व निम्नलिखित हैं :-

(1) **भूगोल** (Geography) :- किसी भी देश की भौगोलिक स्थिति उस देश की विदेश नीति का निर्धारण करती है। जो देश भौगोलिक द ष्टि से सुरक्षित होता है, वह स्वतन्त्र विदेश नीति का निर्माण कर सकता है। भारत की भौगोलिक स्थिति ने भी भारत की विदेश नीति को प्रभावित किया है। देश के विशाल आकार, उसकी जलवायु, उसकी अवस्थिति (Location) और भू-आकृति (Topography) ने भारत की विदेश नीति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दक्षिण एशिया में सबसे बड़ा देश भारत उत्तर में हिमालय तथा बाकी तीनों तरफ समुद्र से घिरा हुआ है। जहां यह स्थिति भारत को सुरक्षित राष्ट्र घोषित करती है, वहीं यह सामरिक द ष्टि से भारत के लिए चिन्ता का कारण भी है। भारत को हिमालय क्षेत्र से घुसपैठ रोकने के लिए तथा अपनी समुद्री सीमाओं की रक्षा करने के लिए भारी सैनिक व्यय करना पड़ता है। समुद्री मार्ग भारत के व्यापार के लिए जितने आवश्यक है, उनकी सुरक्षा के लिए उतना ही भारी व्यय भारत को करना पड़ता है। भारत को भौगोलिक स्थिति पूर्व और पश्चिम को जोड़ती है। हिन्द महासागर के क्षेत्र में बढ़ती अमेरिका, रूस व ब्रिटेन की गतिविधियों से उसका चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। इसलिए वह संयुक्त राष्ट्र संघ मे हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र (Zone of Peace) घोषित करवाने का प्रयास करता रहता है। पाकिस्तान की तरफ से बढ़ रही आतंकवादी गतिविधियां भी उसकी चिन्ता का कारण है।

इसलिए वह पाकिस्तान के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना को प्रार्थमिकता देता है। विदेश नीति के विश्लेषकों का मानना है कि भारत की भौगोलिक स्थिति की प्रमुख मांग यह है कि उसे अपने पड़ोसी देशों से मधुर सम्बन्ध बनाए रखने के प्रयास करते रहने चाहिए, क्योंकि भारत की स्थल सीमाएं पाकिस्तान, चीन, नेपाल, बंगला देश और म्यांमार से मिलती हैं। इसके साथ-साथ उसके ईरान, ईराक, अफगानिस्तान, हिन्दी चीन आदि देशों से भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हैं। हिन्द महासागर में भारत की सुरक्षा भी एक प्रमुख मुद्दा है। दक्षिण-पूर्व एशिया का विचार भी भारत की विदेश नीति को विशिष्टता प्रदान करता है। भारत द्वारा ASEAN तथा SAARC संगठनों को मजबूत बनाने के पीछे यही विचार है कि दक्षिण एशिया में भारत के हित सुरक्षित हों। अपने हितों को देखते हुए भारत ने एक शक्तिशाली नौसैनिक बेड़ा रखा हुआ है ताकि उसके समुद्री मार्गों की रक्षा हो सके। वह हिमालय क्षेत्र की रक्षा के लिए एक शक्तिशाली वायु सेना तथा स्थलीय क्षेत्रों की रक्षा के लिए स्थल बेड़ा भी रखता है। लेकिन इससे भारत के हित पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं रह सकते। इसलिए भारत के लिए यह जरूरी है कि वह अपने विवादों को शान्तिपूर्ण सम्बन्धों द्वारा हल तलाश करे। इसी कारण आज भारत की विदेश नीति पड़ोसी देशों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को प्राथमिकता देती है। इसलिए वर्तमान मनमोहन सिंह सरकार भी पाकिस्तान के साथ मधुर सम्बन्धों को प्राथमिकता दे रही है। इसके साथ-साथ भारत उप-महाद्वीप के समीपवर्ती देशों से भी मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास करता रहता है। लेकिन पाकिस्तान के साथ कटुतापूर्ण सम्बन्ध आज भी भारत की विदेश नीति के कुशल संचालन में सबसे बड़ी बाधा है। चीन, बंगलादेश, श्रीलंका के साथ भी कुछ मतभेद हमारी विदेश नीति को गम्भीर चुनौती देते हैं।

(2) **आर्थिक व सैनिक तत्व** (Economic and Military Factors) :- अपनी स्वतन्त्रता के बाद भारत के सामने प्रमुख समस्या राष्ट्रीय सुरक्षा व आर्थिक विकास की थी। आर्थिक विकास के लिए यह जरूरी होता है कि उस देश के साथ प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन व उनके दोहन की क्षमता हो। भारत के पास प्राकृतिक साधन तो प्रचूर मात्रा में थे, लेकिन उनका दोहन करने के लिए पूंजी व तकनीक का अभाव था। इसलिए भारत ने अमेरिका तथा ब्रिटेन जैसे देशों से सम्बन्ध स्थापित किए। साथ में उसने रूस को भी नाराज नहीं किया। इसलिए उसने गुट निरपेक्षता का पालन करते हुए विश्व की दोनों महाशक्तियों से सम्बन्ध जोड़े रखे। इससे उसकी विदेश नीति की स्वतन्त्रता भी बरकरार रही। यद्यपि बार-बार भारत पर अमेरिका व रूस द्वारा दबाव बनाया गया कि वह उनके साथ शामिल हो जाए, लेकिन भारत ने ऐसा न करके अपनी प्रभुसत्ता व प्रादेशिक अखण्डता की रक्षा की, परन्तु आर्थिक निर्भरता ने भारत को बौद्धिक सम्पदा कानून व बहुराष्ट्रीय निगमों की अनुचित शर्तों को मानना पड़ा है। आज भारत की अर्थव्यवस्था आर्थिक उदारीकरण के दौर में है और वह WTO के नियन्त्रण में है। यद्यपि भारत अपने निकटवर्ती देशों के साथ मिलकर दक्षिण एशिया के देशों में पारस्परिक अन्तनिर्भरता का विकास करना चाहता है। इसके लिए वह ASEAN तथा SAARC में SAFTA का विचार रखकर दक्षिण एशिया को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाना चाहता है, लेकिन फिर भी भारत WTO के अमीर देशों पर निर्भरता कम नहीं हुई है। इसलिए भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह विकास का राजनय अपनाए। लेकिन उसे ऐसा करते समय अपनी सम्प्रभुता व प्रादेशिक अखण्डता का ध्यान रखना चाहिएं यद्यपि भारत आज नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) की मांग भी करता है, लेकिन वह WTO के पाश से मुक्त नहीं है। इसलिए वह विश्व के विकसित देशों के साथ मधुर व सौहार्दपूर्ण आर्थिक सम्बन्धों को प्राथमिकता देता है।

भारत के आर्थिक विकास को चुनौती देने वाला एक प्रमुख तत्व सैनिक तत्व है। भारत को प्रतिवर्ष अपने बजट का एक बहुत बड़ा हिस्सा सेना पर खर्च करना पड़ता है। इससे भारत का आर्थिक विकास प्रभावित होता है। भारत ने रूस, अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों से कई सामरिक समझौते भी किए हैं। भारत द्वारा अस्त्र खरीदने का कार्यक्रम उसकी अर्थव्यवस्था को गम्भीर खतरा पैदा कर सकता है। इसलिए भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह युद्ध की सम्भावनाओं को रोके और

शान्ति के प्रयास करे। उसे विश्व के अन्य देशों से आर्थिक सहायता लेते समय भी सावधानी से कार्य करना चाहिए। इसलिए भारत को अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति का भी सोच समझकर ही क्रियान्वयन करना चाहिए ताकि किसी आर्थिक शक्ति की नाराजगी मोल न लेनी पड़े। वैसे तो आज भारत अपनी अर्थव्यवस्था में सुधारों की दिशा में कार्यरत है, लेकिन उसे आधुनिक परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यापारिक सम्बन्ध अधिक से अधिक देशों के साथ कायम करने चाहिए और साथ में ही उसे स्वयं को सामरिक द ष्टि से सुरक्षित भी बनाना चाहिए, यही भारत की विदेश नीति का ध्येय है।

(3) **इतिहास व परम्परा** (History and Tradition) :- भारत की विदेश नीति की जड़ें उसके इतिहास व परम्पराओं में हैं। भारत का अहिंसावादी चिन्तन अर्थात् महात्मा बुद्ध और गांधी का आदर्शवादी चिन्तन भारत की विदेश नीति में आदर्शवादी तत्वों का समावेश करता है। नेहरु जी द्वारा प्रतिपादित पंचशील और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का सिद्धान्त भारत की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक धरोहर है। भारतीय मनीषियों ने वर्षों तक जिस अहिंसावादी परम्परा का विकास किया, वही आज भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन भी कुछ ऐसी परम्पराएं छोड़ गया जो आज भारत की विदेश नीति में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद व रंगभेद की नीति का विरोध आज भी हमारी विदेश नीति का प्रमुख सिद्धान्त है, भारत ने हमेशा ही साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा रंगभेद की नीति का विरोध किया है। इतिहास व परम्परा के प्रभाव के बारे में पॉमर व पर्किन्स ने लिखा है-भारतीय विदेश नीति का निर्धारण आज भी उसके इतिहास व परम्पराओं द्वारा ही किया जाता है। इसी कारण भारत विश्व शान्ति के विचार का प्रबल समर्थक माना जाता है। भारत पर पाकिस्तान द्वारा आक्रमण किए गए लेकिन भारत ने पाकिस्तान के प्रति शान्तिपूर्ण नीति को ही अपनाकर उसके जीते हुए क्षेत्र लौटाए। ऐसा ही उसने चीन के साथ अपने सम्बन्ध सुधारने के लिए किया। भारत आज भी अपने पड़ोसी देशों के साथ शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति अपनाता है।

(4) **वैचारिक तत्व** (Ideological Factors) :- किसी भी देश की विदेश नीति को निर्धारण करने में विचारधारा का भी महत्वपूर्ण हाथ होता है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। भारत की विदेश नीति गांधीवादी विचारधारा पर आधारित रही है। भारत ने लोकतन्त्रीय समाजवाद को ही अपनी शासन व्यवस्था का आधार बनाया है। इसलिए भारत की विदेश नीति सोवियत संघ और अमेरिका दोनों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की रही है। नेहरु जी ने प्रजातन्त्र व साम्यवाद दोनों विचारधाराओं को अपनी विदेश नीति में जगह दी। अर्थात् नेहरु जी की विदेश नीति में उदारवाद और मार्क्सवाद दोनों का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। इसके साथ-साथ नेहरु जी ने अहिंसावाद की परम्परा को गांधी जी से ग्रहण करते हुए अपना पंचशील और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिद्धान्त भी पेश किया जो आज भी भारत की विदेश नीति में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

(5) **चमत्कारिक व्यक्तित्व** (Charisma) :- भारत की विदेश नीति के निर्धारण में नेहरु, इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी व वाजपेयी जी के चमत्कारिक व्यक्तित्व का भी काफी प्रभाव रहा है। नेहरु जी का प्रभाव इस बात में देखा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति के अधिकतर सिद्धान्त उन्हीं की देन हैं। नेहरु का व्यक्तित्व इतना आकर्षक था कि वे किसी भी व्यक्ति को अपने वश में कर लेते थे। वे कांग्रेस पार्टी के विदेश विभाग में निरन्तर अध्यक्ष रहें। उनका व्यक्तित्व देश प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीयता का मिलन था, उसमें समाजवाद और उदारवाद लोकतन्त्र का संगम था तथा गांधी जी के आदर्शवाद और यथार्थवाद का सुन्दर समन्वय था। नेहरु जी ने राष्ट्रमण्डल देशों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित किये, विदेश विभाग की स्थापना की और विदेश नीति का निर्माण किया। उन्होंने एशिया व अफ्रीका के पराधीन देशों की स्वतन्त्रता का समर्थन भी किया। उनके द्वारा

निर्मित विदेश नीति राष्ट्रीय नीति बन गई जिस पर सभी राजनीतिक दल सहमत थे। उनके शांति, उपनिवेशवाद का विरोध तथा गुटनिरपेक्षता के मूल सिद्धान्तों को जनता की तरफ से पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। आगे चलकर श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भारत की विश्व पटल पर अलग पहचान कायम की। उनके परमाणु कार्यक्रम की समस्त भारतवर्ष में प्रसंशा की गई और वह जनता के दिल की धड़कन बन गई, लेकिन आपातकाल में उनकी प्रतिष्ठा धूमिल हो गई। उसके बाद भारत की विदेश नीति पर लाल बहादुर शास्त्री, राजीव गांधी व इन्द्रकुमार गुजराल का भी कुछ प्रभाव रहा। इस प्रकार गुजराल के 'गुजराल सिद्धान्त' की सर्वत्र प्रसंशा की गई। इसके बाद भारत की विदेश नीति पर अटल बिहारी वाजपेयी जी का प्रभाव नेहरु से किसी भी द ष्टि से कम नहीं आंका जाना चाहिएं वाजपेयी ने 1998 में तीन परमाणु विस्फोट करके भारत को एक महान परमाणु शक्ति सम्पन्न देश बना दिया। यद्यपि भारत के पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों को सुधारने के लिए वाजपेयी जी के प्रयास काफी सफल नही रहे, लेकिन शान्तिपूर्ण प्रयासों के द ष्टिकोण से वे काफी महत्वपूर्ण माने जाते हैं। अब हाल ही में 22 मई, 2004 को भारत के प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह जी बने हैं जिनके आकर्षक व्यक्तित्व का प्रभाव भी भारत की विदेश नीति पर पड़ने की पूरी सम्भावना है।

(6) आन्तरिक या घरेलु राजनीति (Internal Politics) :- किसी भी देश की घरेलु राजनीति व विदेश नीति में गहरा सम्बन्ध होता है। मीब्रेल ने कहा है-"विदेश नीति दूसरे माध्यमों से घरेलु नीतियों का ही विस्तार है।" नेहरु जी की गुटनिरपेक्षता की सभी राजनीतिक दलों द्वारा प्रसंशा की गई है। भारत की विदेश नीति को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक-नौकरशाही, राजनीतिक दल, दबाव समूह व जनमत हैं। आज भारत की विदेश नीति का निर्माण एक स्वतन्त्र विदेश विभाग करता है जो सेना, नौकरशाही तथा राजनीतिक नेत त्व के साथ मिलकर ही कोई निर्णय लेता है। कई बार देश की आंतरिक परिस्थितियां विदेश नीति काफी शिथिल हो जाती है। राजनीतिक दलों की विचारधारा, ढांचा तथा उनकी आन्तरिक कमजोरियां विदेश नीति को भी उल्ट रूप प्रदान कर देती हैं। बहुदलीय प्रणाली की प्रकृति आम सहमति के बिना विदेश नीति के निर्माण में बाधक बन जाती है। यद्यपि वाजपेयी जी ने सांझा सरकार का संचालन करते हुए भी एक सुद ढ़ विदेश नीति का संचालन करते हुए भी एक सुद ढ़ विदेश नीति का संचालन किया। लेकिन ऐसा हमेशा सम्भव नहीं होता। इसी तरह व्यवसायिक दबाव समूहों की दबावकारी भूमिका भी आधुनिक समय में भारत की विदेश नीति को व्यापारिक हितों के अनुकूल चलने को बाध्य करती है। उदारीकरण के दौर ने तो दबाव समूहों की प्रभावकारी भूमिका को और अधिक सशक्त किया है। वर्तमान मनमोहन सरकार (2004) में विदेश नीति पर श्रमिक संघों का पूरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना नजर आती है। आधुनिक युग में जनमत की उपेक्षा करना भी सरकार के लिए खतरे का सूचक है। किसी भी विदेश नीति के निर्धारण में जनमत का ध्यान रखना आवश्यक है। भारत की विदेश नीति के सन्दर्भ में राजनीतिक दलों व दबाव समूहों की प्रभावकारी भूमिका इस बात से आंकी जा सकती है कि जहां कुछ राजनीतिक दल अमेरिका के साथ सम्बन्धों को प्राथमिकता देते हैं तो कुछ सोवियत संघ के साथ। दक्षिणपंथी दलों व प्रगतिशील दबाव समूहों का झुकाव साम्यवाद की तरफ है। देश के मुस्लिम संगठन अरब देशों से सम्बन्ध कायम करने के पक्षधर हैं तो श्रमिक संगभ्न साम्यवादी देशों से। अतः किसी भी देश की विदेश नीति राजनीतिक व्यवस्था, दलगल राजनीति, सम्भ्रान्त वर्ग (Elite Class), दबाव समूहों आदि घरेलु तत्वों से भी प्रभावित होती है।

(7) अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश (International Milieu) :- किसी भी देश की विदेश नीति अपने चारों ओर विश्व में घट रही घटनाओं के प्रति उदासीन नहीं रह सकती। उसे हर हालत में प्रत्येक घटना का गहराई से अवलोकन करके उसे स्वयं के साथ सम्बन्धित करना पड़ता है। यही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की वास्तविकता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जिस अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का उदय हुआ उसें शीतयुद्ध कहा जाता है। इस तनाव को कम करने के लिए प्रयास करना भी सभी

देशों का प्राथमिक कर्तव्य बनता था। इसलिए विश्वशांति के आदर्श के अनुरूप संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी निष्ठा व्यक्त करते हुए भारत ने गुटनिरपेक्षता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। भारत ने तीसरी दुनिया के नवोदित स्वतन्त्र देशों को एक मंच पर लाकर शीत युद्ध के तनाव पर अंकुश लगाने के प्रयास किए और गुटनिरपेक्षता को अपनी विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धान्त बनाया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जन्मे संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों को भी भारत ने अपनी विदेश नीति में जगह दी। विश्व शान्ति का सिद्धान्त, नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की अवधारणा, उपनिवेशवाद व रंगभेद की नीति का विरोध आज भी संयुक्त राष्ट्र सघ के महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं जो भारत की विदेश नीति में भी महत्वपूर्ण जगह बनाये हुए है। कोरिया संकट, स्वेज नहर संकट, कांगों विवाद, अरब-इजराइल संघर्ष आदि में भारत की गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति को परीक्षण स्थल प्रदान किया है। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद आज भी गुटनिरपेक्षता नए अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में काम कर रही है। आज नई अन्तर्राष्ट्रीय विश्व व्यवस्था का महत्वपूर्ण ध्येय आर्थिक मुद्दों को राजनीतिक मुद्दों पर वरीयता देना है। विश्व व्यापार संगठन (WTO) की बढ़ती भूमिका का प्रभाव भी भारत की विदेश नीति पर पड़ रहा है। इसी तरह क्षेत्रीय संगठनों की राजनीति भी भारत की विदेश नीति को प्रभावित करती है। आज भारत 'SAFTA' को महत्व देता है ताकि दक्षिण एशिया को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाकर आपसी सम्बन्धों में मधुरता लाई जा सके और आर्थिक हितों को भी आसानी से प्राप्त किया जा सके। इसलिए भारत SAARC, ASEAN तथा 'हिन्द महासागर रिम' जैसे क्षेत्रीय संगठनों की राजनीति के अनुरूप अपनी विदेश नीति का निर्धारण करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति पर कुछ घरेलु तथा कुछ बाहरी तत्वों का प्रभाव पड़ता है। जहां घरेलु तत्वों के रूप में भूगोल, अर्थव्यवस्था, सैनिक तत्व, इतिहास, परम्पराएं, विचारधारा, व्यक्तित्व, राजनीतिक व्यवस्था, हित व दबाव समूहों, नौकरशाही, जनमत आदि ने इसे प्रभावित किया है, वहीं बाहरी तत्वों के रूप में क्षेत्रीय संगठनों, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों तथा बदलते विश्व परिवेश ने भी इसे काफी प्रभावित किया है। भारत की विदेश नीति जितनी अधिक घरेलु वातावरण से प्रभावित हुई है, उतनी ही अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश से भी हुई है। सत्य तो यह है कि भारत ने घरेलु राजनीतिक प्रतिक्रिया के साथ-साथ विश्व समुदाय की राजनीति प्रतिक्रिया के अनुरूप ही अपनी विदेश नीति को बनाया है। इसी कारण आज भारत की विदेश नीति सभी देशों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की है जो संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों का पूरा सम्मान करती है।

अध्याय-4

भारत में विदेश-नीति निर्माण की प्रक्रिया (Process of Foreign Policy Making in India)

किसी भी देश की विदेश नीति उस देश के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की महत्वपूर्ण निर्धारक होती है। इसलिए उसका निर्माण काफी सोच-विचार करके ही किया जाता है। विदेश नीति का निर्धारण करते समय विदेश नीति के निर्माताओं को कुछ घरेलु तथा बाहरी पर्यावरण सम्बन्धी बातों का भी ध्यान रखना पड़ता है। प्रायः अधिकतर देशों में विदेश नीति का निर्धारण व संचालन करने के लिए एक विदेश विभाग होता है जो अन्य विभागों के सहयोग से कार्य करता है। विदेश नीति के निर्माण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इसके अतिरिक्त अन्य कई सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाएं भी विदेश नीति के निर्माण में अहम् भूमिका निभाती हैं। भारत में विदेश नीति के निर्माण की प्रक्रिया कुछ सरकारी व गैर-सरकारी अभिकरणों के द्वारा पूरी की जाती है। भारत में विदेश नीति के निर्माण की प्रक्रिया को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

(I) **संसद (Parliament)** :- किसी भी देश में आन्तरिक तथा बाहरी नीतियों का निर्धारण करना संसद का ही कर्त्तव्य माना जाता है। भारत में भी संविधान के अनुच्छेद 246 के अन्तर्गत विदेशी राज्यों से सम्बन्धित सभी मामले संसद को प्रदत्त हैं। इसका तात्पर्य यह है कि विदेश नीति पर निर्णय लेने का अधिकार संसद को प्राप्त है। संसद के अधिवेशनों के दौरान प्रश्नकाल में दो दिन विदेशी मामलों से सम्बन्धित होते हैं। विदेश मन्त्रालय की अनुदान मांगों व बजट के समय भी विदेशी मामलों पर बातचीत की जा सकती है। इसके अतिरिक्त संसद की कुछ समितियां भी होती हैं जो विदेश नीति पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती हैं। ये समितियां - विदेश मन्त्रालय की संसदीय सलाहकार समिति तथा स्थायी समिति हैं। इन दोनों में 50 - 50 सदस्य होते हैं। प्रथम समिति का पदेन अध्यक्ष विदेश मन्त्री तथा दूसरी का अध्यक्ष विरोधी दल का वरिष्ठ सांसद होता है। इन समितियों में सभी दलों के संसद सदस्य होते हैं। दोनों समितियों की बैठकों में विदेश सचिव मौजूद रहता है। यह समिति विदेश नीति के किसी भी विषय पर विचार-विमर्श कर सकती है। इस समिति के सुझाव विदेश नीति के विषय में काफी तर्कसंगत व मूल्यवान होते हैं। दूसरी समिति भी किसी विषय पर सुझाव दे सकती है या गलत नीति की आलोचना भी कर सकती है। इन दोनों समितियों की रिपोर्ट मन्त्रिमण्डल की बैठकों, संसद तथा विदेश मन्त्रालय के लिए काफी महत्वपूर्ण होती है। इन दोनों समितियों के अतिरिक्त भी संसद की आकलन समिति तथा लोक लेखा समिति भी किसी-न-किसी तरह विदेश नीति को प्रभावित करती है।

भारत में संसद की विदेश नीति निर्माण में भूमिका को लेकर काफी विवाद रहा है। कुछ विद्वानों का कहना है कि विदेश नीति निर्माण पर कार्यपालिका का वर्चस्व है, विधानमण्डल का नहीं। इसके

विपरीत कुछ विद्वान संसद की भूमिका को ही महत्वपूर्ण मानते हैं। वास्तव में इन दोनों मतों में ही सच्चाई है। विदेश नीति निर्माण में संसद की भूमिका कार्यपालिका के करिश्माई नेत त्व व व्यक्तित्व, संसद सदस्यों की विदेश नीति निर्माण में रुचि व विशेषज्ञता तथा देश की संकटकालीन स्थिति आदि पर निर्भर करती है। विदेश नीति के विश्लेषकों का मानना है कि संसद का ब हत रूप, संसद सदस्यों की अरुचि व अविशेषज्ञता के कारण संसद की विदेश नीति निर्माण में अधिक भूमिका नहीं रही है। परन्तु इन्द्रकुमार गुजराल सरकार के दौरान इसकी स्थिति में अवश्य सुधार आया। उसके बाद वाजपेयी सरकार के दौरान भी संसद की विदेश नीति निर्माण सम्बन्धी भूमिका में अवश्य सुधार आया है। वाजपेयी सरकार ने संसद के दबाव में ही कई बार अपनी पाकिस्तान के बारे में विदेश नीति पर पुनर्विवेचन करना पड़ा है। ऐसा ही प्रयास वर्तमान मनमोहन सरकार करती दिखाई देती है।

(II) प्रधानमन्त्री एवं मन्त्रिमण्डल (Prime Minister and the Cabinet) :- भारत एक संसदीय प्रजातन्त्र में वास्तविक कार्यपालक शक्ति प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रिमण्उल में ही निहित होती हैं। भारत में विदेश नीति का निर्माण प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रिमण्डल द्वारा ही किया जाता है। इस मन्त्रिमण्डल में एक विदेश मन्त्री भी होता है जो विदेश नीति से सम्बन्धित मामलों का प्रमुख अधिकारी होता है। उसके कार्यों को मन्त्रिमण्डल द्वारा अनुमोदित किया जाता है। विदेश मन्त्रालय का अध्यक्ष होने के नाते वह मन्त्रिमण्डल व प्रधानमन्त्री की सलाह से हर निर्णय लेने का पूरा अधिकार रखता है। उसके कार्यों मे प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रिमण्डल तभी हस्तक्षेप करते हैं, जब विदेश नीति के मूलभूत ढांचे में परिवर्तन करना आवश्यक हो। भारत में मन्त्रिमण्डल या प्रधानमन्त्री की बजाय अधिकतर निर्णय विदेश मन्त्री ही लेता है, लेकिन उन पर मन्त्रिमण्डल की सहमति लेना अनिवार्य है। परन्तु आजकल भारत में राजनीतिक मामलों की समिति या विदेश मन्त्री ही निर्णय लेने लगे हैं। इससे मन्त्रिमण्डल की विदेश नीति-निर्माण में घटती शक्ति का आभास होता है।

(III) विदेश मन्त्रालय (Foreign Ministry) :- किसी भी देश में विदेश नीति के निर्माण के लिए एक विदेश मन्त्रालय की स्थापना की जाती है। जिस प्रकार मन्त्रिमण्डल का मुखिया प्रधानमन्त्री या राष्ट्रपति होता है, उसी तरह विदेश मन्त्रालय का मुखिया विदेश मन्त्री होता है। भारत में भी विदेश नीति के निर्माण की प्रक्रिया में विदेश मन्त्रालय की ही महत्वपूर्ण भूमिका है जिसका विदेशी दूतावासों एवं वाणिज्य संस्थानों पर भी पूरा नियन्त्रण है। भारत में भी विदेश मन्त्रालय विदेश नीति से सम्बन्धित सूचनाएं एकत्रित करने व उनका आकलन करने, समस्याओं पर प्रकाश डालने व उनके समाधान के विकल्प प्रस्तुत करने तथा विदेश नीति लागू करने में अहम भूमिका अदा करता है। इसके संगठनात्मक शीर्ष पर विदेश मन्त्री ही होता है जिसकी सहायता राज्यमन्त्री द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त विदेश मन्त्रालय में विदेश सचिव, सह-सचिव, डायरेक्टरज, अपर सचिव, शोध अधिकारी, सहायक एवं लिपिक वर्ग भी शामिल होता है। विदेशों में होने वाली घटनाओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मुख्य सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए विदेश मन्त्रालय के अधीन अनेक दूतावास कार्य करते हैं। ये दूतावास ही विदेश नीति को लागू करने के लिए भी उत्तरदायी हैं। विदेश नीति के सम्बन्ध में भारत में विदेश मन्त्रालय व उसके दूतावासों की भूमिका ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण, अहम एवं उत्तरदायित्वपूर्ण होती है। विदेश नीति निर्माण के अन्य सभी अभिकरणों की भूमिका तो अप्रत्यक्ष ही रहती है।

विदेश मन्त्रालय प्रायः तीन तरह के कार्य करता है-(i) नित्य कर्म या रोजमर्रा के कार्य (Day to Day Functions) (ii) क्षेत्रीय पर्यावरण सम्बन्धी कार्य तथा (Functions Related to Regional Environment) (iii) तकनीकी कार्य (Technical Functions)। रोजमर्रा के कार्य आन्तरिक प्रशासन से सम्बन्धित होते हैं। दूसरे प्रकार के कार्य भारतीय क्षेत्रीय पर्यावरण से जुड़े होते हैं जिनके अन्तर्गत पड़ोसी राज्यों में होने वाली उन सभी गतिविधियों का शामिल किया जाता है तो परोक्ष रूप में भारत की विदेश नीति एवं सम्बन्धों पर प्रभाव डालने वाली होती है। इस सम्बन्ध में विदेश नीति सम्बन्धी

महत्वपूर्ण निर्णय राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा ही लिए जाते हैं। इसमें विश्व स्तरीय निर्णय (World LevelDecisions) आते हैं। निशस्त्रीकरण, गुटनिरपेक्षता, संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बन्धित मामले इसी के अन्तर्गत आते हैं। ये कार्य भी राजनीतिक कार्यपालिका ही करती है। विदेश मन्त्रालय तो उसकी मदद ही करता है।

विदेश नीति के विश्लेषकों ने विदेश नीति निर्माण में विदेश मन्त्रालय की भूमिका का विश्लेषण करते हुए कहा है कि आज प्रधानमन्त्री के करिश्माई नेत त्व, विदेश मन्त्रालय की विदेश नीति निर्माण में गम्भीरता का अभाव, भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया का जन्म लेना, परोक्ष अन्तर्राष्ट्रीय सूचनाओं का महत्व, अन्य संगठनों का बढ़ता महत्व आदि के कारण विदेश मन्त्रालय की नीति निर्माण में भूमिका कम हुई है। आज राजनीतिक सम्बन्धों की बजाय आर्थिक सम्बन्धों को अधिक महत्व दिया जाता है। भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण ने विदेश नीति निर्माण के परम्परागत ढांचे को धराशायी होने पर मजबूर कर दिया है। आज WHO, WTO, ILO आदि अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के कारण स्वास्थ्य, व्यापार व श्रम मन्त्रालयों की विदेशी मामलों में प्रत्यक्ष भूमिका बढ़ रही है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि विदेश नीति निर्माण में विदेश मन्त्रालय अपनी सार्थकता गंवा बैठा है। यह सत्य है कि शीतयुद्ध के काल में अन्य मन्त्रालयों तथा गैर-राजनीतिक संगठनों का प्रभाव विदेशी सम्बन्धों पर अधिक पड़ा है, लेकिन विदेश मन्त्रालय की स्थिति आज भी विदेश नीति के सम्बन्ध में गरिमायुक्त व सम्मानजनक है। आज WTO की बढ़ती भूमिका व भूमंडलीयकरण की प्रक्रिया ने विश्व में सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण सम्बन्धी व व्यापारिक आदि नवीन सम्बन्धों को जन्म दिया है। इन सम्बन्धों का सर्वमान्य संचालन विदेश मन्त्रालय ही कर सकता है। आज शीतयुद्ध की समाप्ति पर गुट-निरपेक्षता पर भी प्रश्नचिन्ह लग गया है। एक ध्रुवीय विश्व के रूप में अमेरिका के साथ भारत के राजनयिक सम्बन्धों का संचालन सूझबूझ के अनुसार विदेश मन्त्रालय ही कर सकता है। परमाणु शस्त्रों की दौड़ और निःशस्त्रीकरण के प्रयासों के बीच का रास्ता विदेश मन्त्रालय ही तय कर सकता है। इस समय भारत की विदेश नीति को जिन नई-नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, उनका समाधान विदेश मन्त्रालय के ही पास है। विदेश मन्त्रालय की बदलती भूमिका ने आज विदेश नीति के विश्लेषकों को यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि विदेश मन्त्रालय के संस्थागत ढाँचे को अधिक संगत बनाया जाये जो बदलती अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में भी कार्य कर सके।

(IV) राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद (National Security Council) :- भारत में विदेश नीति निर्माण के लिए आवश्यक एक शीर्षस्थ संस्था की स्थापना 19 नवम्बर, 1998 को की गई, जिसे 'राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद' कहा जाता है। इस संस्था के शीर्ष पर प्रधानमन्त्री होता है। प्रधानमन्त्री इसका अध्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त इसमें ग हमन्त्री, रक्षा मन्त्री, विदेश मन्त्री, वित्त मन्त्री तथा उपाध्यक्ष योजना आयोग बतौर सदस्य कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें एक राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार भी होता है। इस संस्था की स्थापना की आवश्यकता भारत के परमाणु शक्ति सम्पन्न देश बन जाने के साथ ही महसूस की गई थी, लेकिन यह आवश्यकता लम्बे अन्तराल के बाद 1998 में ही पूरी हुई। इस संस्था के शीर्ष संगठन, जिसमें प्रधानमन्त्री, ग ह मन्त्री, रक्षा मन्त्री, विदेश मन्त्री, वित्त मन्त्री तथा उपाध्यक्ष योजना आयोग शामिल होते हैं, को ही भारत की रक्षा तथा विदेश नीति के सन्दर्भ में अन्तिम निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त होता है। यह शीर्षस्थ संगठन राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार के ऊपर ही आश्रित रहता है। इसका तीन स्तरीय संगठन - सामरिक नीति समूह, सचिवालय या संयुक्त गुप्तचर समिति तथा राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार बोर्ड भी होता है। सामरिक नीति समूह में मन्त्रिमण्डल सचिव, तीनों सेनाओं के अध्यक्ष, विदेश, ग ह, रक्षा व वित्त सचिव, सचिव, रक्षा उत्पादन, राजस्व सचिव, गवर्नर रिजर्व बैंक सचिव (रॉ), परमाणु उर्जा विभाग सचिव रक्षा मन्त्री का वैज्ञानिक सलाहकार, अन्तरिक्ष विभाग का सचिव तथा संयुक्त गुप्तचर समिति का अध्यक्ष, 17 सदस्य होते हैं। भारत ने सामरिक कमान का गठन 4 जनवरी 2003 को किया। इस समूह का कार्य सामरिक रक्षा

नीति पर विचार करना तथा भावी रक्षा चुनौतियों से निपटने के लिए वैकल्पिक नीति तैयार करना है। इसका दूसरा संगठन राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार बोर्ड है, जिसकी सदस्य संख्या 21 है। इसमें भूतपूर्व विदेश सचिवों, रक्षा विशेषज्ञों, सामरिक विश्लेषकों, अर्थशास्त्रियों, वैज्ञानिकों आदि को शामिल किया जाता है। यह संगठन रक्षा क्षेत्र में भारत की समस्याओं का विश्लेषण करता है तथा आवश्यकतानुसार राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद को सलाह भी देता है। इसका तीसरा संगठन सविचालय है जिसे संयुक्त गुप्तचर समिति का कार्यभार सौंपा गया है। यह अंग तीनों अंगों में समन्वय के साथ गुप्तचर क्षेत्र में सूचनाओं को एकत्रित करके समीक्षात्मक अध्ययन के बाद सुरक्षा परिषद के सलाहकार के पास भेजता है।

भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद की स्थापना से विदेश नीति निर्माण में सुनिश्चितता व स्पष्टता का गुण पैदा हुआ है। इसके द्वारा विदेश नीति को समग्र रूप से समझा जा सकता है। इससे विदेश नीति पर सैनिक व गैर सेनिक तत्वों के प्रभाव को अंका जा सकता है। इससे विदेश नीति को क्रियान्वित करने में मन्त्रियों तथा लोकसेवकों का उत्तरदायित्व बढ़ा है। सामरिक द ष्टि से विदेशी सम्बन्धों का निर्धारण व संचालन करने में यह परिषद काफी मददगार सिद्ध हुई है। यद्यपि इस संगठन को कार्यप्रणाली व संगठनात्मक ढांचे पर कुछ उंगलियां भी उठाई गई हैं। उदाहरण के लिए प्रधानमन्त्री के मुख्य सचिव को राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार का पद सौंपने को लेकर कहा गया कि इसके प्रधानमन्त्री कार्यालय की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। इसक अतिरिक्त सचिवालय तथा गुप्तचर व्यवस्था को एक साथ मिलाना भी गलत है। यद्यपि इसमें गैर-राजनीतिक सदस्यों को शामिल करके अधिकतर दोषों पर काबू पा लिया गया है, परन्तु फिर भी इसे दोषरहित संगठन नहीं माना जा सकता। यदि इस संगठन के कुछ दोषों का निवारण कर दिया जाये तो राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद विदेश नीति के बारे में दूरगामी एवं सुद ढ़ नीति निर्माण करने वाली सहायक सिद्ध होंगी।

(V) **गुप्तचर विभाग** (Intelligence Department) :- गुप्तचर विभाग किसी भी देश की विदेश नीति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस विभाग के प्रमुख कार्य - विभिन्न देशों से सम्बन्धित राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं सैनिक जानकारी एकत्रित करना है। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर विदेश नीति का निर्माण किया जाता है। भारत में गुप्तचर विभाग कई भागों में बंटा हुआ है। इसमें रॉ (अनुसंधान एवं विश्लेषण शाखा) की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रहती है। 1962 में चीनी आक्रमण के बाद भारत ने गुप्तचर विभाग की आवश्यकता को महसूस करा दिया था। इसी कारण 1 अक्टूबर, 1968 को विदेशों में गुप्तचर व्यवस्था के संचालन हेतु 'रॉ' की स्थापना की गई। प्रारम्भ में इस संगठन के अधिकारियों को ग ह मन्त्रालय से ही लिया गया था, परन्तु बाद में इसका संस्थागत दर्जा प्राप्त होने पर वह अपने अधिकारियों को स्वयं ही नियुक्त करने लगी। आज इस संस्था का जाल सा सभी देशों में फैला हुआ है। जहां तक भारत के विदेशी सम्बन्धों की पहुंच है, यह संस्था विदेश नीति से सम्बन्धित सूचनाएं अपने आन्तरिक तथा बाहरी नेटवर्क के माध्यम से प्राप्त करती है। आज इस संस्था का इतना अधिक संगठनात्मक विकास हो चुका है कि इसके सदस्य उसी देश की जानकारी ही नहीं रखते बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण की पूरी जानकारी भी अपनी सरकार को देते हैं। इस संस्था की सहायक संस्थाओं के रूप में सैन्य गुप्तचर विभाग तथा संयुक्त गुप्तचर समिति भी कार्यरत है। भारतीय सेना का अपना अलग गुप्तचर विभाग होता है जो विदेशी ताकतों एवं अन्य देशों की सैनिक गतिविधियों पर नजर रखता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त गुप्तचर समिति भी विदेश नीति के निर्माण में अहम् भूमिका निभाने वाले गुप्तचर विभाग का एक दुःखद पहलू यह है कि हमारी सेना का गुप्तचर संगठन भी मई 1999 में कारगिल क्षेत्र में पाकिस्तान की घुसपैठ की जानकारी नहीं दे सका। इस घटना के पूर्वाभास के अभाव ने भारत को पाकिस्तान के साथ युद्ध करने पर विवश कर दिया और इसके बाद भारत ने पाकिस्तान के प्रति अपनी विदेश नीति में बदलाव लाना पड़ा।

(VI) गैर-सरकारी संगठन (Non-Governmental Organisations) :- भारत में विदेश नीति निर्माण में जितनी महत्वपूर्ण भूमिका संसद, मन्त्रिमण्डल, विदेश मन्त्रालय, गुप्तचर संगठन आदि की होती है, उतनी ही जनमत, बुद्धिजीवी वर्ग, राजनीतिक दल, अभिजन वर्ग, हित व दबाव समूहों, नौकरशाही आदि की भी रहती है। आज कोई भी सरकार विदेश नीति का निर्माण करते समय जनमत की उपेक्षा नहीं कर सकती। कारगिल युद्ध के बाद भारत ने पाकिस्तान के प्रति अपनी विदेश नीति में जो बदलाव किया था, उसके पीछे जनमत का ही दबाव था। इसके अतिरिक्त विरोधी दल का दबाव भी भारत में कई बाद विदेश नीति को प्रभावित करने में सफल रहा है। भारत में विदेश नीति सम्बन्धी सूचनाएं एकत्रित करके उन्हें महत्वपूर्ण रूप देने में बुद्धिजीवी वर्ग व लोकसेवकों की भूमिका को भी नकारा नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त भारत में हित व दबाव समूहों की भी विदेश नीति निर्माण में अहम् भूमिका रहती है। यह संमूह संसद में अपनी लाबिइंग व्यवस्था द्वारा विदेश नीति के निर्माण को प्रभावित करते हैं।

इस तरह उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि विदेश नीति के निर्माण में भारत में कई सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं का यागदान रहता है। इसमें विदेश मन्त्रालय की भूमिका केन्द्रीय रहती है। विदेश नीति के निर्माण में उसे क्रियान्वित करने में इसकी भूमिका ही महत्वपूर्ण व अहम् होती है। उसकी सहायता के लिए भारत में कई गुप्तचर संस्थाएं भी कार्यरत् हैं जो उसे आवश्यक सूचनाएं उपलब्ध कराती हैं। इसके अतिरिक्त विदेश नीति के निर्माण को जनमत, दबाव समूह, अभिजन वर्ग तथा बुद्धिजीवी वर्ग तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश भी प्रभावित करते हैं। विदेश नीति के निर्माण की तरह उसका क्रियान्यवन भी विदेश मन्त्रालय ही करता है जो अपने कार्य को दूतावासों, उच्च आयोगों व अन्य मिशनों के माध्यम से पूरा करता है।

इकाई-1

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions)

Q. 1 विदेश नीति क्या है ? भारत की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्यों व सिद्धान्तों की व्याख्या करो।

Q. 2 भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएं और उद्देश्यों का वर्णन करो।

Q. 3 भारत की विदेश नीति के विकास के प्रमुख चरणों की व्याख्या करो।

Q. 4 भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का विदेश नीति के क्षेत्र में क्या योगदान है ?

Q. 5 नेहरु जी के भारतीय विदेश नीति के निर्माण व विकास में भूमिका की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

Q. 6 नेहरु युग के बाद भारतीय विदेश नीति के विकास की व्याख्या करो।

Q. 7 भारतीय विदेश नीति के विभिन्न निर्धारक तत्वों की व्याख्या कीजिए।

Q. 8 भारत में विदेश नीति निर्माण की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।

इकाई-II

अध्याय-5

भारत की गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में भूमिका: भारत और त तीय विश्व

(India's Role in the Non-Alignment Movement : India and The Third World)

त तीय विश्व के प्रबल आन्दोलन के रूप में गुट निरपेक्ष आन्दोलन का जन्म द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं में से एक है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व का साम्यवादी व पूंजीवादी गुटों में यह शीत युद्ध अमेरिकी और रूसी गुट के बीच ऐसी प्रतिस्पर्धा का प्रकट रूप माना जा सकता है जो विश्व शान्ति के लिए महान खतरा पैदा कर सकता था। त तीय विश्व के रूप में अंलकृत सभी नवोदित स्वाधीन देशों को शीत युद्ध के खतरे से बचाने के लिए विश्व के प्रबुद्ध व साम्राज्यवाद के शिकार रह चुके देशों का यह परम कर्तव्य माना गया कि वे स्वाधीनता के मार्ग पर चल रहे देशों तथा स्वयं की सम्प्रभुता की रक्षा करें। इसके लिए यह जरूरी था कि एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के उन सभी देशों को इस सैनिक गुटबन्दी से दूर रखा जाए जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उभर रही थी। ऐसे वातावरण में भारत ने मिश्र तथा यूगोस्लाविया के साथ मिलकर अपनी बौद्धिक क्षमता का परिचय देते हुए गुटनिरपेक्षता के सिद्धान्त की प्रतिस्थाना की। आगे चलकर यही सिद्धान्त विश्व शान्ति का प्रबल समर्थक, त तीय विश्व की स्वाधीनता का मार्गदर्शक तथा एक महान आन्दोलन बन गया। भारत के नेत त्व में जन्म लेने वाला यह सिद्धान्त है जो भारत के अपने पड़ोसी देशों तथा विश्व के अन्य देशों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तथा विदेश नीति का निर्धारण करता है।

गुटनिरपेक्षता क्या है ?

(What is Non-Alignment ?)

विदेश नीति के सिद्धान्त के रूप में गुटनिरपेक्षता को समझने के लिए यह जरूरी है कि पहले गुटनिरपेक्षता का अर्थ समझा लिया जाए। साधारण अर्थ में गुटनिरपेक्षता सैनिक गुटों से अलग रहने या तटस्थत रहने की नीति मानी जाती है। लेकिन आज भारत इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता। भारत के उन देशों से भी सम्बन्धहैं जो सैनिक गुटों के सदस्य हैं। इसलिए गुटनिरपेक्षता को नए सिरे से परिभाषित करने की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है। इसके साधारण अर्थ को समझने के लिए भी इस बात पर बल दिया जाता है कि हमें पहले यह समझना चाहिए कि गुटनिरपेक्षता क्या नहीं है। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि गुटनिरपेक्षता तटस्थता नहीं है और

न ही यह अलगाववाद या प थकतावाद है। तटस्थता शब्द का प्रयोग प्रायः युद्ध के समय ही किया जाता है। शान्तिकाल में भी यह एक प्रकार से युद्ध की मनोव ति को ही प्रकट करती है। यह एक प्रकार की नकारात्मक सोच है। स्विट्जरलैण्ड ने आज तक किसी भी युद्ध में हिस्सा नहीं लिया है। इसलिए वह तटस्थ नीति का पालन कर सकता है, भारत नही। लेकिन गुटनिरपेक्षता का विचार सक्रिय एवं सकारात्मक है जो युद्ध में शामिल होकर भी बरकरार रहती है। भारत ने पाकिस्तान व चीन के साथ युद्ध किए हैं, फिर भी वह गुट निपरेक्ष है। इसलिए गुटनिरपेक्षता तटस्थता से भिनन है। इसी तरह गुटनिरपेक्षता अलगाववाद या प थकतावाद की नीति भी नहीं है। प थकतावाद का सीधा अर्थ है - दूसरे देशों की समस्याओं से स्वयं को अलग रखना। अमेरिका ने प्रथम विश्व-युद्ध के दौरान ऐसा ही किया था। लेकिन गुटनिरपेक्षता अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति जागरुक रहने की नीति है। भारत ने शीत युद्ध के किसी भी गुट में शामिल न होकर भी विश्व शान्ति के लिए दोनों गुटों के बीच तनाव कम करने के प्रयास किए। इससे स्पष्ट है कि गुटनिरपेक्षता प थकतावाद व तटस्थता की नीति नहीं है।

अब प्रश्न पैदा होता है कि गुटनिरपेक्षता क्या है। गुटनिरपेक्षता की नीति का प्रारम्भिक अर्थ था- गुटों की राजनीति से दूर रहना, दोनों गुटों (अमेरिकी व रूसी) के साथ मित्रता रखना, किसी के साथ भी सैनिक संधियां न करना और एक स्वतन्त्र नीति का विकास करना। गुटनिरपेक्षता को परिभाषित करते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरु ने कहा है-"गुटनिरपेक्षता का अर्थ है-अपने आप को सैनिक गुटों से दूर रखना तथा जहां तक सम्भव हो तथ्यों को सैनिक द ष्टि से न देखना। यदि ऐसी आवश्यकता पड़े तो स्वतन्त्र द ष्टिकोण रखना तथा दूसरे देशों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखना।" कुछ विद्वानों ने इसे शीत युद्ध के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया का नाम दिया है, क्योंकि इसका जन्म ही शीत युद्ध की परिस्थितियों की देन है। गुटनिरपेक्षता शब्द की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए लिस्का ने कहा है कि सबसे पहले यह बताना जरूरी है कि गुटनिरपेक्षता तटस्थता नहीं है। इसका अर्थ है-उचित ओर अनुचित का भेद जानकर सही का साथ देना। वास्तव में आज गुटनिरपेक्षता का अर्थ वह नहीं रहा जो 50 वर्ष पहले था। आज अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां बदल चुकी हैं, शीत युद्ध का खात्मा हो चुका है। भारत भी सैनिक गुटों वाले देशों से सम्बन्ध जोड़ चुका है। इसलिए गुटनिरपेक्षता को नए सिरे से परिभाषित करना आवश्यक है। वस्तुतः गुटनिरपेक्षता एक महान आन्दोलन व विदेश नीति का एक सिद्धान्त मानी जा सकती है जो विश्व शान्ति के लिए शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की स्थापना पर बल देती है तथा साम्राज्यवाद व रंगभेद के किसी भी रूप का विरोध करती है।

भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति

(India's Policy of Non-Alignment)

भारत गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाने वाला प्रथम राष्ट्र है। भारत ने अपने स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान ही इस नीति को अपनाना शुरु कर दिया था। 1936 में नेहरु जी ने कांग्रेस के द ष्टिकोंण को स्पष्ट करते हुए कहा था कि "भारत साम्राज्यवादी तथा फासीवादी ताकतों के विरुद्ध है। भारत उन शक्तियों का साथ दे सकता है जो इन बुराईयों के विरुद्ध है।" अपनी स्वतन्त्रता के बाद भी भारत ने यही द ष्टिकोण अपनाया। उसने अमेरिकी (पूंजीवादी) तथा रूसी (साम्यवादी) सैनिक गुटों के विरुद्ध एक ऐसी तीसरी शक्ति (Third Force) का विकास करने पर जोर दिया जो साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी ताकतों से त तीय विश्व की सुरक्षा कर सके। इसके लिए भारत ने गुटनिरपेक्षता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके विश्व के समस्त नव-स्वाधीन देशों की राष्ट्रीय सम्प्रभुता (National Sovereignty) की रक्षा का बीड़ा उठाया। भारत से स्पष्ट किया कि भारत शीत युद्ध की राजनीति से अलग रहते हुए भी दोनों गुटों से अपनी मैत्री बनाए रखेगा और उनकी बिना शर्त सहायता से वह अपनी उन्नति करने में तैयार रहेगा। ऐसा करते समय वह विश्व के सभी नव-स्वाधीन देशों

(New Independent States) जो त तीय विश्व (Third World) के नाम से जाने जाते हैं, की सुरक्षा का भी प्रतिनिधित्व करेगा।

भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का ध्येय किसी तीसरी शक्ति का नेत त्व करना नहीं रहा है, बल्कि शीत युद्ध (WorldWar) के वातावरण से तीसरी दुनिया के देशों को बचाकर विश्व शान्ति की स्थापना के प्रयास ही अधिक रहे हैं। भारत ने हमेशा विश्व शान्ति के लिए अमेरिकी तथा रूसी गुट में समन्वय पैदा करने का प्रयास किया है। उसने शीत युद्ध को गर्म युद्ध में परिवर्तित होने से रोका है। उसने शान्त बैठकर तमाशा देखने की बजाय विश्वशान्ति कायम रखने वाले गुट विशेष की नीतियों व कार्यक्रमों की भी सराहना की है। भारत ने सैनिक गुटों से स्वयं को दूर रखने का ही प्रयास किया है। भारत द्वारा की गई अधिकतर सन्धियां व समझौते आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अधिक रहीं हैं, सैनिकवादी कम। भारत द्वारा सैनिक गुटों की गतिविधियों से स्वयं को अलग रखने का तात्पर्य यह नहीं है कि भारत ने सैनिक गुटों के कारनामों के प्रति तटस्थता दिखाई है। वास्तविकता तो यह है कि भारत की यह गुटनिरपेक्षता केवल सैनिक गुटों से दूर रहने की नीति है, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से संन्यास लेने की नही। नेहरु जी ने 1949 में अमेरिकी कांग्रेस में बोलते हुए कहा था-"यदि कहीं पर स्वतन्त्रता खतरे में पड़ेगी या न्याय को खतरा होगा या कहीं पर आक्रमण किया जाएगा तो हम न तो तटस्थ रह सकते हैं और न ही रहेंगे। हमारी नीति तटस्थतावादी नहीं है, बल्कि यह ऐसी नीति है जो सक्रिय रूप से शान्ति स्थापित करने और उसे मजबूत आधार देने की नीति है।" इस तर्क के पक्ष में नेहरु जी ने आगे कहा कि "यदि किसी कारणवश हमें एक शक्ति गुट में शामिल होना ही पड़ता है तो शायद एक द ष्टिकोण से हम कुछ भला ही करेंगे, पर मुझको इसमें कोई शंका नहीं लगती कि एक विशाल द ष्टिकोण से ऐसा करना न केवल भारत के लिए बल्कि विश्व शान्ति के लिए खतरनाक होगा।" इससे स्पष्ट है कि भारत की गुटनिरपेक्षता विश्वशानित के लिए तटस्थता की नीति नहीं है, बल्कि यह गुटों की सक्रिय राजनीति में हस्तक्षेप करने की भी नीति है।

भारत की विदेश नीति का झुकाव प्रारम्भ में उदारवाद की पश्चिमी धारणा तथा लोकतन्त्र के प्रति था, परन्तु नेहरु जी ने कभी उन सैनिक गठबन्धनों (Military Alliances) का समर्थन नहीं किया जिन्हें अमेरिका ने साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए स्थापित किया था। भारत ने हमेशा ही सैनिक गठबन्धनों को साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का दूसरा रूप ही माना है। भारत ने हमेशा ही अपनी विदेश नीति की प्राथमिकताओं को प्राप्त करने के लिए शक्ति गुटों से दूर रहकर ही कार्य किया है। भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति को शान्ति की नीति के रूप में विश्व शान्ति के लिए अपनाया है। यह तो उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, रंगभेद और नव-उपनिवेशवाद का विरोध करने की नीति रही है। भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति सभी देशों की समान सम्प्रभुता के सिद्धान्त की प्रबल समर्थक रही है। इसने विश्व शान्ति के लिए सभी देशों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम रखने के विचार का पोषण किया है। गुटनिरपेक्षता की नीति आज भी विश्वशान्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने पर जोर देती है। इसके लिए वह परमाणु शस्त्रों के विनाश तथा पूर्ण निःशस्त्रीकरण के किसी भी कार्यक्रम का समर्थन करती है। भारत की गुटनिरपेक्षता आधुनिक समय में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना का समर्थन करती है।

भारत द्वारा गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाए जाने के कारण

(Reasons for Non-Alignment by India)

जिस समय भारत स्वतन्त्र हुआ तो उस समय विश्व शीत युद्ध के वातावरण से त्रस्त था। भारत को यह चिन्ता थी कि शीत युद्ध का वातावरण तीसरे विश्वयुद्ध को जन्म देकर नव-स्वाधीन देशों

की स्वतन्त्रता को खतरा उत्पन्न कर सकता है। इस विकट समस्या में भारत ने अपना बौद्धिक उत्तरदायित्व समझते हुए काफी सोच विचार करके शीत युद्ध के तनाव को कम करने के लिए किसी नई शक्ति की आवश्यकता को अपरिहार्य माना। भारत ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उभरी द्वि-ध्रुवीय गुटबन्दी के विरुद्ध तीसरा मोर्चा खोलने का संकल्प लिया ताकि विश्व शान्ति की सुरक्षा हो सके। इसके लिए भारत ने अपना गुटनिरपेक्षता का सिद्धान्त विश्व के सामने पेश किया जो आगे चलकर शीत युद्ध के तनाव को कम करने तथा त तीय विश्व के देशों की स्वाधीनता की सुरक्षा व आर्थिक विकास के मार्ग में मील का पत्थर सिद्ध हुआ। भारत द्वारा गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाए जाने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हो सकते हैं :-

(1) **अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति कायम रखना** (To maintain International Peace) :- द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व का अमेरिकी तथा रूसी गुट के बीच विभाजन हो गया था। इस स्थिति ने विश्व में शीत युद्ध के वातावरण को जन्म दिया। इससे विश्व शान्ति को भयंकर खतरा उत्पन्न होने की सम्भावना प्रबल हो गई। भारत जैसे नव-स्वाधीन देशों के सामने विश्व शान्ति कायम रखने की चुनौती तेजी से उभरने लगी। यदि तीसरा विश्व युद्ध हुआ तो त तीय विश्व की स्वाधीनता तो खतरे में पड़ेगी ही, साथ में विश्व शान्ति नष्ट हो जायेगी। इसलिए भारत ने किसी सैनिक गुट में शामिल न होकर अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारत ने शीत युद्ध के वातावरण में कमी लाने के लिए गुटनिरपेक्षता के सिद्धान्त का ही पालन किया और विश्व शान्ति के लिए कार्य किया।

(2) **भारत को विश्व की महान शक्ति बनाना** (To make India a Great Power) :- द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत के सामने दो ही विकल्प थे कि - प्रथम, वह किसी सैनिक गुट में शामिल जो जाए तथा दूसरा, वह स्वतन्त्र विदेश नीति का पालन करके भारत को विश्व की महान ताकत बनाए। भारत ने दूसरे विकल्प पर अमल करते हुए गुटनिरपेक्षता की नीति का ही पालन किया। इस नीति ने भारत को विश्व में अलग पहचान दी। भारत ने गुटनिरपेक्ष देशों का नेत त्व करके यह साबित कर दिया कि भारत त तीय विश्व का एक महान देश है जिसकी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में महत्वपूर्ण भूमिका है।

(3) **आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त करना** (To Achieve the Goal of Economic Development) :- सभी नव स्वाधीन देशों की तरह भारत की विदेश नीति का ध्येय भी आर्थिक कूटनीति द्वारा भारत का आर्थिक विकास करने का रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत किसी गुट में शामिल होकर विपरीत गुट से प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता की सम्भावना नष्ट नहीं करना चाहता था। इसी कारण उसने अमेरिका तथा सोवियत संघ से समान सम्पर्क व सम्बन्ध कायम रखने की नीति पर अमल किया। यदि भारत किसी गुट में शामिल हो जाता तो इससे विश्व शान्ति का मार्ग तो अवरुद्ध; होता ही, साथ में उसका आर्थिक विकास भी अवरुद्ध हो जाता। इसलिए भारत आज भी अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति द्वारा अमेरिका तथा अन्य पूंजीवादी देशों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सक्षम है।

(4) **नव-स्वाधीन देशों की स्वतन्त्रता की रक्षा** (To protect the Independence of Newly Independent States) :- भारत इस बात को अच्छी तरह समझता था कि यदि वह किसी सैनिक गुट में शामिल हुआ तो वह उन नव-स्वाधीन देशों की स्वतन्त्रता की रक्षा कैसे कर सकेगा जो अब तक उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के शिकार रहे हैं। इसलिए उसने अपनी विदेश नीति में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद तथा रंगभेद की नीति का विरोध गुटनिरपेक्षता में तलाश किया। आज भी भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति विश्व में कहीं भी आर्थिक साम्राज्यवाद का विरोध करती है और नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) का समर्थन करती है।

(5) **अपनी सम्प्रभुता व स्वतन्त्रता की रक्षा** (To Protect its Sovereignty and

Independence) :- भारत साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का शिकार रह चुका था। वह फिर से साम्राज्यवादी ताकतों के हाथ की कठपुतली नहीं बनना चाहता था। इसलिए उसने अपनी सम्प्रभुता व स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई। भारत की विदेश नीति आज भी बाह्य दबावों से मुक्त है। इसके पीछे नेहरु की गुटनिरपेक्षता की सोच ही कार्यरत् है।

(6) स्वतन्त्र विदेश नीति की इच्छा (Desire for an Independent Foreign Policy) :- अपनी स्वतन्त्रता के बाद भारत भी अन्य नव-स्वाधीन देशों की तरह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में स्वतन्त्र भूमिका निभाना चाहता था। इसलिए उसने गुटों से दूर रहकर ही अपनी स्वतन्त्र विदेश नीति के संचालन पर ध्यान दिया।

(7) घरेलु परिस्थितियां (Domestic Situation) :- यदि भारत किसी गुट में शामिल हो जाता तो विपरीत जनमत का उभरता ज्वार भारत में राजनीतिक अस्थिरता व ग ह-युद्ध जैसी स्थिति पैदा कर सकता था। इसलिए भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति ही अपनाई।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता के बाद भारत ने अपने आर्थिक विकास, स्वतन्त्र विदेश नीति की इच्छा, भारत की विश्व में मजबूत पहचान कायम करना, नव-स्वाधीन देशों की स्वतन्त्रता की रक्षा व विश्व शान्ति कायम रखने के लिए गुटनिरपेक्षता की नीति को ही अपने विदेश नीति का आधार बनाया। यह नीति ही आगे चलकर विश्व मानचित्र पर भारत को एक महान ताकत के रूप में प्रतिष्ठित करने में सफल हुई।

गुट निरपेक्षता की नीति के व्यावहारिक पहलु
(Practical Aspects of the Policy of Non-Alignment)

यदि गुटनिरपेक्षता की नीति को व्यावहारिक कसौटी पर कसा जाए तो भारत की विदेश नीति के रूप में यह महत्वपूर्ण परिणाम हमारे सामने प्रस्तुत करती है। आज गुटनिरपेक्षता कोरा आदर्शवाद ही नहीं है, बल्कि इसमें यथार्थवादिता का गुण अधिक है। आज तक भारत इस नीति के बल पर अमेरिका तथा रूस दोनों से आर्थिक व सैनिक सहायता प्राप्त करने में कई बार सफल रहा है। इस नीति ने भारत के अन्य देशों के साथ सम्बन्धों में सुधार लाया है। इसके माध्यम से भारत ने स्वतन्त्र विदेश नीति, गुटों से अलग रहना, विश्व-शान्ति व आर्थिक विकास जैसे विदेश नीति के ध्येयों को प्राप्त करने में कम या अधिक सफलता अवश्य प्राप्त की है। इसी नीति के बल पर भारत आज भी नव-साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद तथा रंगभेद की नीति का विरोध करने में सक्षम है। भारत की गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति के व्यावहारिक पहलु जानने के लिए हमें उसकी गौरवपूर्ण विकास यात्रा का विश्लेषण करना आवश्यक है।

(1) 1947 से 1952 तक गुटनिरपेक्षता (Non Alignment Policy from 1947 to 1952) :- भारत ने स्वतन्त्रता के बाद अपनी विदेश नीति के रूप में जिस गुटनिरपेक्षता की शुरुआत की, वह प्रारम्भ में पश्चिम देशों के प्रति झुकी हुई प्रतीत होती है। इस युग में भारत की विदेश नीति का झुकाव पश्चिम की तरफ झुका होना विदेश नीति के विश्लेषकों के लिए पेचिदगी पैदा करने वाला है। इसके पीछे मूल विचार यह है कि यह एक तरफ तो गुटनिरपेक्षता की बात करती है, जबकि दूसरी तरफ गुट विशेष की तरफ झुकी प्रतीत होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत के ब्रिटिश उपनिवेश के रूप में पश्चिमी देशों से ही व्यापारिक सम्बन्ध चलते आ रहे थे तथा भारत के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन पर पश्चिमी जगत का प्रभाव मिट नहीं सकता था। इसलिए प्रारम्भ में भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति को निष्पक्ष नहीं माना गया। यद्यपि सिद्धान्त तौर पर तो भारत की गुटनिरपेक्षता शक्ति गुटों से दूर रही, लेकिन व्यावहारिक तौर पर इसे गुटनिरपेक्ष नहीं माना गया। इस दौरान भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य

भी बना रहा। 1949 में नेहरु जी अमेरिका गए और उन्होंने ब्रिटैन की भी प्रसंशा की। आग्र उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ के जून 1950 के उस प्रस्ताव का समर्थन किया जो उत्तरी कोरिया को दक्षिण कोरिया पर आक्रमण के लिए दोषी ठहराता था। इसका सीधा अर्थ था - अमेरिका के पक्ष में समर्थन। इससे रूसी नेता स्टालिन नाराज हुए और उन्होंने भारत की गुटनिरपेक्षता की आलोचना की। लेकिन इस समय 1950 के अन्त में जब संयुक्त राष्ट्र की सेनाएं चीन की तरफ बढ़ने लगी तो भारत ने अमेरिका की भूमिका की आलोचना की। इस पर सोवियत संघ ने भारत की प्रसंशा की। लेकिन स्टालिन के जीवन काल में भारत व सोवियत संघ के सम्बन्ध कभी सौहार्दपूर्ण नहीं रह सके। इस दौरान नेहरु जी ने पश्चिमी देशों की तरफ अधिक ध्यान दिया। उसने चीन की तिब्बत पर सम्प्रभुता भी स्वीकार की और साम्यवादी चीन को मान्यता देने के साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र संघ में उसकी सदस्यता का भी समर्थन किया।

इस काल में भारत की गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति को किसी भी द ष्टिकोण से निष्पक्ष नहीं माना जा सकता क्योंकि कोरिया प्रस्ताव पर भी भारत का रूख अमेरिकी गुट की तरफ ही रहा। इसी तरफ विभाजित जर्मनी में एक को (पश्चिमी जर्मनी) जो पश्चिमी गुट से सम्बन्ध था, मान्यता देना तथा दूसरे (पूर्व जर्मनी) को राजनयिक मान्यता देने से इन्कार करना भी भारत की गुटनिरपेक्षता को आलोचना का पात्र बना देता है। लेकिन साथ में ही 1950 में जब संयुक्त राष्ट्र सेनाएं चीन की तरफ बढ़ने लगी तो भारत ने अमेरिका की भूमिका की आलोचना करके इस तर्क को झुठना दिया कि भारतीय गुटनिरपेक्षता का झुकाव पश्चिमी देशों की तरफ है। वस्तुतः यह काल गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति का शैशवकाल था। इसलिए गुटनिरपेक्षता को एक सिद्धान्त रूप में भारत की विदेश नीति में जगह प्राप्त करने के लिए काफी अथक प्रयास करने पड़े।

(2) 1953 से भारत-चीन युद्ध (1962) तक गुटनिरपेक्षता (Non Alignment Policy from 1953 to Sino-Indian War, 1962) :- इस दौरान सोवियत संघ के प्रति भारतीय द ष्टिकोण में कुछ परिवर्तन आया तथा 1953 में स्टालिन की म त्यु के बाद सोवियत नेत त्व ने भारत के प्रति सकारात्मक रुख अपनाया। इससे अमेरिका तथा भारत के सम्बन्धों में कटुता आना स्वाभाविक ही था। भारत तथा अमेरिका के सम्बन्धों में जहर घोलने वाली घटना तो 1954 में हुई। अब पाकिस्तान 'दक्षिण पूर्व एशिया सन्धि संगठन SEATO) का सदस्य बन गया। भारत ने इसकी सदस्यता को ग्रहण करने से मना कर दिया क्योंकि यह एक सैनिक संगठन था जो भारत की गुट निरपेक्षता के सिद्धान्त के विरुद्ध था। इस साम्यवाद विरोधी संगठन की सदस्यता को स्वीकार न करके भारत ने सोवियत संघ के दिल में अपनी जगह कायम कर ली। उधर SEATO सन्धि के तहत अमेरिका ने पाकिस्तान को शस्त्र सहायता देना शुरु कर दिया। भारत ने इसकी घोर निन्दा की। इस दौरान भारत ने चीन के साथ भी मधुर सम्बन्ध कायम किए। उसने चीन के साथ मिलकर 1954 में पंचशील सिद्धान्त का प्रतिपादन किया ताकि दोनों देशों के बीच सम्बन्धों में प्रगाढता लाई जा सके। इसी समय भारत ने हिन्द-चीन के संघर्ष को भी हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

1954 में फ्रांस ने पांडिचेरी बन्दरगाह व सघीय क्षेत्र तो भारत को सौंप दिया, लेकिन पुर्तगाल ने गोवा के प्रश्न पर ऐसा सौहार्द नहीं दिखाया। भारत ने पुर्तगाल की स्वतन्त्रता के व्यवहारिक प्रयास शुरु कर दिए तो अमेरिका के विदेश मन्त्री जान फोस्टर डलेस ने अमेरिका की तरफ से भारतीय कार्यवाही की निन्दा की। इससे भारत अमेरिका की तरफ झुकने की बजाय सोवियत संघ की तरफ झुकने लगा। नेहरु जी सोवियत संघ गए और सोवियत नेता खुश्चेव भी भारत आए। अब भारतीय गुटनिरपेक्षता का झुकाव सोवियत संघ व चीन की तरफ हो गया। 1956 में स्वेज नहर संकट के समय भारत ने ब्रिटेन, फ्रांस और इजराइल की नीति की

आलोचना की और मित्र का समर्थन किया। इससे भी भारत की गुटनिरपेक्षता का झुकाव सोवियत संघ के प्रति हुआ। इसी दौरान 1956 में हंगरी मामले में भी भारत ने सोवियत संघ की खुलकर आलोचना नहीं की। इससे पश्चिमी गुट की भारत के प्रति नाराजगी स्वाभाविक ही थी।

भारत तथा सोवियत संघ के मित्रता को उस समय ग्रहण लग गया जब 1957 में देश में खाद्यान्नों और विदेशी मुद्रा की भारी कमी हो गई। दूसरी पंचवर्षीय योजना असफल रही। देश में दूसरे आम चुनावों के बाद साम्यवादियों का प्रभाव बढ़ने लगा। स्वयं कांग्रेस भी गुटबन्दी का शिकार हो गई। कांग्रेस पार्टी के दक्षिणपंथी नेता अमेरिका के प्रति लगाव रखने पर जोर देने लगे। उन्हें विश्वास था कि भारत को सोवियत संघ की बजाय अमेरिका ही अधिक आर्थिक मदद दे सकता है। दक्षिणपंथियों के दबाव में आकर नेहरु जी विदेशी आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए अमेरिका गए। अब भारत ने हंगरी समस्या पर सोवियत संघ की नीति की खुली आलोचना करनी शुरु कर दी। भारत द्वारा अमेरिका के साथ सम्बन्ध बढ़ाने का महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि अब भारत पश्चिमी देशों के साम्राज्यवादी कारनामों की अनदेखी करने लगा। उसने वियतनाम में अमेरिकी हस्तक्षेप की नीति के सम्बन्ध में भी निष्पक्ष व स्पष्ट विचार व्यक्त नही किए। उधर चीन की बढ़ती महत्वाकांक्षाएं अब भारत के लिए खतरा बन चुकी थी। 1962 में भारत-चीन युद्ध इसी का प्रतिफल था। इस युद्ध ने भारतीय गुटनिरपेक्षता की प्रासांगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया। इस युद्ध में सोवियत संघ ने भारत की कोई मदद नहीं की। भारत ने पश्चिमी गुट में सहायता की पेशकश की तो उसे अमेरिका तथा ब्रिटेन ने काफी बड़ी मात्रा में शस्त्र भेजे। इस सहायता से भारत को प्राप्त होते ही विश्व समुदाय ने गुटनिरपेक्षता के औचित्य को झुठला दिया। स्वयं भारत में भी इसकी काफी आलोचना हुई। विरोधियों ने यह कहना शुरु कर दिया कि जब भारत एक साम्यवादी देश से युद्धरत है और दूसरी तरफ वह पश्चिमी गुट से सैनिक मदद प्राप्त कर चुका है तो ऐसे में गुटनिरपेक्षता का क्या औचित्य है। कुछ विद्वानों ने तो यहां तक कह दिया कि जब गुट निरपेक्षता भारत की सुरक्षा की गारन्टी देने में असमर्थ है तो इसे समाप्त ही कर देना चाहिए।

यदि इस दौरान भारत की गुटनिरपेक्षता की समीक्षा की जाए तो महत्वपूर्ण तथ्य यह उभरता है कि भले ही भारत की गुटनिरपेक्षता राष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्र में असफल रही हो, परन्तु विश्वशान्ति के क्षेत्र में यह निरन्तर प्रयासरत् रही है। इस दौरान गुटनिरपेक्षता को आदर्शवादिता की पोल खुलने से भारत की विदेश नीति के इस सिद्धान्त को यथार्थवादी बनाना अपरिहार्य हो गया। इस आक्रमण के बाद भारत सकारात्मक तथा गतिशील गुटनिरपेक्षता का मार्ग छोड़कर नकारात्मक गुट-निरपेक्षता के मार्ग पर अग्रसर हुआ। अब भारत का झुकाव पश्चिमी देशों की तरफ बढ़ने लगा। यद्यपि चीनी आक्रमण ने भारतीय गुटनिरपेक्षता को काफी आघात पहुंचाया, लेकिन फिर भी भारत ने इसका परित्याग नहीं किया। भारत ने तर्क दिया कि पश्चिमी देशों से भारत को जो सहायता प्राप्त हुई है, वह बिना शर्त है। इसी तरह गुटनिरपेक्षता युद्ध न करने की नीति भी नहीं है। यदि कोई देश युद्ध में शामिल हो जाता है तो फिर भी वह गुटनिरपेक्ष देश बना रह सकता है। नेहरु जी ने स्पष्ट किया कि भारत किसी भी अवस्था में गुटनिरपेक्षता का परित्याग नहीं करेगा और भविष्य में इसे और अधिक प्रासंगिक बनाने का प्रयास करेगा। वस्तुतः भारत-चीन युद्ध ने भारतीय गुटनिरपेक्षता को नए धरातल पर प्रतिष्ठित होने के लिए बाध्य कर दिया जो भारत की विदेश नीति के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण बदलाव का सूचक था।

(3) 1963 से शीत युद्ध की समाप्ति तक गुटनिरपेक्षता (Non Alignment Policy from 1963 to the end of Cold War) :- 1962 के चीनी आक्रमण के बाद भारत की गुटनिरपेक्षता में यथार्थवादिता का पुट आगे चलकर स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। 1963 में भारत-चीन सीमा विवाद पर मास्को द्वारा भारत का समर्थन करना भारत की विदेश नीति के इस सिद्धान्त की महान सफलता मानी जाती है। चीनी आक्रमण के बाद भारत की गुटनिरपेक्षता की जो आलोचना हो रही

थी, उसका करारा जवाब अब आलोचकों के सामने था। 1964 में नेहरु की म त्यु के बाद प्रधानमन्त्री लाल बहादुर शास्त्री ने भी गुटनिरपेक्षता को व्यवहारवादी बनाने का प्रयास किया। शास्त्री ने लन्दन राष्ट्रमण्डलीय सम्मेलन में स्पष्ट रूप से कहा-"भारत नेहरु द्वारा निर्धारित गुटनिरपेक्षता की नीति से हटकर कुछ भी नहीं करेगा।" शास्त्री ने श्रीलंका तथा नेपाल से सम्बन्ध सुधारने के प्रयास किये। 1961 में जन्म लेने वाला गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अब अपने विकास के मार्ग पर आगे बढ़ रहा था। अक्टूबर, 1964 में काहिरा में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में भारत का प्रतिनिधित्व शास्त्री ने ही किया। इस सम्मेलन में उन्होंने विश्व शान्ति के लिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की भूमिका पर कहा कि "विश्व शान्ति का लक्ष्य परमाणु निःशस्त्रीकरण, सीमा विवादों का शान्तिपूर्ण निपटारा, विदेशी प्रभुत्व, आक्रमण, तोड़फोड़ और जातीय भेदभाव से मुक्ति, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से आर्थिक विकास को तेज करना तथा संयुक्त राष्ट्र के लिए पूर्ण समर्थन एवं शान्ति और विकास के लिए कार्यक्रम निर्धारित करके ही प्राप्त किया जा सकता है।"

इस दौरान भारत में खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो गया। इस अवस्था में भारत को अमेरिका द्वारा सशर्त सहायता देने की बात कही तो भारत ने इन्कार कर दिया और वियतनाम में अमेरिका के हस्तक्षेप की निन्दा की। इसके साथ ही पाकिस्तान ने 'कच्छ' पर आक्रमण कर दिया। शास्त्री जी ने पाकिस्तान को आक्रमण बन्द करने की शांतिपूर्ण पेशकश की। उसने अमेरिका को भी उस वचन की याद दिलाई जो ऑइजनहावर ने दिया था कि अमेरिका भारत पर पाकिस्तान के सशस्त्र आक्रमण को बर्दाश्त नहीं करेगा। 9 अप्रैल 1965 से 30 जून 1965 तक चलने वाले इस युद्ध के लिए ब्रिटेन ने पाकिस्तान को ही दोषी माना। अमेरिका ने भारत तथा पाकिस्तान दोनों पर ही आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये। पाकिस्तान की CEATO तथा SENTO की सदस्यता भी उसके काम नहीं आई। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सैनिक गुटबन्दी में शामिल होने की बात निरर्थक साबित हुई। इससे भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति को मजबूत आधार मिला। 15 अगस्त, 1965 को पाकिस्तान ने जब कश्मीर में उत्पात मचाने के लिए मुजाहिदों को भेज दिया और फिर 1 सितम्बर 1965 को स्वयं सैनिक आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण भारत की गुटनिरपेक्षता के लिए नया खतरा लेकर आया। परन्तु भारत ने इस बार भी पाकिस्तान को करारी मात दी। भारत ने पाकिस्तान की साम्राज्यवादी आकांक्षा को धूमिल कर दिया। इस युद्ध के बाद होने वाले ताशकंद समझौते (1966) के तुरन्त बाद ही शास्त्री जी की म त्यु हो गई। परन्तु शास्त्री जी ने भारत की गुटनिरपेक्षता को जो यथार्थवादी व व्यवहारिक रूप प्रदान किया, आगे चलकर वही भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति की सफलता का आधार बनां

शास्त्री जी की म त्यु के बाद भारत की विदेश नीति का संचालन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने किया। उन्होंने एशियाई और अफ्रीकी देशों के बीच एकता कायम रखने पर बल दिया। उन्होंने गुटनिरपेक्षता को आर्थिक तथा राजनीतिक प्रोत्साहन के सांचे में ढाला। 1966 में नई दिल्ली में होने वाले गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में उन्होंने उपनिवेशवाद तथा रंगभेद की नीति का विरोध किया। 1967 में पश्चिमी एशिया संकट के समय भारत ने इजराइल के विरुद्ध अरब देशों का ही समर्थन किया। इससे पश्चिम देशों का नाराज होना स्वाभाविक ही था। 1968 में जब सोवियत संघ ने पाकिस्तान को युद्ध सामग्री भेजी तो भारत ने इसका विरोध किया, परन्तु सोवियत संघ ने जब चेकोस्लोवाकिया में सैनिक हस्तक्षेप किया तो भारत ने अपना मुंह बन्द रखना ही श्रेयकर समझा। इसी कारण आलोचकों ने गुटनिरपेक्षता की आलोचना करनी शुरु कर दी। 1970 में लुसाका गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में इन्दिरा गांधी ने कहा कि "बड़ी शक्तियों ने गुटनिरपेक्षता के औचित्य को कभी स्वीकार नहीं किया है। उन्होंने न तो उपनिवेशवाद को और न ही जातीय भेदभाव की समाप्ति का समर्थन किया है। इसके विपरीत वे जिस नये उपनिवेशवाद की संरचना खड़ी कर रहे हैं, इसे हम तभी नियन्त्रित कर सकते हैं जब हम गुटनिरपेक्षता के मौलिक सिद्धान्तों का पालन करने में एकजुट हों।"

इन्दिरा गांधी की गुटनिरपेक्षता की वास्तविक अग्निपरीक्षा का समय 1971 के भारत-पाक युद्ध में आया। पूर्वी पाकिस्तान (बंगला देश) को स्वतन्त्र कराकर भारत ने नया इतिहास रच डाला। पाकिस्तान के दमनचक्र से बंगलादेश की जनता को मुक्ति दिलाने के लिए भारत द्वारा किये गये प्रयास उसके लिए गम्भीर चुनौती बन गए। इस युद्ध में अमेरिका और चीन ने पाकिस्तान का समर्थन किया। अमेरिका ने तो भारत के विरुद्ध पाकिस्तान की तरफ से युद्ध में कूदने तक की धमकी भी दे डाली थी। इस दौरान भारत ने अपनी गुटनिरपेक्षता की रक्षा करने के लिए सोवियत संघ के साथ अगस्त 1971 में एक मैत्री तथा सहयोग की सन्धि करनी पड़ी जो इस युद्ध में काम आई। भारत ने गुट निरपेक्षता की नीति पर अमल करते हुए 2 जुलाई 1972 को पाकिस्तान के साथ शिमला समझौता किया और पारस्परिक विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने का वचन भी दिया। इस दौरान भारत सोवियत संघ के काफी निकट आ गया। इससे भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में बिगाड आना स्वाभाविक ही था। भारत की गुटनिरपेक्षता के बारे में कहा गया कि अब भारत गुटनिरपेक्ष देश नहीं रहा क्योंकि यह सोवियत गुट की तरफ झुक चुका है। लेकिन बदलाव समय की मांग था जो गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने के लिए आवश्यक था। इन्दिरा गांधी द्वारा 1974 में परमाणु कार्यक्रम का लक्ष्य प्राप्त कर लेने पर भी भारत की गुटनिरपेक्षता सुरक्षित रही। सोवियत नेता ब्रेजनेव ने भारत की गुटनिरपेक्ष की लोकप्रियता के बारे में कहा "गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का एक प्रमुख कारण रहा है और अब भी है। इसकी लोकप्रियता साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा आक्रामक युद्ध के विरुद्ध उठाये गये कदमों से सिद्ध होती है।" वस्तुतः 1977 तक गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एक लोकप्रिय आन्दोलन बन चुका था।

1977 में इन्दिरा सरकार अपनी लोकप्रियता खो बैठी और उसका स्थान जनता सरकार ने ले लिया। अब भारत की विदेश नीति का संचालन प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई ने किया। इस दौरान भारत की विदेश नीति को अटल बिहारी वाजपेयी के द्वारा विदेश मन्त्री के रूप में नई दिशा मिली। जनता सरकार ने भारत की गुटनिरपेक्षता के झुकाव को सोवियत संघ की तरफ से कुछ कम किया। उसने सभी तरह के उपनिवेशवाद जाति व हिंसा की आलोचना की और गुटनिरपेक्षता की नीति के आधार पर ही अपने पड़ोसी देशों - चीन, बंगलादेश, नेपाल तथा पाकिस्तान के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। भारत ने स्पष्ट तौर पर कहा कि वास्तविक गुट निरपेक्षता इस बात में निहित है कि हमें अमेरिका के साथ भी सम्बन्ध सुधारने पर बल देना चाहिए। इस दिशा में भारत ने कुछ प्रयास भी किए। परन्तु परमाणु अप्रसार कार्यक्रम पर मतभेद होने के कारण भारत-अमेरिकी सम्बन्ध मधुर नहीं हो सके। 1980 में इन्दिरा गांधी के फिर से गुटनिरपेक्षता की नीति का संचालन करने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय भारत-सोवियत मैत्री प्रगाढ़ हुई। इन्दिरा गांधी ने अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप (1979) पर कुछ चिन्ता भी व्यक्त की। उसने ईरान-ईराक युद्ध को बन्द करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी पड़ी। उसने हिन्द महासागर में अमेरिकी हस्तक्षेप व शस्त्र प्रतिस्पर्धा पर चिन्ता व्यक्त की और इस क्षेत्र को शान्ति का क्षेत्र घोषित करने पर जोर दिया। इस बार इन्दिरा गांधी ने गुटनिरपेक्षता के सिद्धान्त के रूप में नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) के विचार का समर्थन किया। इसके लिए उसने दक्षिण-दक्षिण के सहयोग पर बल दिया। इस दौरान भारत ने ईजराइल विरोधी नीति जारी रखी तथा परमाणु अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर भी नहीं किए।

1984 में इन्दिरा गांधी की म त्यु के बाद गुटनिरपेक्षता की नीति का संचालन प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने किया। राजीव गांधी ने अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रति व्यावहारिक द ष्टिकोण अपनाया। उसने निःशस्त्रीकरण, विश्व शान्ति व समानता तथा परस्पर लाभ के सिद्धान्तों के आधार पर नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (NIEO) स्थापित करने पर बल दिया। उन्होंने परमाणु शस्त्रों के निर्माण, परीक्षण व इसके संचालन एवं उन्हें दूसरे राज्यों को दिये जाने पर तुरन्त रोक लगाने पर बल दिया। 1986 के हरारे गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में उन्होंने गुटनिरपेक्षता के बारे में कहा-"गुटनिरपेक्षता एक

विचार है, एक वास्तविकता है, एक आन्दोलन है तथा इतिहास को बदलने वाली शक्ति भी है। हम एक बार फिर इसके मूल विचार, गरिमा व सम्मान के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व व विकास के प्रति समर्पित होते हैं।" इस सम्मेलन में भारत ने दक्षिण अफ्रीका में जातीय या रंगभेद की नीति की खुलकर आलोचना की। इसमें भारत ने अफगानिस्तान तथा निकारागुआ में भी विदेशी हस्तक्षेप की निन्दा की। इस सम्मेलन में भारत ने जोर दिया कि इस आन्दोलन के समर्थक देशों को सैनिक गुटों वाली नीति पर चले बिना ही शान्तिपूर्ण वार्ताओं द्वारा समस्याओं का समाधान तलाशना चाहिए। राजीव गांधी ने अपने शासन काल में पड़ोसी देशों के साथ भी मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास किये। उसने श्रीलंका की जातीय समस्या का समाधान करने के लिए उसकी भरपूर मदद की और वहां शान्ति सेना भेजी। उसने पाकिस्तान, चीन, नेपाल व बंगला देश के साथ भी सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को प्राथमिकता दी। वस्तुतः इस युग में भारत की गुटनिरपेक्षता व्यावहारिक व यथार्थवादी ही रही।

1990 में सोवियत संघ ने वार्सा पैकट को समाप्त करने की घोषणा कर दी और इसके साथ ही शीतयुद्ध भी समाप्त हो गया तो भारत की गुटनिरपेक्षता पर प्रश्नचिन्ह लग गया। आलोचकों ने यह कहना शुरु कर दिया कि जब बर्लिन दीवार भी ध्वस्त हो चुकी है और सोवियत संघ का विघटन हो चुका है तो गुटनिरपेक्षता की प्रासांगिकता ही क्या है। उन्होंने तर्क दिया कि गुट निरपेक्षता का जन्म ही शीत युद्ध के वातावरण में हुआ था। अब शीत युद्ध की समाप्ति होने पर गुटनिरपेक्षता को जारी रखना भी एक बेईमानी है।

(4) शीत-युद्ध की समाप्ति के बाद गुटनिरपेक्षता (Policy of Non Aliagnment after the Cold War) :- शीतयुद्ध की समाप्ति तथा सोवियत संघ के विघटन की प्रक्रिया ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में जो बदलाव ला दिया उससे भारत की गुटनिरपेक्षता का प्रभावित होना भी स्वाभाविक ही था। जून, 1991 में नरसिम्हा राव ने गुटनिरपेक्षता का बचाव करने के पक्ष में तर्क देते हुए कहा कि "पहले की तुलना में गुटनिरपेक्षता की नीति का औचित्य आज और भी अधिक महत्वपूर्ण है। जब तक राष्ट्रों की दादागिरी चलती रहेगी तब तक भारत भी इस नीति को अपनाए रहेगा।" उसके बाद श्री इन्द्रकुमार गुजराल भारत के विदेश मन्त्री बने तथा देवगौड़ा प्रधानमन्त्री बने। दोनों ही नेताओं ने भारत की गुटनिरपेक्षता को सार्थक बतायां बाद में जब इन्द्रकुमार गुजराल भारत के प्रधानमन्त्री बने तो उन्होंने भी नेहरु जी की राह पर चलते हुए अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर गुटनिरपेक्षता की नीति की सार्थकता को सिद्ध किया। उन्होंने 1997 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में बोलते हुए कहा-"औपनिवेशिक एवं अशक्त राष्ट्रों की आवाज की अभिव्यक्ति थी, राजनीतिक और आर्थिक रूप से असमान विश्व का यथार्थ चित्रण एवं उसकी कार्य सूची थी। आज यह अपने वाले समय के लिए विवेक की आवाज तथा सकारात्मक कार्ययोजना है, जिसकी यह मांग है कि सभी तरफ से, प्रमुख विषयों पर, विश्वव्यापी समस्याओं पर, सांझा उद्देश्य और योगदान किया जाए।" गुजराल के बाद प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी गुटनिरपेक्षता की नीति का खुलकर समर्थन किया और आवश्यकतानुसार इसे व्यावहारिक रूप भी दिया। मई, 2004 में गठित नई सांझा सरकार ने भी मनमोहन सिंह जी के नेत त्व में यह घोषणा की है कि भारत नेहरु जी की गुटनिरपेक्षता की नीति की हर कदम पर पालना करने का प्रयास करेगा। गुजराल सिद्धान्त के रूप में पड़ोसी देशों से मधुर सम्बन्ध स्थापित किये जायेंगे तथा अमेरिका के साथ भी भारत अच्छे व सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को प्राथमिकता देगा। इसी तरह उसने योजना की कि वाजपेयी युग में स्थापित इजराईल के साथ सम्बन्धों में कोई बदलाव नहीं होगा। वस्तुतः वर्तमान सरकार की गुटनिरपेक्षता की नीति भी पड़ोसी देशों, अमेरिका, इजराईल, अरब देशों, ब्रिटेन, सोवियत संघ (रूस) के साथ मधुर सम्बन्ध कायम करने पर जोर देने की बात करती प्रतीत होती है ओर इसी सन्दर्भ में भारत ने पाकिस्तान के साथ परमाणु मुद्दे पर जून 2004 में बातचीत भी की है तथा इराक में सेना न भेजने का फैसला भी किया है।

वास्तव में भारत की विदेश नीति की सबसे महत्वपूर्ण चुनौती शीतयुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में आए परिवर्तनों के अनुसार स्वयं ढालने की रही है। भारत ने अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति के लचीले स्वरूप के कारण जहां एक ओर पूर्व सोवियत संघ के सहयोग पर आश्रित अपनी स्थिति बदल कर अमेरिका से निकट सहयोग बनाने में सफल रही है, वहीं दूसरी तरफ वह भारत के आर्थिक व व्यापारिक हितों को आशियन (ASEAN) तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों से भी जोड़ने की रही है। इस दौरान भारत ने परमाणु अप्रसार, C.T.B.T. (1993) तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर आम सहमति प्राप्त करने में काफी सफलता प्राप्त की है। इसने स्वयं को बदलती परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत ने 2002 में अफगानिस्तान में अमेरिकन हस्तक्षेप तथा 2003 में ईराक में हस्तक्षेप की खुलकर निन्दा न करके अपना झुकाव पश्चिमी जगत की तरफ ही दर्शाया है, लेकिन भारत ने अमेरिका द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के बारे में अपनाये गये भेदभावपूर्ण द ष्टिकोण के प्रति अपनी चिन्ता अवश्य जाहिर की है।

उपरोक्त विवेचन के बाद संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि एक आदर्शवादी सिद्धान्त के रूप में जन्म लेने वाली भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति कई अवसरों पर यथार्थवादी साबित हुई है। इसने हमेशा ही उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व रंगभेद की नीति के किसी भी रूप का विरोध किया है। इसने विश्व शान्ति के लिए अपने पड़ोसी देशों तथा अन्य राष्ट्रों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने पर बल दिया है। इसकी पुष्टि 'गुजराल सिद्धान्त' करता है। इसने शीत युद्ध के वातावरण में भी और शीत युद्ध के बाद भी अन्तर्राष्ट्रीय तनावों को कम करने के प्रयासों का समर्थन किया है। वर्तमान में यह न्यायपूर्ण व शोषण रहित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की प्रबल पक्षधर है। भारत का मानना है कि जब तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शोषण व अन्याय विद्यमान है, तब तक गुटनिरपेक्षता की भी प्रासंगिकता है। वर्तमान निर्गुट आन्दोलन का ध्येय यही है कि विश्व में भेदभावपूर्ण आर्थिक सम्बन्धों का अन्त हो। इसलिए भारत की गुट निरपेक्षता दक्षिण-दक्षिण सहयोग के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय दबाव बनाना चाहती है। आज गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में 116 देशों का होना गुटनिरपेक्षता के महत्व को स्वतः ही सिद्ध कर देता है। आज जापान और जर्मनी नई आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहे हैं। इसके साथ ही रूस फिर से एक बार विश्व की महान शक्ति बनने की सम्भावना दर्शाता है। ऐसे में गुटनिरपेक्षता की भूमिका में व द्धि होने की भी प्रबल सम्भावना है। वस्तुतः स्वतन्त्र विदेश नीति निर्धारण में गुटनिरपेक्षता की आज भी प्रासांगिकता है।

भारत की गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में त तीय विश्व के अग्रणी देश के रूप में भूमिका

(India's Role in Non-Alignment Movement as a leading Country of Third World

भारत गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का सबसे अधिक शक्तिशाली देश है जो त तीय विश्व से सम्बन्ध रखता है। त तीय विश्व में वे सभी देश शामिल हैं जो लम्बे समय तक उपनिवेशिक या साम्राज्यवादी दासता के शिकार रहकर बाद में ही स्वतन्त्र हुए हैं। इन देशों में एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के ही देश गिने जाते हैं। भारत भी स्वयं ब्रिटिश उपनिवेशवाद का शिकार रह चुका है। नवोदित राष्ट्र के रूप में 1947 में स्वतन्त्र देश के रूप में अपने बौद्धिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हुए भारत ने उन सभी देशों की समस्याओं की तरफ अपना ध्यान लगाया जो उपनिवेशवाद के पंजों से मुक्त हो चुके थे या मुक्ति के प्रयास कर रहे थे। भारत ने उपनिवेशवाद के पंजों से उन्हें मुक्ति दिलाने तथा मुक्ति पा चुके देशों की स्वतन्त्रता की रक्षा करने के उद्देश्य से उन सभी देशों को एक मंच पर लाने की बात सोची। उसने शीत युद्ध के भयावह वातावरण से त तीय विश्व के देशों के हितों की रक्षा करने के लिए तीसरी शक्ति में रूप में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को सशक्त बनाया।

प्रारम्भ में गुटनिरपेक्षता भारत की विदेश नीति का एक सिद्धान्त मात्र थी जो आगे चलकर तीसरी दुनिया (Third World) का सबसे सशक्त व महत्वपूर्ण आन्दोलन बन गई। भारत की विदेश नीति से आन्दोलन बनने की प्रक्रिया 1961 में बेलग्रेड सम्मेलन में पूरी हुई। 1961 में बेलग्रेड सम्मेलन में 25 सदस्यों से शुरु होने वाला यह आन्दोलन 116 सदस्यों की विशाल संख्या पर पहुंच चुका है। इस आन्दोलन को गति देने में भारत की भूमिका ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही है। इस आन्दोलन के माध्यम से भारत ने हमेशा ही त तीय विश्व के हितों की रक्षा करने का प्रयास किया है। इस आन्दोलन द्वारा त तीय विश्व के हितों के लिए भारत द्वारा अदा की गई भूमिका को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

(1) गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की स्थापना (Founder of Non Alignment Movement) :- भारत गुटनिरपेक्षता के विचार को जन्म देने वाला पहला देश है। सबसे पहले भारत ने इसे शीत युद्ध के वातावरण अर्थात अमेरिकी तथा रूसी गुटबन्दी से स्वयं को दूर रखने तथा विश्व शान्ति की नीति के रूप में अपनाया जो बाद में मित्र तथा यूगोस्लाविया की मदद से एक आन्दोलन में परिवर्तित हो गई। भारत ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की स्थापना के लिए 1961 में एशिया और अफ्रीका के 25 देशों को एक मंच पर एकत्रित किया। 25 देशों का एक मंच पर एकत्रित होना भारत के प्रयासों का ही साकार रूप था। इस प्रयास से ही गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की नींव पड़ी और यह अन्य देशों में भी अपने पैर पसारने में सफल हुआ। कर्नर नासिर (मित्र) तथा मार्शल टीटो (यूगोस्लाविया) ने इस आन्दोलन की स्थापना में भारत की भरपूर मदद की। आगे चलकर यही आन्दोलन त तीय विश्व के हितों का महान संरक्षक बन गया, जो आज भी इस भूमिका को बेखुबी निभा रहा है।

(2) नवोदित राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का समर्थन (Support to Independence of New States) :- भारत ने गुट निरपेक्ष आन्दोलन के माध्यम से तीसरी दुनिया के नव-स्वतन्त्र देशों की स्वतन्त्रता के लिए चलाए जा रहे आन्दोलनों का समर्थन किया। भारत ने सभी नवोदित राष्ट्रों को विदेश नीति के क्षेत्र में स्वतन्त्र द ष्टिकोण विकसित अपनाने का सुझाव दिया। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के प्रमुख देश के रूप में भारत ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, उपनिवेशवाद व रंगभेद की समाप्ति को गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का प्रमुख मुद्दा बनाया। उसने त तीय विश्व के देशों में चल रही उपनिवेशिक गतिविधियों के अन्त के लिए राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त का समर्थन किया तथा रंगभेद की नीति को जड़ से समाप्त करने की नीति की जोरदार वकालत की। 1990 में नामीबिया की स्वतन्त्रता व दक्षिण अफ्रीका से रंगभेद की समाप्ति के लिए भारत द्वारा लम्बा संघर्ष किया जाना इस बात का प्रमाण है कि कोशिश हमेशा ही यह रही है कि तीसरी दुनिया के सभी देश राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र हों तथा उपनिवेशिक दासता की हर बेड़ी को तोड़ने के लिए एकजुट होकर प्रयास करें। भारत के प्रयासों को गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के मंच पर उस समय भारी सफलता मिली जब 1990 के अन्त तक दक्षिण अफ्रीका तथा एशिया के सभी देश मुक्त हो गए।

(3) विश्व शान्ति के विचार का प्रबल समर्थक (Ardent Supporter of World Peace) :- भारत ने हमेशा ही गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के प्रमुख देश के रूप में विश्व शान्ति के आदर्श को प्रमुखता दी है। नेहरु जी द्वारा पंचशील सिद्धान्त को गुटनिरपेक्षता के साथ जोड़ना इस बात का पक्का प्रमाण है कि भारत विश्व शान्ति के काफी संवेदनशील व जागरूक रहा है। शीत युद्ध के वातावरण में कमी लाने के प्रयास भारत द्वारा विश्व शान्ति की दिशा में ही महत्वपूर्ण प्रयास थे। भारत ने हमेशा इस बात पर बल दिया है कि अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से हल करने को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिये। इसीलिए भारत ने हमेशा गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के मंच पर इस बात को बार-बार उठाया है कि उपनिवेशवाद व रंगभेद का अन्त किया जाए, विकासशील देशों का आर्थिक विकास हो, परमाणु शस्त्रों का विनाश किया जाए, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा विश्व शान्ति के प्रयास किए जाएं तथा संयुक्त राष्ट्र संघ का लोकतांत्रिकरण हो। इन प्रयासों से न केवल तीसरी दुनिया की

सभी समस्याएं हल हो सकती हैं बल्कि विश्व में पूर्ण शान्ति का वातावरण भी तैयार किया जा सकता है। भारत ने अपनी विदेश नीति में इन प्रयासों को उद्देश्यों के रूप में स्थान दिया है। इन्हीं उद्देश्यों को भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन करते हुए प्राप्त करने का भरपूर प्रयास किया है। भारत ने अपने पड़ोसी देशों के साथ भी विपरीत परिस्थितियों में अपने उन आदर्शों के अनुरूप व्यवहार किया है जो विश्व शान्ति के लिए बहुत आवश्यक है।

(4) त तीय विश्व के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करना (To present itself as an ideal before the Third World Countries) :- भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति को व्यावहारिक रूप देकर तीसरी दुनिया के देशों के सामने स्वयं को आदर्श रूप में पेश किया है। भारत ने हमेशा ही अपने पड़ोसी देशों के साथ शान्तिपूर्ण ढंग से आपसी विवाद हल करने को प्राथमिकता दी है। भारत व चीन के बीच पंचशील सिद्धान्त पर सहमति बनना इस बात का सबूत है कि भारत पड़ोसी देशों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को प्राथमिकता देता रहा है। परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र होने के बावजूद भी भारत ने हमेशा ही शान्तिपूर्ण प्रयासों को ही प्राथमिकता प्रदान की है। यद्यपि पड़ोसी देशों की तरफ से भी इस दिशा में सकारात्मक प्रयास कम ही देखने को मिले हैं। पाकिस्तान ने हमेशा ही भारत के प्रयासों को शक की द ष्टि से देखा है। यद्यपि भारत ने भी गुटनिरपेक्षता को नयापन देने के नाम पर गुटनिरपेक्षता के आदर्श या मूल सिद्धान्तों का ही कई बार उल्लंघन किया है, जैसे-1971 की भारत-सोवियत मैत्री, खाड़ी युद्ध में अमेरिकी विमानों को ईंधन देना आदि। परन्तु फिर भी कई गुटनिरपेक्ष देश भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति को ही अपना आदर्श मानते हैं और समयानुसार उसे भारत की तरह समसामयिक बनाने के मार्ग पर अग्रसर रहते हैं। एशिया व अफ्रीका के अनेक ऐसे देश हैं जो भारत की स्वतन्त्र विदेश नीति, सैनिक गुटों से अलगाव, अपनी भूमि पर सैनिक अड्डों की आज्ञा न देना, परमाणु तकनीक के प्रसार हेतु भेदभावपूर्ण रवैये का विरोध करना, सार्वभौमिक निःशस्त्रीकरण पर बल देना, नई अन्तराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का समर्थन करना आदि का अनुसरण करते हैं। भारत द्वारा दक्षिण-दक्षिण सहयोग के सभी प्रयासों को गुटनिरपेक्ष देश पूरा सम्मान देते हैं और भारत की गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति को वे आज भी आदर्श मानते हैं।

(5) नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विचार का समर्थन (To support the idea of New International Economic Order) :- भारत गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के माध्यम से गुटनिरपेक्ष देशों को इस आधार पर एकजुट करने में सफल रहा है कि वर्तमान विश्व आर्थिक व्यवस्था भेदभावपूर्ण व शोषण से भरी हुई है, इसलिए विश्व के सभी देशों में न्यायपूर्ण व समान आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सम्पूर्ण विश्व की आर्थिक व्यवस्था या आर्थिक सम्बन्धों का पुनर्निधारण करना आवश्यक है। भारत की इस बात को सभी गुटनिरपेक्ष देश मानते हैं कि विश्व शान्ति, सुरक्षा तथा विकास के मार्ग में सबसे बड़ा खतरा वर्तमान आर्थिक व्यवस्था ही है। NAM के दसवें शिखर सम्मेलन (1992) में भारत ने इस बात पर सम्पूर्ण विश्व व गुटनिरपेक्ष देशों का ध्यान आकर्षित किया। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद गुटनिपरेक्ष देशों के बीच नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को लेकर विचार करने के लिए प्रमुख मुद्दे के रूप में उभरना गुटनिरपेक्षता की प्रासांगिकता का महत्वपूर्ण उदाहरण माना जा सकता है। फरवरी 2003 में कुआलालम्पूर सम्मेलन में भी इस बात पर चिन्ता व्यक्त की गई कि विश्व के आर्थिक सम्बन्धों के प्रति त तीय विश्व के देशों को एकजुट हो जाना चाहिये। यद्यपि भारत स्चयं भी WTO के पाश में जकड़ा हुआ है, लेकिन फिर भी वह G-77 व G-15 के देशों के समूह के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र संघ में तथा दक्षिण-दक्षिण सहयोग बढ़ाने की दिशा में महत्पवूर्ण प्रयास कर रहा है। वह गुटनिरपेक्ष देशों को क्षेत्रीय आधार पर भी संगठित करने के प्रयास कर रहा है। SAPTA तथा हिमतेक्ष आदि क्षेत्रीय संगठनों के माध्यम से भारत के प्रयास गुटनिरपेक्ष देशों को बदलती हुई विश्व अर्थव्यवस्था के लाभ पहुंचाने हैं। भारत का प्रमुख ध्येय यही है कि गुटनिरपेक्ष देश वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया तथा बहुराष्ट्रीय निगमों की

दोषपूर्ण भूमिका से स्वयं को बचाने में सक्षम हों। इसलिए भारत नव-उपनिवेशवाद की समाप्ति में ही नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की तस्वीर देखता है और इसके लिए ही लड़ाई लड़ रहा है।

(6) परमाणु शक्तियों के शोषण से त तीय विश्व की रक्षा करना (To protect the Third World Countries from Nuclear Powers) :- भारत ने हमेशा ही परमाणु निःशस्त्रीकरण के हर प्रयास की प्रशंसा की है और इस दिशा में उठाए गए सकारात्मक कदमों को विश्व शान्ति तथा मानवता की भलाई का मूल लक्ष्य स्वीकार किया है। भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में भारत की भूमिका न्यायपूर्ण परमाणु निःशस्त्रीकरण के पक्ष में की रही है। भारत ही एक ऐसा देश है जिसने सबसे पहले 1954 में परमाणु निःशस्त्रीकरण का समर्थन किया था। प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने भी 90 के दशक में इस विचार का जोरदार समर्थन किया था। 1970 के दशक को 'निःशस्त्रीकरण का दशक' घोषित करने की घोषणा का भारत ने पूरा स्वागत किया। 1960 के दशक में भारत ने परमाणु निःशस्त्रीकरण वाली सन्धि (आंशिक परमाणु विषेश सन्धि) पर हस्ताक्षर करके अपने मनसूबे साबित कर दिये थे। परन्तु NPT (परमाणु अप्रसार सन्धि) को लेकर भारत ने हमेशा ही इस बात का विरोध किया है कि यह सन्धि गैर-परमाणु देशों के हित में नहीं है क्योंकि यह निःशस्त्रीकरण के सार्वभौमिक कार्यक्रम से सम्बन्धित नहीं है। इसी तरह भारत CTBT सन्धि को भी त तीय विश्व के अनुकूल नहीं मानता। यद्यपि NPT तथा CTBT को अधिकतर गुटनिरपेक्ष देश स्वीकार कर चुके हैं, लेकिन भारत आज भी इस बात पर कायम हैं कि ये दोनों सन्धियां भेदभावपूर्ण हैं तथा परमाणु शक्ति विहीन देशों के लिए अन्यायपूर्ण हैं। इस तरह भारत ने गुटनिरपेक्ष देशों को परमाणु ब्लेकमेल से बचाने का हर सम्भव प्रयास किया है, चाहे उसे व्यवहार में आंशिक सफलता ही मिली हो।

(7) नव-उपनिवेशवाद का विरोध (Opposition to Neo-Colonialism) :- गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के मंच पर भारत सभी गुटनिरपेक्ष देशों का ध्यान बार-बार इस तरफ खींचता रहा है कि नव-उपनिवेशवाद त तीय विश्व की राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए सबसे बड़ा खतरा तथा आर्थिक विकास में बाधा है। भारत ने इस बात के प्रति हमेशा संवेदनशीलता दिखाई है कि अन्तर्राष्ट्रीय निगमों या बहुराष्ट्रीय निगमो की विश्व आर्थिक व्यवस्था में भूमिका नकारात्मक व तीसरी दुनिया के हितों के प्रतिकूल है। वर्तमान WTO का स्वरूप भी दोषपूर्ण आर्थिक सम्बन्धों का जनक है। इसने विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य आर्थिक खाई को चौड़ा कर दिया है। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि नव-उपनिवेशवाद रूपी दैत्य को नष्ट किया जाए। इसके लिए भारत दक्षिण-दक्षिण सहयोग के हर प्रयास को प्राथमिकता देता है। वह 'आशियन' के माध्यम से भी दक्षिण एशिया में इस लच्य को प्राप्त करना चाहता है।

(8) मानवाधिकारों की सुरक्षा के प्रयास (Effert to protect Human Rights) :- भारत हमेशा ही मानवाधिकारों का प्रबल समर्थक रहा है। उसने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के मंच पर भी गुटनिरपेक्ष देशों को इस बात के प्रति आगाह किया है कि वे मानवाधिकारों की रक्षा के हर सम्भव प्रयास करें। लेकिन वास्तविक रूप में कई देशों में आज भी मानवाधिकारों का हनन हो रहा है। भारत ने मानवाधिकारों के संरक्षक अग्रणी देश के रूप में गुट-निरपेक्ष देशों के साथ-साथ उन देशों के सामने भी एक आदर्श प्रस्तुत किया है जो मानवाधिकारों के प्रति अधिक संवेदनशील नहीं है। भारत ने कई बार गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के मंच पर पाकिस्तान में मानवाधिकारों की चिन्ताजनक स्थिति के प्रति दुनिया का ध्यान आकृष्ट किया है।

(9) अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध आवाज उठाना (To oppose International Terrorism) :- आधुनिक समय में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद से कैसे निपटा जाए। 2003 में कुआलालम्पुर गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में भारत ने इस मुद्दे को उठाया कि अमेरिका जैसे देश को अफगानिस्तान न ईराक के साथ-साथ विश्व के हर कोने से आतंकवाद को

समाप्त करने में पहल करनी चाहिए। यद्यपि अमेरिका की तरफ से भारत को कुछ आश्वासन भी मिला लेकिन परिणाम शून्य रहा है। वस्तुतः अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का लक्ष्य आज भी NAM का प्रमुख लक्ष्य बना हुआ है। भारत इस मुद्दे को NAM में उठाने वाला अग्रणी देश है।

(10) शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासांगिकता कायम रखना (To ensure the Relevance of Non Alignment Movement after the End of Cold War) :- 1990 में शीत युद्ध की समाप्ति के बाद जब विश्व मे अधिकतर देश इस बात पर जोर देने लगे कि अब गुटनिरपेक्षता का कोई औचित्य नहीं है तो ऐसे वातावरण में भारत ने इस आन्दोलन के बचाव के लिए अग्रणी देश की भूमिका अदा की। भारत ने न केवल उन सभी तर्कों का विरोध किया जो गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को अप्रासंगिक कह रहे थे, बल्कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को नई दिशा भी प्रदान की। भारत ने कहा कि जब तक तीसरी दुनिया के देशों में नव-साम्राज्यवाद, अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, मानवाधिकारों का हनन, जातीय हिंसा जैसी समस्याएं विद्यमान रहेंगी तब तक गुटनिरपेक्ष आन्दोलन भी प्रासंगिक बना रहेगा। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की निरन्तर बढ़ती सदस्य संख्या ही इसके महत्व को प्रतिपादित करती है। आज NAM में 116 देश हैं जो त तीय विश्व को संगठित शक्ति का अहसास कराते हैं। शीत युद्ध के अन्त के बाद भी इस संगठन ने त तीय विश्व के हितों के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है जिसमें भारत की भूमिका अग्रणी देश के रही है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि शीत युद्ध के विरोधी तथा उपनिवेशवाद व रंगभेद की नीति के विरोध के वातावरण से भारत के नेत त्व में जन्म लेने वाला गुटनिरपेक्ष आन्दोलन नव-उपनिवेशवाद विरोधी तथा विश्व शान्ति का प्रबल समर्थक बन गया और इसने मानवाधिकारों की सुरक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति तथा नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना की दिशा में सकारात्मक प्रयास किए। भारत ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के माध्यम से न केवल अपने आत्मसम्मान की रक्षा की बल्कि तीसरी दुनिया के देशों को शीत युद्ध की चपेट से भी बचाया और उनकी स्वाधीनता की रक्षा की। भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति व अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर किए गए शांतिपूर्ण प्रयासों ने विश्व को तीसरे विश्वयुद्ध से बचाया। इस आन्दोलन के माध्यम से भारत ने जातीय हिंसा व उपनिवेशवाद की हर रूप में निन्दा की। इस आन्दोलन के मंच पर भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए तीसरी दुनिया के देशों का ध्यान आकृष्ट किया और परमाणु ब्लेकमेलिंग से उनकी रक्षा की। भारत ने शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद भी गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता को बनाए रखने का प्रयास करना अपने आप में एक महान कदम था जो त तीय विश्व के हितों की रक्षा के लिए अपरिहार्य था। इस आन्दोलन में भारत द्वारा अदा की गई भूमिका विकसित व विकासशील देशों को जोड़ने वाली कड़ी का कार्य करती रही है। आज भी भारत की गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के संरक्षक देश के रूप में निभाई जाने वाली भूमिका त तीय विश्व के हितों के अनुकूल ही है। वर्तमान में भारत द्वारा उत्तर-दक्षिण सहयोग पर बल देना, मानवाधिकारों के प्रति विश्व का अभाव आकृष्ट करना, अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए गुटनिरपेक्ष व अन्य देशों को सोचने पर मजबूर करना ऐसे मुद्दे हैं जो न केवल गुटनिरपेक्ष देशों बल्कि विश्व के अन्य देशों के लिए भी गुट निरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता पर विचार करने को बाध्य करते हैं। वस्तुतः नव-उपनिवेशवाद की समाप्ति, मानवाधिकारों की रक्षा, नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना, जातीय हिंसा की समाप्ति, त तीय विश्व युद्ध की सम्भावना को कम करके विश्व शान्ति को मजबूत बनाने, दक्षिण-दक्षिण सहयोग को बढ़ावा देने, त तीय विश्व के हितों की सुरक्षा, त तीय विश्व को परमाणु ब्लेकमेलिंग से बचाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को समाप्त करने जैसे मुद्दों पर विचार करने के उद्देश्य से गुटनिरपेक्ष आन्दोलन से बढ़कर अन्य दूसरा रास्ता भारत व त तीय विश्व के पास नहीं है।

अध्याय-6

भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ
(India and the United Nations)

गुटनिरपेक्ष देश के रूप में भारत की विदेश नीति का प्रमुख ध्येय अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना करना रहा है। इसके लिए भारत की विदेश नीति की प्रमुख मान्यता यह रही है कि विश्व शान्ति व सुरक्षित विश्व व्यवस्था संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रभावी भूमिका में ही निहित हो सकती है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्थापित इस अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना में भारत का विशेष योगदान रहा है। भारत की हमेशा यह कामना रही है कि भावी पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिका से बचाया जा सके तथा सामाजिक, आर्थिक तथा वैधानिक समानता पर आधारित विश्व व्यवस्था की स्थापना हो। भारत ने विश्व के किसी भी भाग से उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद तथा रंगभेद की नीति को समाप्ति करने में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका में अपना गहरा विश्वास व्यक्त किया है। नेहरु जी ने कहा है-"हम संयुक्त राष्ट्रसंघ के बिना आधुनिक विश्व की कल्पना नहीं कर सकते।" संयुक्त राष्ट्र संघ को मानवता की आशा कहा गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 51 में स्पष्ट तौर पर लिखा है कि भारत संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों को ही अपनी विदेश नीति का मूलाधार बनायेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पत्ति व उद्देश्य
(Origin and Objectives of the United Nations)

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ही लोकतन्त्र के संरक्षक व मानवता के कल्याण चाहने वाले देश एक ऐसे लोकतन्त्र के संरक्षक व मानवता का कल्याण चाहने वाले देश एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय ढांचे के निर्माण पर विचार करने लग गए थे जो विश्व शान्ति स्थापित करने की दिशा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे ओर मानवता को भावी युद्धों की विभीषिका से बचा सके। इस द ष्टि से 24 अक्तूबर, 1945 को 51 देशों ने मिलकर सेनफ्रांसिसको सम्मेलन में विधिवत् रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ नामक संस्था की स्थापना की। धीरे-धीरे इस संगठन के महत्व व सदस्य संख्या में व द्धि की गई और आज इसकी सदस्य संख्या 191 है। भारत इस संगठन का संस्थापक देश रहा है और वह बार-बार इसके आदर्शों के प्रति अपनी वचनबद्धता दर्शाता रहा है। इस संगठन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

(i) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखना तथा शान्ति के खतरों से बचने के लिए प्रभावी सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था करना।

(ii) सभी राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से हल करना।

(iii) राष्ट्रों के आत्मनिर्णय और उपनिवेशवाद विघटन की प्रक्रिया को गति देना।

(iv) सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना।

(v) निःशस्त्रीकरण को बढ़ावा देना।

(vi) नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना करना।

(vii) मानवाधिकारों की सुरक्षा करना।

(viii) अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को समाप्त करना।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 51 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "भारत अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति, राष्ट्रों के मध्य न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखना, संगठित लोगों के एक दूसरे के व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने का प्रयास करेगा।" इस तरह भारत संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य के रूप में सिद्धान्त तौर पर कार्य करने के साथ-साथ व्यवहार में भी कार्यरत् है। संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास और इस विश्व संस्था के साथ सहयोग, भारत की विदेश नीति का प्रमुख स्तम्भ है।

संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत की भूमिका

(India's Role in the United Nations)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका और सोवियत संघ में शीत युद्ध का छिड़ जाना भारत जैसे नव-स्वा धीन देशों के लिए एक गम्भीर चुनौती तथा विश्व शान्ति के लिए भयानक खतरा था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों को प्राप्त करने के मार्ग में उपनिवेशवाद, रंगभेद की नीति व राष्ट्रों का आर्थिक पिछड़ापन प्रमुख बाधा बनकर उभरी। इसके साथ ही शीत युद्ध की परिस्थितियों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों को प्राप्त करना और भी अधिक जटिल बना दिया। कुछ देशों ने संयुक्त राष्ट्र संघ की उपेक्षा करनी शुरु कर दी। इस वातावरण में भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति का प्रतिपादन करके आगे उसे एक आन्दोलन का रूप दे दिया ताकि संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से गुटनिरपेक्ष व नव-स्वाधीन त तीय विश्व के सभी देश अपनी सम्प्रभुता तथा राष्ट्रीय एकता व अखण्डता की रक्षा कर सकें। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को भारत ने एक ऐसा मंच बना दिया जहां त तीय विश्व के देश सांझी समस्याओं पर विचार कर सकते थे। संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से अपनी समस्याओं का निदान कर सकते थे। संयुक्त राष्ट्र संघ में इन गुट निरपेक्ष देशों की संख्या अधिक थी, इसलिए अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में गुटनिरपेक्ष देशों की विदेश नीति कुछ हद तक सफल ही रहती थी। यही गुटनिरपेक्षता की नीति आज भारत की विदेश नीति के रूप में जानी जाती है और इसे अपनाने वाला प्रथम देश भारत ही है। यह नीति संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों को प्राप्त करना ही अपना ध्येय बनाये हुए है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देश के रूप में भारत उसके साथ सक्रिय सहयोग करता रहा है। कई बार भारत सुरक्षा परिषद का अस्थायी सदस्य भी रह चुका है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपने प्रतिनिधि एवं उच्चकोटि के राजनेता भेजता रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के आठवें अधिवेशन में भारत की श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित ने महासभा का कार्य संचालन किया। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध भारतीय न्यायविद् बी०एन० राव तथा डा० नगेन्द्र सिंह अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के ख्याति प्राप्त न्यायधीश रहे हैं। इसके साथ ही भारत आर्थिक व सामाजिक परिषद के साथ भी सहयोग करता रहा है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न अंगों व उसकी विशिष्ट ऐजेन्सियों के साथ भी सक्रिय योगदान किया है। भारत के शुरु से ही ये प्रयास रहे हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ सच्चे अर्थों में विश्व की प्रतिनिधि संस्था बने। भारत का यह आग्रह रहा है कि सदस्य राष्ट्रों द्वारा मानवाधिकारों का पूरा पालन किया जाए। वस्तुतः भारत केवल संयुक्त राष्ट्र संघ की मध्यस्थता में ही अपनी महती भूमिका नहीं निभा रहाहै बल्कि संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बन्धित सभी संस्थानों के क्रिया-कलापों में भी प्रचूर रूप से भाग लेता रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देश के रूप

में भारत की भूमिका निम्नलिखित रही है :-

(1) संयुक्त राष्ट्र संघ को विश्व व्यापक संस्था बनाने का प्रयास (Efforts to make United Nations a World wide Organisation) :- भारत ने प्रारम्भ से ही संयुक्त राष्ट्र संघ को एक विश्वव्यापी संस्था बनाने का प्रयास किया है। कोरिया युद्ध के बाद जब संयुक्त राष्ट्र संघ में नए राज्यों को सदस्यता प्रदान करने के प्रश्न पर गतिरोध हो गया तथा अमेरिका व रूस दोनों ही नए देशों को सदस्य बनाने पर आनाकानी कर रहे थे तो भारत ने ही इस गतिरोध को दूर किया था। 1955 में जब सोवियत नेता मार्शल बुलगानिन और ख्रुश्चैव भारत आए तो भारत के प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने उनसे इस संमस्या पर विचार-विमर्श किया और अन्त में यह निश्चित हुआ कि अमेरिका और सोवियत संघ एक दूसरे द्वारा समर्थित देशों को नए सदस्य बनाने पर आपत्ति नहीं करेंगे। भारत ने कहा कि कोरिया और वियतनाम को छोड़कर शेष दोनों देशों को शीघ्रता के साथ संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान की जाए। भारत के प्रयासों से ही 8 सितम्बर, 1955 को प्रस्तावित 16 नए सदस्यों को शामिल करने पर चीन को जो आपत्ति थी, वह शीघ्र दूर हो गई। भारत के प्रयासों से 1956 को 16 देशो को संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता प्रदान की गई जिसमें 10 गुटनिरपेक्ष देश भी शामिल थे। भारत ने जनवादी चीन की सदस्यता पर भी संयुक्त राष्ट्र संघ में अपना समर्थन दिया। भारत जैसे गुटनिरपेक्ष देशों के प्रयासों से आज संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्य संख्या 191 हो चुकी है। आज लगभग विश्व के 95% देश इसके सदस्य हैं। परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि भारत जैसे महान देश को अब तक भी इसकी स्थायी सदस्यता से वंचित रखा गया है।

(2) संयुक्त राष्ट्र संघ में विश्वास (Faith in the United Nations) :- भारत अपनी स्वतन्त्रता से लेकर आज तक संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों व मूल उद्देश्यों में अपना विश्वास व्यक्त करता है। नेहरु जी ने 3 नवम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में भाषण देते समय कहा था कि भारत न केवल पूर्ण रूप से UN चार्टर के सिद्धान्तों व उद्देश्यों के प्रति वचनबद्ध है, बल्कि अपनी पूरी क्षमता के साथ उन्हे लागू भी करेगा। भारत का मानना है कि संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व शान्ति के खतरों से भारत व अन्य गुटनिरपेक्ष देशों को बचाने में सफल रहा है क्योंकि विश्व में देशों के बीच शान्तिपूर्ण सहयोग की यह एकमात्र आशा की किरण है। अमेरिका द्वारा कश्मीर समस्या पर विपरीत रूख अपनाए जाने पर भी भारत की आस्था संयुक्त राष्ट्र संघ में कम नहीं हुई। भारत की विदेश नीति के सभी सिद्धान्त संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों के अनुकूल ही हैं। भारत विश्वशान्ति, शान्तिपूर्ण ढंग से विवादों का निवारण करना, रंगभेद की समाप्ति, उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद की समाप्ति, शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व में विश्वास आदि मूल्यों को आज भी अपनी विदेश नीति में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किए हुए है। वस्तुत संयुक्त राष्ट्र संघ में जितनी आस्था भारत की रही है, अन्य किसी देश की नहीं रही है। भारत हमेशा ही संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों के अनुरूप ही पाकिस्तान, चीन तथा अन्य पड़ोसी देशों के साथ व्यवहार करता रहा है। वर्तमान में ईराक समस्या को हल करने में भी भारत संयुक्त राष्ट्र संघ से सहयोग की उम्मीद रखता है। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारत की संयुक्त राष्ट्र संघ में गहरी आस्था है।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा में योगदान (Contribution to International Peace and Security) :- संयुक्त राष्ट्र संघ का मूल उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बनाए रखना तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सशस्त्र आक्रमण की स्थिति में सामूहिक सुरक्षा कार्यवाही करना है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा की स्थापना का दूसरा पहलु यह भी है कि विवादों को शान्तिपूर्ण समझौतों द्वारा हल किया जाए। शान्तिपूर्ण प्रयासों के अन्तर्गत भारत ने पाकिस्तान के साथ अपने सीमा विवाद को सुरक्षा परिषद द्वारा पारित प्रस्ताव के आधार पर ही हल किया। भारत ने 1948, 1965 तथा 1971 के अघोषित युद्ध तथा 1999 का कारगिल लड़ाई में विजय प्राप्त करने के बाद

भी सुरक्षा परिषद के आदेशों को ही स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त भारत ने चीन तथा अन्य पड़ौसी देशों के साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्धों को ही प्राथमिकता दी है। 'गुजराल सिद्धान्त' इसका स्पष्ट प्रमाण है कि भारत आज भी विश्व शान्ति के आदर्श को मानते हुए नेहरु जी के द्वारा बताए गए पंचशील व शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के मार्ग पर चलकर ही अपने पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्धों की स्थापना पर बल देता है।

इसके साथ ही भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित करने की दिशा में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। 1950 के कोरिया विवाद में भारत ने तटस्थ राष्ट्रों के युद्ध-बनी प्रत्ययावर्तन आयोग की अध्यक्षता भी की। इसके अतिरिक्त भारत ने कोरिया युद्ध में अपनी सेना का एक चिकित्सा दल भी भेजा। प्रत्यावर्तन आयोग के अध्यक्ष के रूप में भारत ने युद्ध-बन्दियों की अदला-बदली के कार्य को पूरी निष्ठा से संचालित किया। इसके बाद 1954 में हिन्द चीन विवाद में भी भारत ने 'निरीक्षण एवं नियन्त्रण अन्तर्राष्ट्रीय आयोग' की अध्यक्षता की। उसके बाद 1956 के स्वेज नहर संकट के समय भी भारत की सहयोगकारी भूमिका रही। इस संकट से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र आपातकालीन बल गठित किया गया जिसमें भारत की सैन्य टुकड़ी भी शामिल थी। इसके बाद 1960 में कांगों विवाद को हल करने के लिए गठित शान्ति सेना में भी भारत की सैन्य टुकड़ी शामिल हुई। इस शान्ति सेना में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इसके बाद युगोस्लाविया में भड़की जातीय हिंसा को दबाने में जिस संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा बल का गठन किया गया, उसका नेत त्व भारतीय सेना के एक वरिष्ठ अधिकारी ने ही किया। इसके अतिरिक्त अरब-ईजराइल संघर्ष, क्यूबा संकट, लेबनान संकट, श्रीलंका की तमिल समस्या, खाड़ी संकट, सोमालिया संकट, कम्बोडिया संकट तथा बोसनिया-हर्जेगोविना संकट को हल करने की दिशा में भी भारत द्वारा प्रयास किए गए। खाड़ी युद्ध में भारत ने अमेरिकी विमानों को ईंधन देने की बात तो स्वीकार की, परन्तु अपनी सेना नहीं भेजी। मार्च 1998 में संयुक्त राष्ट्र महासचिव कोफी अन्नान ने भारत के प्रकाश शाह को ईराक में अपना विशेष प्रतिनिधि नियुक्त किया। इस तरह संयुक्त राष्ट्र संघ मे भारत की भूमिका में व द्धि हुई। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत की विश्व शान्ति कायम करने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

(4) उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के उन्मूलन की प्रक्रिया को गति देना (To precipitate the end of Colonialism and Imperialism) :- 1947 के बाद ही भारत ने एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के विभिन्न देशों से उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद को समाप्त करने के लिए चलाए जा रहे स्वतन्त्रता आन्दोलनों का समर्थन करने के लिए चलाए जा रहे स्वतन्त्रता आन्दोलनों का समर्थन करना शुरु कर दिया था। नेहरु जी ने कहा कि विश्वशान्ति और प्रगति के लिए उपनिवेशवाद का अन्त होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त एशियाई व अफ्रीकी एकता के लिए भी ऐसा होना आवश्यक है। उपनिवेशवाद के विघटन के मामले में 14 दिसम्बर, 1960 को जब संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रस्ताव लाया गया तो भारत ने इस प्रस्ताव के समर्थन में बहुमत प्राप्त करने के लिए काफी प्रयास किया और अन्त में यह प्रस्ताव पास हो गया। इसी प्रस्ताव की घोषणा के तहत 50 देशों को औपनिवेशिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। भारत ने उत्तरी अफ्रीका में फ्रांस के उपनिवेशों अल्जीरिया, टयूनिसिया और मोरक्को की स्वतन्त्रता के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किया। उसने संयुक्त राष्ट्र महासभा में राष्ट्रीय आत्म-निणर्य के सिद्धान्त को पारित करवाने का अथक प्रयास किया। उसने साईप्रस की स्वतन्त्रता की मांग को भी उचित बताया। भारत के प्रयासों से ही 1960 तक अधिकतर अफ्रीकी उपनिवेश स्वतन्त्र हो गये। केवल नामीबिया ही एकमात्र उपनिवेश रह गया जिस पर 1986 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने एक विशेष अधिवेशन बुलाया। इस अधिवेशन में भारत का प्रतिनिधित्व विदेश मन्त्री ने किया। भारत ने नामीबिया की स्वतन्त्रता (1990) तक संयुक्त राष्ट्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अतः भारत की उपनिवेशवाद की समाप्ति तथा राष्ट्रों की स्वतन्त्रता में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

(5) रंगभेद की नीति का विरोध (To oppose the Policy of Racial Discrimination) :- भारत ने हमेशा ही संयुक्त राष्ट्र संघ में अफ्रीका तथा विश्व के अन्य देशों में चलाई जा रही रंगभेद या जाति भेद की नीति का हर कदम पर विरोध किया है। भारत ने 1949 में दक्षिण अफ्रीका की सरकार से अपने राजनयिक सम्बन्ध तोड़ लिए थे, क्योंकि वहां श्वेत वर्ण के लोगों का सरकार पर प्रभुत्व था और अश्वेत लोगों को शासन चलाने के अधिकार से वंचित रखा गया था। भारत ने रंगभेद और जाति भेद की नीति मिटाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में स्थापना के समय ही कई प्रस्ताव रखे और समय-समय पर इन प्रस्तावो को पारित कराने के फलस्वरूप सदस्य राष्ट्रों में यह भेदभावपूर्ण स्थिति काफी कम हुई। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा रंगभेद की नीत को समाप्त करने की दिशा में किए गए प्रयासों के पीछे भारत का ही हाथ रहा है। 12 दिसम्बर, 1952 को संयुक्त राष्ट्र महासचिव को दिए गए ज्ञापन में भारत ने रंगभेद की नीति को प्रमुख रूप से उठाया। भारत गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में इस नीति के विरोध में अपने सहयोगी राष्ट्रों को एकजुट करने में सफल रहा है। रंगभेद की नीति का विरोध संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्य के साथ-साथ भारत की विदेश नीति का भी प्रमुख सिद्धान्त रहा है। भारत के प्रयासों से 1980 में जिम्बाबवे तथा 1990 में नामीबिया को स्वतन्त्रता मिली तथा वहां से रंगभेद को मिटा दिया गया। वस्तुतः भारत द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच पर रंगभेद की नीति को समाप्त करने की दिशा में उठाए गए कदमों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

(6) मानवाधिकारों की रक्षा में संयुक्त राष्ट्र संघ का सहयोग (To co-operate the U.N. in promoting Human Rights) :- भारत मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किए गए प्रयासों का प्रबल समर्थक रहा है। 10 दिसम्बर, 1948 में सयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा मानवाधिकारों का जो घोषणापत्र स्वीकृत किया गया, तब से लेकर आज तक हर कदम पर भारत ने मानवाधिकारों से सम्बन्धित निर्णयों व प्रस्तावों को लागू करवाने में महत्वपूर्ण सहयोग देता रहा है। इस दिशा में भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ को व्यावहारिक सहयोग भी दिया है। भारत ने अपने संविधान में इन अधिकारों को प्रमुख स्थान दिया है। विश्व में जहां कहीं भी मानवाधिकारों का हनन होता है तो भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में उसके विरुद्ध आवाज उठाता रहा है। भारत द्वारा दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की नीति के विरुद्ध आवाज उठाना इस बात का प्रमाण है कि भारत मानवाधिकारों के बारे में कितना जागरूक है। भारत ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में जातिभेद को मानव-गरिमा के विपरीत बताया है। भारत के हस्तक्षेप के बाद ही दक्षिण अफ्रीका के प्रमुख नेता नेल्सन मंडेला जेल से बाहर आए और राष्ट्रपति बने। भारत स्वयं भी मानवाधिकारों को पूरी ईमानदारी से लागू करता रहा है। मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए भारत में एक मानवाधिकार आयोग भी गठित किया गया है।

(7) निःशस्त्रीकरण के प्रयासों में संयुक्त राष्ट्र संघ को सहयोग देना (To co-operate the U.N. in its efforts for Disarmament) :- संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व शान्ति तथा मानवता की भलाई के लिए परमाणु शस्त्रों को नष्ट करने या कमी का सुझाव देता है। भारत की संयुक्त राष्ट्र संघ के निःशस्त्रीकरण और शस्त्र नियन्त्रण कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण व सकारात्मक भूमिका रही है। भारत ने या तो संयुक्त राष्ट्र संघ के इन प्रयासों को समर्थन दिया है या अपने सुझावों के निःशस्त्रीकरण की प्रक्रिया को लाभान्वित किया है। विश्व को परमाणु शस्त्रों से मुक्त करने का प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्र संघ में सबसे पहले भारत ने ही रखा था। भारत ने 1961 में परमाणु निःशस्त्रीकरण समिति पर अन्य देशों की सहमति प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसके बाद भारत ने संयुक्त राष्ट्र सघ के सदस्य देशों द्वारा 1963 के 'आंशिक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि' सहमति कराई। परन्तु भारत ने भेदभावपूर्ण निःशस्त्रीकरण कार्यक्रमों का हर कदम पर विरोध किया है। 1968 की परमाणु अप्रसार सन्धि (NPT) तथा 1993 की CTBT सन्धि पर भारत द्वारा हंस्ताक्षर न करने के पीछे यही कारण है कि ये दोनों सन्धियां भेदभावपूर्ण निःशस्त्रीकरण कार्यक्रमों

पर आधारित है। इसके साथ ही भारत परमाणु निःशस्त्रीकरण के प्रयासों को बराबर महत्व देता रहा है। 1982 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के विशेष अधिवेशन में इन्दिरा गांधी ने परमाणु शस्त्रों के प्रयोग न करने पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बलाने, परमाणु हथियार या विस्फोटक सामग्री के उत्पादन पर रोक लगाने तथा सभी तरह के परमाणु परीक्षणों पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगाने के सुझाव दिए। जब संयुक्त राष्ट्र संघ का तीसरा विशेष निःशस्त्रीकरण सम्मेलन 1988 में लाया गया तो राजीव गांधी ने 2010 तक विश्व को परमाणु हथियारों से मुक्त बनाने का सुझाव प्रस्तुत किया। भारत ने अब तक 18 राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण समितियों, संयुक्त राष्ट्र महासभा के अधिवेशनों तथा निःशस्त्रीकरण सम्मेलनों में भाग लिया है। इन सभी के द्वारा भारत के प्रयास न्यायपूर्ण निःशस्त्रीकरण व्यवस्था के पक्ष में रहे हैं।

(8) नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का समर्थन (To support the New International Economic Order) :- भारत ने विश्व के सभी देशों में आर्थिक विश्व आर्थिक ढांचे को नए ढांचे मे बदलने की बात का जोरदार समर्थन किया है और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के मंच पर भी इस विचार को बार-बार उठाया है। भारत के प्रयासों से ही 1974 में संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा के छठे विशेष अधिवेशन में 'नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (New International Economic Order) की घोषणा जारी हुई। भारत ने त तीय विश्व के देशों के साथ मिलकर शीत युद्ध की समाप्ति के बाद इस दिशा में महत्वपूर्ण पग उठाए हैं। भारत का आग्रह रहा है कि विकासशली देश आपसी सहयोग के आधार पर विकसित देशों के शोषण से बचने का प्रयास करें। इसके लिए भारत हमेशा ही संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच पर नव-उपनिवेशवाद के दानव से विकासशील देशों को बचाने के लिए एकजुट रहने का प्रयास करता रहा है, परनतु इस दिशा में भारत को कम ही सफलता मिली है। वर्तमान भेदभाव आर्थिक सम्बन्धों को समाप्त करने या उनमें कमी लाने के लिए भारत दक्षिण-दक्षिण सहयोग का आग्रह करता रहा है। यद्यपि वर्तमान उदारीकरण व वैश्वीकरण के दौर में भारत के प्रयास निरन्तर असफल हो रहे हैं, लेकिन फिर भी भारत संयुक्त राष्ट्र संघ से बाहर क्षेत्रीय सहयोग के माध्यम से इस दिशा में कार्यरत् है। भारत का मानना है कि क्षेत्रीय संगठन अन्तर्राष्ट्रीय हितों के विपरीत नहीं है। इसीलिए भारत आज G-15, G-77 सार्क, आशियान, सापता तथा हिमतेक्ष के माध्यम से इस दिशा में कार्य कर रहा है।

(9) गरीबी, बेरोजगारी व अज्ञानता का विनाश (To Eradicate Poverty, Unemployment and Ignorance) :- भारत का मानना है कि जब तक विश्व में भूखमरी, गरीबी तथा अज्ञानता रहेगी तब तक राष्ट्रों के मध्य न्यायपूर्ण व शांतिपूर्ण सम्बन्धों का विकास नहीं हो सकता। इसलिए भारत संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से इन सामाजिक समस्याओं पर काबू पाने के प्रयासों का समर्थन करता है। भारत विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संगठन आदि संगठनों के माध्यम से त तीय विश्व के देशों को आसान किस्तों पर ऋण दिलाने का प्रयास करता रहा है। इसके साथ-साथ भारत यूनेस्को (UNESCO), युनिसेफ (UNICEF), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO), आदि के माध्यम से भी गरीबी, बेरोजगारी तथा अशिक्षा जैसी बुराईयों पर काबू पाने के प्रयास करता रहा है। इसके पीछे भारत का मुख्य ध्येय यही है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के विश्व शान्ति के आदर्श को बुनियादी तौर पर प्राप्त किया जाए।

(10) संयुक्त राष्ट्र संघ को शक्तिशाली बनाने का सुझाव (Effort to make the U.N. Stronger) :- भारत संयुक्त राष्ट्र संघ को शक्तिशाली बनाने के लिए इसके पुनर्गठन की मांग बार-बार उठाता रहा है। भारत की प्रमुख मांग यह रही है कि संयुक्त राष्ट्र और उसकी सुरक्षा परिषद के ढांचे व कार्यपणाली में परिवर्तन या सुधार किए जाएं। भारत का कहना है कि

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुए काफी लम्बा समय बीत चुका है। आज अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जापान, जर्मनी, भारत जैसी महान शक्तियां उभर चुकी हैं। इन शक्तियों को सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता से वंचित रखना बेईमानी है। जब तक संयुक्त राष्ट्र संघ के प्राचीन ढांचे में परिवर्तन नहीं होगा तब तक संयुक्त राष्ट्र संघ में परिवर्तन नहीं होगा। तब तक संयुक्त राष्ट्र संघ के भेदभावपूर्ण ढांचे का अन्त सम्भव नहीं है। भारत ने सुरक्षा परिषद का लोकतांत्रिकरण करने का कई बार सुझाव दिया है। भारत ने 17 दिसम्बर, 1963 का सुरक्षा परिषद तथा आर्थिक व सामाजिक परिषद के सदस्यों की संख्या बढ़ाने की मांग की तो उसका अधिकांश देशों ने समर्थन किया। इसी कारण आर्थिक और सामाजिक परिषद के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 54 की गई। परन्तु 1992 में संयुक्त राष्ट्र सुरक्ष परिषद की न्यूयार्क शिखर बैठक में प्रधानमन्त्री नरसिम्हाराव ने भी सुरक्षा परिषद के विस्तार की बात कही। इसी सन्दर्भ में तत्कालीन महासभा बुतरस घाली ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में सुझाव दिया कि सुरक्षा परिषद् में भारत, ब्राजील, जर्मनी, जापान ओर नाईजीरिया 5 देशों को स्थायी सदस्य बना लिया जाए। परन्तु स्थायी सदस्यों की वीटो शक्ति ने इस बात को व्यावहारिक नहीं बनने दिया। जब मई 1997 में संयुक्त राष्ट्र महासचिव कोफी अन्नान जापान गए तो उन्होंने जापान को तो स्थायी सदस्य बनाने की मांग का समर्थन किया लेकिन भारत को छोड़ दिया। इसी वर्ष अमेरिका की कांग्रेस की अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध समिति के अध्यक्ष बेंजमिल गिल्सन ने कहा कि "हमने यह निर्णय किया है कि विस्त त सुरक्षा परिषद् में भारत की स्थायी सदस्यता के दावों का समर्थन किया जाए।" परन्तु विडम्बना यह है कि अन्य देशों की स्थायी सदस्यता का समर्थन करने वाला भारत अन्य देशों से अपनी स्थायी सदस्यता का समर्थन प्राप्त नहीं कर सकता है। 1998 में भारत के प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने भी संयुक्त राष्ट्र संघ के वर्तमान ढांचे में बदलाव की मांग उठाई, परन्तु आज तक भारत के सुझावों को संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन के रूप में व्यावहारिक जामा नहीं पहनाया गया है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ को उसके उद्देश्यों की प्राप्ति में जितना सहयोग दिया है, उतना अन्य किसी देश ने नहीं दिया है। भारत प्रारम्भ से ही यह आग्रह करता रहा है कि सभी सदस्य राष्ट्रों को मानवाधिकारों से सम्बन्धित संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र पर अमल करे। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ के लोकतन्त्रीकरण की प्रक्रिया का जोरदार समर्थक रहा है। भारत का मानना है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के भेदभावपूर्ण ढांचे में सुधार किए बिना राष्ट्रों के मध्य संघर्षों को अन्त नहीं हो सकता और न ही विश्वशान्ति का आदर्श प्राप्त किया जा सकता है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करके राष्ट्रों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना पर बल दिया है। भारत ने उपनिवेशवाद व रंगभेद की नीति से एशियाई-अफ्रीकी राष्ट्रों को मुक्त कराया है। दक्षिण अफ्रीका से रंगभेद की नीति का खात्मा करने में भारत की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। भारत ने नवोदित राष्ट्रों की स्वतन्त्रता को संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से सुद ढ़ बनाया है तथा उन्हें नव-उपनिवेशवाद क चक्रव्यूह से निकालने के लिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के रूप में एक मंच पर इकट्ठा किया है। उसने भेदभावपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों की समाप्ति के लिए नई विश्व आर्थिक व्यवस्था (NIEO) के स्वप्न को साकार करने की दिशा में त तीय विश्व के हित के लिए कार्य किया है। उसने विश्वशान्ति कायम करने की दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ की पूरी मदद की है। उसने न्यायपूर्ण निःशस्त्रीकरण के सभी प्रयासों का स्वागत किया है। वर्तमान में भारत अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए संयुक्तराष्ट्र संघ को आह्वान कर रहा है। अतः विश्वशानित कायम करने में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका नही है।

इकाई-II

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions)

Q. 1 "भारत की विदेश नीति गुटनिरपेक्षता की नीति है, तटस्थता की नहीं" इस कथन की व्याख्या करो।

Q. 2 गुटनिरपेक्षता क्या है ? भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में कहां तक सफल रहीं है ?

Q. 3 भारत द्वारा स्वतन्त्रता के बाद गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाए जाने के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए।

Q. 4 गुटनिरपेक्षता की नीति के विकास के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए।

Q. 5 "1947 से 1971 तक का समय भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति के लिए स्वर्ण काल था" व्याख्या कीजिए।

Q. 6 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में भारत की क्या भूमिका रही है ?

Q. 7 संयुक्त राष्ट्र संघ के अग्रणी देश के रूप में भारत की विश्व-शांति स्थापना में क्या भूमिका रही है ?

इकाई-III

अध्याय-7

भारतीय विदेश नीति में आर्थिक तत्व : विदेशी सहायता व व्यापार; बहुराष्ट्रीय संस्थाओं एवं निगमों की भूमिका

(Economic Factors in India's Foreign Policy : Foreign Aid and Trade; Role of Multi-National Institutions and Corporations)

किसी भी देश की विदेश नीति के निर्धारण में आर्थिक तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शीतयुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तो यह बात और अधिक सत्य सिद्ध हो गई है। आज सभी देशों की विदेश नीति आर्थिक नीति का ही परिणाम बन गई है। अब राजनीति मुद्दों का स्थान आर्थिक मुद्दों ने ले लिया है। शीत युद्ध के दौरान ही आर्थिक नीति भारत की विदेश नीति को प्रभावित करने लग गई थी और आज शीत युद्ध के अन्त के बाद भी कर रही है। आज अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा विदेशी सहायता विदेशी सम्बन्धों के महत्वपूर्ण आधार बनकर भारत की विदेश नीति को प्रभावित कर रहे हैं। आज भारत की विदेश आर्थिक नीति और विदेश नीति इस तरह एक दूसरे के साथ घनिष्ट रूप से जुड़ी हुई है कि कई बार यह भ्रम उत्पन्न हो जाता है कि कहीं आर्थिक नीति ही विदेश नीति तो नहीं है। परन्तु सत्य तो यह है कि आर्थिक नीति, विदेश नीति का ही एक पहलु है जिसका निर्धारण देश के आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न आर्थिक मन्त्रालयों द्वारा हित समूहीकरण के आधार पर किया जाता है तथा इसमें विदेशी व्यापार, विदेशी सहायता, पूंजी निवेश, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों (WTO, IMF व विश्व बैंक), बहुराष्ट्रीय निगमों आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

विदेशी सहायता एवं व्यापार

(Foreign Aid and Trade)

विदेशी सहायता की राजनीति दानकर्ता देशों की राजनीतिक संस्थाओं तथा सहायता प्राप्त करने वाले देशों के बीच अन्तर्सम्बन्धों को दर्शाती है। यह बात सत्य है कि पूंजी निर्यातक देश मेजबान देशों (Host Countries) से कुछ राजनीतिक और आर्थिक छूटें प्राप्त करते हैं। परन्तु भारत ने विदेशी

सहायता प्राप्त करते समय हमेशा यह प्रयास किया है कि राष्ट्रीय हितों के साथ कोई समझौता न किया जाए। NPT तथा CTBT पर भारत ने आर्थिक दबावों के बावजूद भी हस्ताक्षर न करके यह सिद्ध कर दिया है कि आर्थिक सहायता प्राप्त करने का अर्थ राष्ट्रीय हितों के साथ सौदेबाजी करना नहीं है।

विदेशी सहायता क्या है ?

(What is Foreign Aid ?)

साधारण शब्दों में विदेशी सहायता से हमारा अभिप्रायः अमीर देशों द्वारा किसी गरीब देश या देशों को दी जाने वाली प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पूंजी प्रवाह तथा अन्य संसाधनों द्वारा दी गई मदद से होता है। इस सहायता में अनुदान के साथ-साथ ऋण भी शामिल होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आर्थिक, भौतिक तथा तकनीकी सहायता, जो एक दाता देश, धनी राष्ट्र होने के नाते, अन्य गरीब, पिछड़े हुए तथा जरूरतमंद देशों को देता है, विदेशी सहायता कहलाती है। यह सहायता मुद्रा, वस्तुओं तथा सेवाओं आदि किसी भी रूप में दी जा सकती हैं

विदेशी सहायता पर राष्ट्रीय सहमति व उसका व्यवहारिक प्रयोग

(National Consensus on Foreign Aid and its Implementation)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अपने आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए भारत को विदेशी सहायता पर ही निर्भर रहना पड़ा। पूंजी के अभाव तथा तकनीकी ज्ञान की कमी को पूरा करने के लिए भारत ने आर्थिक सहायता पर अपनी निर्भरता को अनिवार्य समझते हुए साम्यवादी गुट तथा पूंजीवादी गुट दोनों से मित्रतापूर्ण स्थापित किए। भारत इस बात को भी भली भांति जानता था कि विदेशी सहायता उसकी राष्ट्रीय नीति को भी प्रभावित कर सकती है, इसलिए उन्होंने विदेशी सहायता प्राप्त करते समय किसी भी तरह की शर्तों को मानने से इन्कार किया। नेहरु ने विदेशी पूंजी निवेश के बारे में कहा कि -

(i) भारत में विदेशी पूंजी निवेश परस्पर लाभदायक शर्तों के आधार पर होगा,

(ii) विदेशी निवेश पर नकारात्मक शर्तें नहीं लगाई जायेंगी तथा

(iii) राष्ट्रीय हित में विदेशी पूंजी निवेश को एक सीमा तक नियन्त्रित रखा जायेगा।

इससे स्पष्ट है कि भारत खुले द्वार की नीति के अन्तर्गत विदेशी सहायता लेने का इच्छुक नहीं था। भारत ने स्पष्ट कह दिया था कि विदेशी सहायता उसी अनुपात में ग्रहण की जायेगी जहां तक वह अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में विदेश नीति की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने वाली होगी।

विदेशी सहायता के बारे में एक सर्वमान्य सहमति विकसित करने के उद्देश्य से नेहरु जी ने कई प्रयास किये और सभी दलों के नेताओं की राय जानी। साम्यवादियों ने समाजवादी देशों से सहायता प्राप्त करने का समर्थन किया। उनके तर्क ये थे कि - समाजवादी देशों द्वारा दी जाने वाली सहायता शोषण रहित और समाजवादी समाज की स्थापना करने वाली होगी। यह सहायता उन क्षेत्रों में दी जायेबी जो सर्वाधिक पिछड़े हुए हैं। इससे भारत को स्वतन्त्र आर्थिक विकास में मदद मिलेगी। जबकि दूसरी तरफ कांग्रेस तथा उसके सहयोगी दल अमेरिका तथा ब्रिटेन से ही आर्थिक सहायता लेने के इच्छुक थे। इस आर्थिक सहायता लेने के क्रम में भारत को पश्चिमी गुट की अपेक्षा साम्यवादी गुट से ही प्रारमी में अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। फरवरी 1955 में सोवियत संघ ने 101.96 करोड़ रुपये का ऋण भारत के लिए मंजूर किया और इसके तहत भिलाई स्टील संयन्त्र लगाया गया। आगे चलकर 1971 की भारत-सोवियत मैत्री के तहत दोनों देशों के बीच आर्थिक व व्यापारिक सहयोग का नया अध्याय शुरु हुआ। अब भारत को सोवियत संघ से अधिक आर्थिक मदद मिलने लगी। 1975-76 में सोवियत संघ से भारत को मिलने वाली मदद 748.7

करोड़ रुपए हो गई। परन्तु शीत युद्ध के अन्त व सोवियत संघ के विघटन के बाद यह मदद बन्द हो गई।

भारत को संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ से मिलने वाली सहायता के क्रम में, भारत को प्रारम्भ में अमेरिका से कम ही सहायता प्राप्त हुई। प्रारम्भ में भारत को दी जाने वाली आर्थिक सहायता का लक्ष्य, यहां पर साम्यवादी प्रसार को रोकना था। 1951 में प्रथम बार चेस्टर बौल्स को भारत में राजदूत नियुक्त किये जाने के बाद अमेरिका ने भारत को आर्थिक सहायता देने की घोषणा की। इसके बाद भारत को प्रचुर मात्रा में आर्थिक मदद प्राप्त हुई और भारत ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं को सफल बनाया। उसके बाद 1960 में भारत को P.L. - 480 समझौते के तहत भी काफी सहायता मिली। इस समझौते के तहत कृषि और नदी घाटी परियोजना के क्षेत्र में अमेरिका ने भारत की पूरी मदद की। 1970 के अन्त तक भारत को विदेशों से मिलने वाली आर्थिक सहायता में 38 प्रतिशत योगदान अमेरिका का ही था। परन्तु 1971 में भारत-पाक युद्ध तथा भारत सोवियत संघ मैत्री सन्धि के द ष्टिगत अमेरिका ने इस सहायता को स्थगित कर दिया। आगे चलकर 1973 में पी०एल० 480 समझौते के तहत भारत को 16 अरब अडसठ करोड़ रुपए अमेरिका से अनुदान के रूप में प्राप्त हुए। इस तह धीरे-धीरे भारत विदेशी सहायता के रूप में अमेरिका से काफी आर्थिक मदद प्राप्त करता रहा और अपना आर्थिक विकास करता रहा। 11 दिसम्बर 1986 को अमेरिका ने भारत को सुपर कम्प्यूटर देने का करार किया और भारत को कम्प्यूटर देने शुरु कर दिये। उसके बाद 1987 में अमेरिका ने भारत को 86 अरब डालर ऋण देने की घोषणा की। परन्तु शीत युद्ध के बाद भारत ने अमेरिकी सहायता पर अपनी निर्भरता कम करने के प्रयास शुरु कर दिये और स्वतन्त्र आर्थिक नीति अपनाने का प्रयास कैया। इसके बावजूद भी भारत की विदेश आर्थिक नीति पर बहुराष्ट्रीय निगमों और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों का दबाव बना रहा, क्योंकि इन पर अमेरिका का ही दबदबा था।

भारत ने विदेशी सहायता की प्राप्ति के लिए अमेरिका तथा सोवियत संघ दोनों से ही मित्रतापूर्ण सम्बन्ध जोड़े रखे और 1977-78 तक उसे 17,790 करोड़ रुपए की विदेशी सहायता प्राप्त हुई जिसमें से 15,683 करोड रुपए ऋण के रूप में तथा 2107 करोड़ रुपए अनुदान के रूप में थे। भारत को मिलने वाली इस सहायता का संस्थाकरण किया गया। भारत को यह सहायता विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था (IDA), अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय निगम (IFC), विश्व मुद्रा कोष (IMF), संयुक्त राष्ट्र संघ से जुड़े प्राधिकरण, EEC ओपक देश, अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष आदि से प्राप्त हुई। 1978 के अन्त तक भारत को विश्व बैंक से 7 बिलियन डालर की सहायता प्राप्त हुई। 2000-2001 में भारत को प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता 1,71,744.7 करोड़ रुपए थी जिसमें से 1,56,090.2 करोड़ रुपए ऋण के रूप में तथा 15,65,654.5 करोड़ रुपए अनुदान के रूप में प्राप्त हुए। भारत ने इस सहायता का प्रयोग अपने मूलभूत एवं महत्वपूर्ण उद्योगों को विकसित करने मे किया और अपना औद्योगिक विकास का मूलभूत ढांचा तैयार किया। इस सहायता द्वारा भारत ने लोहा, कोयला, उर्जा, रेलवे, यातायात एवं संचार, भारी मशीनरी, जहाजरानी, रसायनिक खाद, तेल एवं गैस, कृषि व औद्योगिक ऋण आदि के क्षेत्र में किया। 2003 में भारत को मिलने वाली यह सहायता 66,316.07 करोड़ रुपये हो गई जिसमें से जापान, जर्मनी, अमेरिका व फ्रांस से 58,825.30 करोड़ रुपए की सहायता प्राप्त हुई। इस दौरान भारत ने कम सहायता लेने से इन्कार कर दिया और कई देशों से मिलने वाली कम आर्थिक सहायता को वापिस लौटा दिया। भारत ने आर्थिक राशि को लौटाने के पीछे तर्क दिया की अब उसका विदेशी मुद्रा भंडार 80 बिलियन डालर हो गया है और वह कर्ज लेने वालों की श्रेणी से निकलकर कर्ज देने वालों की श्रेणी में आना चाहता है।

यदि भारत को मिलने वाली आर्थिक सहायता का मूल्यांकन किया जाए तो यह बात उभरती है कि प्रारम्भ में स्वतन्त्रता के बाद विदेशी सहायता से प्राप्त राशि का भारत ने अपने औद्योगिक

विकास के लिए प्रयोग किया। इस सन्दर्भ में भारत ने बाह्य पूंजी निवेश के साथ-साथ तकनीकी क्षमता का भी विकास किया। इस सहायता के गल पर भारत ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं को सफलतापूर्वक लागू किया। परन्तु आर्थिक सहायता के बारे में भारत की आर्थिक नीति की हमेशा यह शिकायत रही है कि भारत को विदेशों से मिलने वाले ऋण व अनुदान की राशि में भारी अन्तर के कारण भारत पर देनदारियां बढ़ती रही हैं। इससे आर्थिक विकास का मार्ग अवरुद्ध होता है। परन्तु शीत युद्धोत्तर वातावरण में आर्थिक सहायता का स्थान पूंजी निवेश ने ले लिया है और अब भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने पूंजी निवेश को बढ़ावा देकर आर्थिक सहायता की नीति को धक्का दे दिया है। अब भारत आर्थिक उदारीकरण और पूंजी निवेश के दौर में स्वयं दूसरे देशों को आर्थिक सहायता देने की स्थिति में है। 1991 के बाद निरन्तर भारत अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत कर रहा है और विदेशी सहायता पर उसकी निर्भरता कम हुई है। पिछले दशक में भारत ने अफ्रीका व एशिया के कई पिछड़े व गरीब देशों की आर्थिक मदद की है। उसने भूटान को गरीबी उन्मूलन, स्वास्थ्य, शिक्षा व बीमारियों की रोकथाम के लिए भारी आर्थिक मदद दी है। इसके साथ ही उसने घाना, ईथोपिया, सोमालिया, बरुण्डी जैसे देशों को भी भयंकर अकाल का सामना करने में मदद दी है। अतः वर्तमान दौर में भारत भी विदेशी सहायता देने वाले देशों की श्रेणी में आ गया है। लेकिन फिर भी वह बहुराष्ट्रीय निगमों के जाल में जकड़ा हुआ है और बाह्य पूंजी निवेश के बल पर अपना आर्थिक विकास कर रहा है।

भारत की विदेश व्यापार नीति

(India's Foreign Trade Policy)

अपने निर्यात को बढ़ावा देने तथा विदेशी मुद्रा को अर्जित करने के लिए भारत विदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों को प्राथमिकता देता रहा है। भारत के विदेशी सम्बन्धों का इतिहास बताता है कि भारत ने अमेरिका, रूस, फ्रांस, चीन, ब्रिटेन आदि देशों के साथ व्यापारिक समझौते किए हैं। इसी नीति का लाभ भारत को आर्थिक उदारीकरण के युग में प्राप्त हुआ है। इससे भारत में पूंजी निवेश को बढ़ावा मिला है और व्यापार भुगतान संतुलन का घाटा कम हुआ है।

भारत की व्यापार नीति का विकास

(Evolution of India's Trade Policy

भारत की व्यापार नीति को समझने के लिए भारत के अमेरिका, सोवियत संघ तथा अन्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों को समझना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में सबसे पहले अमेरिका के साथ भारत की व्यापार नीति को लिया जा सकता है। प्रारम्भ में भारत अमेरिका के साथ अपने व्यापारिक सम्बन्धों को उन्नत नहीं बना सका। 1984 तक दोनों देशों के बीच 4.02 अरब डालर का व्यापार था। इसमें भारत द्वारा निर्यात 2.19 अरब डालर तथा आयात 1.83 अरब डालर था। आयात-निर्यात की द ष्टि से व्यापार-सन्तुलन भारत के ही पक्ष में था। 1994 में भी दोनों देशों के बीच व्यापारिक समझौते हुए। आज भी भारत अमेरिका के साथ व्यापारिक सम्बन्ध कायम किए हुए हैं। यदि सोवियत संघ के साथ भारत के व्यापार को लिया जाए तो पता चलता है कि 1949 में ही भारत तथा सोवियत संघ के बीच एक व्यापारिक समझौता हो गया था जिसके अनुसार सोवियत संघ ने चाय और जूट के बदले एक लाख बीस हजार टन गेहूं और मक्का देना शुरु कर दिया था। 1953 में दोनों देशों के बीच व्यापार कुल 80 लाख रुबल था और 1957 तक यह पांच करोड़ रुबल पर पहुंच गया। 1971 की भारत-सोवियत मैत्री सन्धि के बाद भारत-सोवियत संघ के बीच व्यापार में काफी प्रगति हुई। 1973 में भी दोनों देशों में एक व्यापारिक समझौता हुआ। उसके बाद 1976 में हुए व्यापारिक समझौते के अन्तर्गत सोवियत संघ ने भारत को खनिज तेल खोदने का उपकरण दिया। इस समझौते में भारत ने परम्परागत वस्तुओं के साथ-साथ बैट्रियां, एल्युमिनियम, बिजली

का सामान, दवाईयां रंग और रसायनिक पदार्थ सोवियत संघ को निर्यात करने की बात स्वीकार की। उसके बाद 23 दिसम्बर, 1985 को दोनों देशों में एक व्यापार करार हुआ। परन्तु 1990 में अपने विघटन के कारण सोवियत संघ भारत को आर्थिक मदद देने की स्थिति में तो नहीं रहा, परन्तु उसके उत्तराधिकारी रूस के साथ आज भी भारत के व्यापारिक सम्बन्ध हैं। आज दोनों देशों के बीच कुल व्यापार 1332.19 मिलीयन डॉलर है।

अन्य देशों के साथ भारत की व्यापार नीति का अवलोकन करने से पता चलता है कि भारत के चीन के साथ 1978 के बाद ही व्यापारिक सम्बन्ध विकसित हुए। 1991 में भारत तथा चीन के बीच कुल व्यापार 264.81 मिलियन अमेरिकी डालर था जो 1998 में बढ़कर 1,912.29 मिलियन अमेरिकी डालर हो गया। इसमें व्यापार संतुलन चलन के पक्ष में रहा। 2002-2003 के दौरान दोनों देशों के बीच व्यापार 3.865.77 मिलीयन अमेरिकी डालर हो गया। आज भी भारत के चीन के साथ व्यापारिक सम्बन्ध हैं। जून-जुलाई, 2004 में भारत ने पाकिस्तान के साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया और अगस्त 2004 में बनने वाली नई व्यापार नीति में उचित स्थान देने की पेशकस की। फ्रांस के साथ भी 1956 में व्यापार 20.3 करोड़ रुपए था जो 1969 में 56.4 करोड़ रुपये हो गया। 1991 में यह 7.84 बिलियन फ्रैंक हो गया तथा 2001 में 13.50 बिलीयन फ्रैंक पर पहुंच गया। ब्रिटेन के साथ भी भारत का व्यापार 1995 में 3.10 बिलीयन पौंड था जो 2001 में घटकर 2.79 रह गया। अन्य देशों के साथ भी भारत के व्यापारिक सम्बन्ध हैं। जापान के साथ 1999 में भारत का व्यापार 388 मिलियन अमेरिकी डालर था। जो 2001 में 16,614 करोड़ रुपए हो गया। आस्ट्रेलिया के साथ भारत का व्यापार 1991-92 में 1041.3 आस्ट्रेलियाई डालर मिलियन डालर था जो 2000-2001 में बढ़कर 28.34.1 डालर मिलियन हो गया। हिन्द महासागर रिम क्षेत्रीय समूह देशों के साथ भारत का व्यापार 1994-95 में 50149 मिलीयन डालर था जो 1996-97 में 5334.1 मिलीयन डालर हो गया। यूरोपीय संघ के साथ 1991 में भारत का व्यापार 9975 मिलियन यूरो था जो 2001 में 25524 मिलियन यूरो हो गया।

भारत की व्यापार नीति का अवलोकन करने से पता चलता है कि प्रारम्भ में भारत की व्यापार नीति अधिक तर्कसंगत नहीं थी। भारत का विदेशी व्यपार में हिस्सा काफी कम था और उसका व्यापार गिने चुने देशों तक ही सीमित था। इसलिए व्यापार भुगतान संतुलन की समस्या खड़ी हो गई। उसके बाद भारत ने अपनी निर्यात राशि में व द्धि करने के लिए व्यापार के नये क्षेत्रों का विकास किया और निर्यात अभिमुखन औद्योगिक उत्पादन पर बल दिया। उसमें गुणात्मक द ष्टि से वस्तुओं का उत्पादन किया गया और नई मंडियों की खोज की गई। निर्यातक कम्पनियों को वित्तीय रूप से सुद ढ़ करने के लिए ऋण की व्यवस्था की गई। संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से भारत ने विकसित राष्ट्रों से अपनी व्यापारिक शर्तों में सुधार करके विकासाशील राष्ट्रों के साथ अपने व्यापारिक सम्बन्ध विकसित किए तथा अपनी निर्यातक क्षमता में व द्धि की। इससे 1976-77 में भारत का विदेशी मुद्रा का भण्डार 49000 मिलियन रुपये हो गया। भारत को समाजवादी देशों द्वारा व्यापारिक रियायतें प्राप्त हुई और इन देशों के साथ भारत का व्यापार बढ़ा। इससे भारत की व्यापार भुगतान समस्या का अन्त हो गया और निर्यात को बढ़ावा मिला। परन्तु इसके बावजूद भी भारत पूर्ण सम्भावित विकास की दिशा में नहीं बढ़ सका। 1980 के दशक में भारत में राजनीतिक भ्रष्टाचार, आर्थिक रियायतों की नीति, विदेशी कर्ज का बढ़ता बोझ, रक्षा बजट में होने वाली बढ़ोतरी आदि प्रव त्तियों के कारण भारतीय आर्थिक नीति असफल हो गई और भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार लगभग समाप्त सा हो गया।

1991 में भारत ने आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया शुरु करके अपनी व्यापार नीति को विश्व-अभिमुखी बनाया ताकि विदेशी मुद्रा भंडार तथा विदेशी पूंजी निवेश में व द्धि की जा सके। इस नीति के कारण भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आगमन हुआ और भारतीय अर्थव्यवस्था में खुलापन आया। इससे भारत ने अपने आर्थिक ढांचे को बदलकर विश्व बाजार व्यवस्था से जोड़कर आर्थिक सुधारों

के स्थाई परिणाम प्राप्त किए। परन्तु भारत का व्यापार भुगतान संतुलन घाटा कम नहीं हुआ। भारत की विदेशी मुद्रा का अधिकतर हिस्सा ऋणों पर ब्याज की अदायगी और तेल घटा पूरा करने में ही खर्च हो जाता है। भारत की व्यापार नीति का अवलोकन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 1998-99 में -55675 करोड़ रुपए हो गया। परन्तु इसका सुखद पहलु यह भी है कि 2000-2001 में यह -27302 करोड़ रुपए हो गया और उसके बाद यह गिरावट की स्थिति में है। आज भारत अपने व्यापार को बढ़ाने तथा व्यापार संतुलन के घाटे को कम करने के लिए आशियन, SAFTA तथा हिन्द महासागर देशों के क्षेत्रीय संगठन के माध्यम से प्रयासरत है। अब भारत कृषि पर आधारित वस्तुओं के निर्यात व कच्चे माल के निर्यात की बजाय उत्पादित माल को ही भेजने को प्राथमिकता देने लगा है। वह आर्थिक सुधारों के कार्यक्रमों के माध्यम से अपनी विदेश व्यापार व्यवस्था का पुनर्गठन कर रहा है। उसने अगस्त, 2004 में अपनी नई व्यापार नीति का निर्माण करने की बात भी स्वीकार की है। लेकिन इस क्रम में भारत को पूंजी निवेश और आर्थिक विकास में संतुलन कायम करने की आवश्यकता है ताकि विदेश व्यापार नीति और विदेश नीति दोनों का संतुलित विकास हो सके तथा बहुराष्ट्रीय निगमों का कोई नकारात्मक प्रभाव भारत की आर्थिक नीतियों पर न पड़े।

भारत की विदेश नीति में बहुराष्ट्रीय संस्थाओं और निगमों की भूमिका

(Role of Multinational Institutions and Corporations in India's Foreign Policy)

भारत की विदेश नीति में आर्थिक तत्वों की उपस्थिति के रूप में बहुराष्ट्रीय निगमों व संस्थाओं की भूमिका को भी लिया जा सकता है। इन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने न केवल भारत के आर्थिक विकास की प्रक्रिया को प्रभावित किया है, बल्कि विदेश नीति का स्वरूप भी निश्चित किया है। भारत की विदेश नीति पर प्रभाव डालने वाले प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन - विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF) अन्तर्राष्ट्रीय विकास समूह (IDA), व्यापार व प्रशुल्क सम्बन्धित सामान्य समझौता (GATT) तथा विश्व व्यापार संगठन (WTO) हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों में Exxon, Gulf Oil, IBM, General Electric, Ford Motors, Texaco, Mobil, Standard Iol of California आदि शामिल हैं। इनमें से IBM जैसी सैंकड़ों कम्पनियां भारत में कार्यरत हैं। 1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया ने भारत में इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों या निगमों को आकर्षित किया है और आज भारत में इन निगमों द्वारा काफी बड़ी मात्रा में निवेश किया जा चुका है। इससे भारत के स्थानीय बाजार व वस्तुओं को खतरा उत्पन्न हो गया है। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के दबावों के चलते भारत इनकी नकारात्मक भूमिका को भी सहने पर मजबूर है।

(I) बहुराष्ट्रीय आर्थिक संगठन

(Multinational Institutions)

बहुर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों में W.B., IMF, IDA, GATT तथा WTO शामिल हैं। इनकी भूमिका को निम्न तरह से समझा जा सकता है :-

विश्व बैंक व उसकी सहयोगी संस्थायें (World Bank and Other Institutions) :-

यह संगठन भारत के आर्थिक विकास हेतु ऋण प्रदान करता है। ब्रिटेन वुड सम्मेलन का सदस्य होने के नाते भारत विश्व बैंक का संस्थापक राष्ट्र रहा है। भारत ने सबसे पहले 1949 में ट्रैक्टर,

रेल इंजनों व विद्युत हेतु इस संस्था से ऋण प्राप्त किया। 1960 के दशक में भारत को विश्व बैंक ने अपनी सहयोगी संस्थाओं IDA तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (IFC) के माध्यम से कम ब्याज पर ऋण तथा सीधे पूंजी में सहायता की। भारत ने इस पूंजी का प्रयोग अपनी पंचवर्षीय योजना के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए किया। परन्तु 1965 से 1967 तक विश्व बैंक ने अनुदान देने वाले देशों की तरफ से भारत द्वारा रुपये का अवमूल्यन करने तथा आयात के तरीकों का उदारीकरण व कृषि उत्पादन में व द्धि हेतु खाद, बीज, सिंचाई व्यवस्था तथा ग्रामीण ऋण देने पर बल दिया। इस दौरान भी भारत को कृषि क्षेत्र में प्राथमिकता के आधार पर विश्व बैंक से काफी मदद प्राप्त हुई तथा उसकी सहयोगी संस्थाओं ने भी कृषि तथा ग्रामीण विकास के लिए भारत को अनुदान व ऋण दिये। उसके बाद 1970 के दशक में भी भारत को गरीबी हटाओ कार्यक्रम के लिए विश्व बैंक तथा उसकी सहायक संस्थाओं से ऋण व कम ब्याज पर अनुदान प्राप्त हुआ। इस सहायता राशि का प्रयोग भारत ने सामुदायिक शिक्षा, डेयरी विकास, कृषि विश्वविद्यालयों, ग्रामीण ऋण संस्थाओं आदि के विकास के लिए किया। 1980 के दशक में भी भारत व विश्व बैंक का सहयोग बढ़ता रहा। इस दौरान दोनों देशों ने ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण ढंग से सहयोग किया। इसके साथ-साथ भारत अमेरिका तथा सोवियत संघ से भी मदद लेता रहा।

यदि हम शीतयुद्धकालीन समय में विश्व बैंक द्वारा भारत को दी गई सहायता पर नजर डालें तो हमे पता चलता है कि भारत को अधिकतर विकास योजनाओं के लिए धन प्राप्त हुआ। भारत की आर्थिक साख के कारण विश्व बैंक ने कभी भी भारत में पूंजीनिवेश से मना नहीं किया। यद्यपि इस संस्था ने भारत के निजी क्षेत्र के औद्योगिक वर्ग को पूंजीवादी व्यवस्था से जोड़ने का काम किया, परन्तु इसकी भूमिका से ग्रामीण व शहरी अन्तर व पूंजी के शोषणकारी स्वरूप में व द्धि भी हुई। शीतयुद्धोत्तर युग में भारत ने आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया को अपनाया और आर्थिक उदारीकरण, विश्वकरण तथा विश्व बाजार को प्रमुखता दी। अब रियायती दरों पर मिलने वाली आर्थिक सहायता का स्थान निजी पूंजीनिवेश ने ले लिया और भारत की आर्थिक विकास की दर में व द्धि हुई। इसके लिए भारत ने 1991 में रुपए का अवमूल्यन किया। इस तरह के आर्थिक दबाव विगत सदी के अन्त में भारत की आर्थिक नीति को सहने पड़े। भारत आज भी विश्व बैंक से मदद ले रहा है। कई आर्थिक नीति विशेषज्ञों का कहना है कि भारत की विश्व बैंक पर बढ़ती निर्भरता व निजी पूंजीनिवेश जो विश्व बैंक के माध्यम से होता है, भारत के आर्थिक विकास का मार्ग अवरुद्ध कर सकता है और भारत एक नए प्रकार के साम्राज्यवाद का शिकार हो सकता है।

विश्व बैंक अपनी सहयोगी संस्थाओं के माध्यम से भी भारत को आर्थिक मदद देता रहा है। इनमें से 'Aid India Consortium' अथवा भारत सहायता कल्ब तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम प्रमुख हैं। प्रथम संस्था द्वारा तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान भारत को 5472 मिलियन डॉलर तथा 1986 से 1993 तक 432 बिलियन डॉलर की मदद मिली। इस संस्था से मिलने वाली सहायता के प्रभाव भी विश्व बैंक की सहायता से पड़ने वाले प्रभावो की तरह ही हैं। इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (IFC) भी भारत में निजी पूंजी निवेश करता है। इससे भारत के उद्योगों के विभिन्नीकरण तथा उनकी दिशा में परिवर्तन आए हैं। 1982 के अन्त तक इस निगम ने भारत में 238 मिलियन डॉलर का पूंजीनिवेश किया। आज भी यह संगठन बड़े उद्योगों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह अपना कार्य विश्व बैंक के सन्दर्भ में ही करता रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) :-

इस संगठन की स्थापना 1944 में ब्रिटेनवुड सम्मेलन में हुई। इसका प्रमुख उद्देश्य व्यापार के

विनिमय पर लगी सभी पाबन्दियों को खत्म करके सम्पूर्ण विश्व के लिए एक बहुमुखी व्यापारिक व्यवस्था की स्थापना करना था। इसके लिए विभिन्न देशो ंकी मुद्रा विनिमय दरों को निर्धारित करना, मुद्रा प्रणाली को व्यवस्थित करना, मुद्रा समस्या पर सहयोग व विचार करना, अनुशासित विनिमय को बढ़ावा देना, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सन्तुलित विकास में मदद देना व बहुमुखी भुगतान व्यवस्था स्थापित करना इस संगठन के प्रमुख ध्येय रहे हैं। भारत इस संगठन का प्रारम्भिक सदस्य देश रहा है। भारत में मुद्राकोष से ऋण का प्रवाह निरन्तर चलता आ रहा है। 1948-49 में इस संस्था से भारत को 100 मिलियन डालर अपनी भुगतान सन्तुलन की स्थिति सुधारने हेतु प्राप्त हुए। इसके बाद 1957 में 200 मिलियन डालर तथा 1961 में 250 मिलियन डालर प्राप्त हुए। परन्तु इसके साथ ही भारत को आयात उदारीकरण, बाह्य पूंजी निवेश हेतु अपने बाजारों को खोलना आदि कड़ी शर्तें भी स्वीकार करनी पड़ी। इन्ही शर्तों के कारण भारत ने 1965-66 में मुद्राकोष से ऋण की अन्तिम किस्त लेना अस्वीकार किया। 1991 तक भारत ने पाश्चात्य पूंजी बाजार से ही कर्ज लेकर काम चलाया। इससे भारत पर आर्थिक बोझ बढ़ता रहा। परन्तु 1991 में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया ने पूर्ववर्ती स्थिति को बदल डाला। 1991 से 1993 तक भारत ने मुद्राकोष से 4447 मिलियन डॉलर एस०डी०आर० निकाल लिए। भारत आज भी IMF से कर्ज ले रहा है।

यदि IMF की भूमिका का अवलोकन किया जाए तो यह बात उभरती है कि इस संगठन ने भी भुगतान असन्तुलन को कम करने की बजाय बढ़ाया ही है। इससे ढांचागत सुधारों के दुष्परिणाम उभरे हैं, जैसे ऋण की मांग व उपलब्धता घटना, अवमूल्यन से कीमतों का बढ़ना आदि। भारत में इस संगठन से प्राप्त सहायता के कारण ऋणों का बोझ, गरीबी, असमानता तथा सामाजिक तनाव में व द्धि हुई है। आज भारत में इस बात की मांग उठने लगी है कि भारत को मुद्राकोष से ऋण लेने की बजाय सीधे विदेशी पूंजी निवेश को बढ़ावा देना चाहिये और ऐसा ही भारत कह रहा है। यह तो समय ही बतायेगा कि विश्व बैंक और मुद्रा कोष के विकल्प के रूप में सीधा विदेशी पूंजी निवेश कितना सार्थक सिद्ध होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय विकास समूह (IDA) :-

इस संगठन की स्थापना 1 अक्तूबर 1959 को हुई और इसने 8 नवम्बर, 1960 से अपना कार्य करना शुरु किया। इस संगठन को विश्व बैंक की 'नरम ऋण वाली खिड़की' कहा जाता है, क्योंकि इस संगठन से प्राप्त ऋण स्वदेशी मुद्रा में वापिस लौटाया जा सकता है। जिन परियोजनाओं के लिए विश्व बैंक ऋण नहीं देता, उनके लिए यह संस्था ऋण देती है। भारत को इस संगठन द्वारा दिये गये ऋणों से काफी लाभ हुआ है। 1960 से 1992 तक भारत ने इससे 18,916.6 मिलियन डॉलर का ऋण प्राप्त किया। भारत ने इस राशि का उपयोग सड़कें बनाने, बाढ़ नियन्त्रण, नदी परियोजना, बिजली उत्पादन तथा निर्माण कार्यों में किया। आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के दौरान भी इस संस्था से मिलने वाली सहायता में कोई कमी नहीं आई। इसलिए भारत ने अपने औद्योगिक व आर्थिक विकास का मार्ग अपनाए रखा ओर आज भारत एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में उभर चुका है। इस संगठन से प्राप्त सहायता का भारत की अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इसलिए भारत इससे ही आर्थिक सहायता प्राप्त करने को प्राथमिकता देता रहा है।

व्यापार व प्रशुल्क पर सामान्य समझौता तथा विश्व व्यापार संगठन (GATT and WTO) :-

GATT की स्थापना 1947 में हुई और यह 1994 तक कार्यरत् रहा। इस संगठन या समझौते में कहा गया कि विश्व व्यापार भेदभाव रहित आधार पर होना चाहिए। भारत शुरु से ही इस संगठन से जुड़ा रहा और स्थाई अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाने की मांग का समर्थक रहा। जब GATT वार्ताओं के दौर ने विकासशील देशों की स्थिति को कमजोर कर दिया तो भारत की स्थिति भी दयनीय हो गई। GATT व्यवस्था के दोषपूर्ण होने पर 1993 में GATT के डायरेक्टर डंकेल ने एक मसौदा तैयार किया, जिसके आधार पर विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई। यह नया संगठन जनवरी

1995 से प्रभावी हो गया।

विश्व व्यापार संगठन में भारत जी-77 व G-15 देशों की भूमिका के कारण एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस नए संगठन की स्थापना के बाद भी भारत की समस्याओं का अन्त नहीं हुआ है। इसने भारत में आर्थिक असमानता को बढ़ा दिया है। इस संगठन में अमेरिका जैसे पूंजीवादी देशों का प्रभुत्व होने के कारण भारत की अर्थव्यवस्था पर विश्व व्यापार के माध्यम से गलत शर्तें थोपी गई हैं। इसलिए भारत ने WTO की भेदभावपूर्ण भूमिका के प्रभाव से बचने के लिए NAFTA, SAFTA, यूरोपियन संघ, हिन्द महासागर रिम, आशियन आदि क्षेत्रीय आर्थिक संगठनों का आश्रय ले लिया है।

इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों के भारत की आर्थिक नीति पर सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़े हैं। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से प्राप्त आर्थिक सहायता का भारत की अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा, क्योंकि इन संगठनों ने भारत को आर्थिक सहायता देते समय जो शर्तें लागाई, वे भारत की अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डालने वाली थी और इसी कारण भारत को 1966 तथा 1`991 में अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करना पड़ा। इससे भारत की आर्थिक विदेश नीति को बाहरी हस्तक्षेप भी सहन करना पड़ा। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विकास समूह की भूमिका सकारात्मक रहीं। यदि भारत इससे मदद न लेता तो विश्व बैंक तथा मुद्रा कोष की पक्षपातपूर्ण व अन्यायकारी नीतियां भारत की अर्थव्यवस्था को कब की चौपट कर देती। नरम कर्ज की खिड़की के रूप में इस संगठन ने भारत की पूरी आर्थिक मदद की। परन्तु GATT तथा WTO ने भारत के हितों की अवहेलना की और WTO का पक्षपातपूर्ण रवैया आज भी भारत की व्यापार नीति को बाधित कर रहा है। इसी कारण आज भारत 'आशियन' (ASEAN) जैसे क्षेत्रीय आर्थिक संगठनों के साथ सहयोग करके अपने आर्थिक विकास का लक्ष्य हासिल करना चाहता है।

(II) बहुराष्ट्रीय निगम

(Multinational Corporations)

भारत में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया को अपनाने के कारण भारत में बहुर्राष्ट्रीय निगमों का प्रवेश हुआ। इससे गैर-सरकारी विदेशी पूंजीनिवेश को बढ़ावा मिला और पूंजीवादी व्यवस्था सुद ढऋ हुई। जो विदेशी गैर-सरकारी पूंजी निवेश 1991 से पहले भारत में हुआ, वह बहुत ही कम मात्रा में था। 1963 में यह निवेश 694 करोड़ रुपये था जो 1970 में बढ़कर 1298 करोड़ रुपये हो गया। 1973 में विदेशी पूंजीनिवेश को नियन्त्रित करने वाला फेरा (FERA) अर्थात् विदेश मुद्रा विनिनयन कानून लागू किया गया ताकि घरेलु उद्योगों को कोई खतरा न पहुंचे। इस कानून के तहत बाह्य पूंजी निवेश की सीमा का निर्धारण किया गया। 1977 में फिर से विदेशी पूंजी निवेश को कम करने के लिए गैर-जरूरी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को देश से बाहर कर दिया गया। इस दौरान शीतपेय बनाने वाली कोका-कोला को बाहर निकाला गया। इस तरह 1991 तक विदेशी गैर-सरकारी पूंजी निवेश बहुत ही कम मात्रा में हुआ।

इसके बाद 1991 में भारतीय अर्थव्यवस्था की बिगड़ी हुई दशा को सुधारने के लिए आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया के तहत भारत में विदेशी पूंजी निवेश को बढ़ाने के प्रयास शुरु किए गए। इस दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व बाजार से जोड़ने के लिए खुलेपन की नीति अपनाई गई और बहुराष्ट्रीय विदेश आर्थिक नीति को यथार्थवादी बनाने के लिए मुद्रा का अवमूल्यन किया गया तथा बाह्य पूंजी निवेश की सीमा बढ़ाने के साथ-साथ करों में भी ढील दी गई। अब FERA के स्थान पर FEMA लागू किया गया। सामान्य विदेश नीति में बदलाव करके शिखर सम्मेलन राजनय द्वारा भारत की आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया के प्रति विश्वास पैदा किया गया। इससे धीरे धीरे भारत में विदेशी गैर-सरकारी पूंजी निवेश बढ़ने लगा। 1991 में जहां 5.3 बिलियन रुपए का

निवेश हुआ, वहीं 1995 तक यह 320.7 बिलियन रुपए हो गया। 1997 में यह राशि 548.9 बिलियन रुपये थी जो अब तक का सबसे अधिक बाह्य पूंजी निवेश था। 2002 में घटकर यह निवेश 111.3 बिलियन तक पहुंच गयां इस निवेश में सबसे अधिक योगदान अमेरिका का रहा। 1991 के बाद भारत में सबसे अधिक बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अमेरिका से आई और आज भी हैं

आज विश्व की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की जितनी संख्या है, उसमें से एक चौथाई भाग अमेरिका का है। इन कम्पनियों में से सैकड़ों आज भी भारत तथा विकासशील देशों में कार्य कर रही है। इनमें से IBM. EXXON तथा General Motors प्रमुख हैं जिन्होंने भारत में काफी मात्रा में पूंजी निवेश किया है। इन निगमों ने भारत में पूंजी निवेश की आवश्यकताओं को पूरा किया है। इनके द्वारा भारत को तकनीक प्राप्त हुई है और भारत ने अपनी पटरी से उतरी हुई अर्थव्यवस्था को वापिस पटरी पर ला दिया है। इन्होंने भारत को आर्थिक विकास का लक्ष्य हासिल करने में मदद की है। परन्तु ये निगम तकनीक हस्तांतरण की भारी फीस वसूल करके भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने में कामयाब रहे हैं। ये निगम भारत से बड़ी मात्रा में लाभ प्राप्त करने में सफल रहे हैं। इसी कारण इन्हें गैर-सरकारी निजी लाभ कमाने वाले आर्थिक उद्यम भी कहा जाता है। वास्तव में ये निगम नव-उपनिवेशीय नियन्त्रण के प्रभावशाली साधन बन चुके हैं। इन्होंने भारत के कच्चे माल का शोषण करके भारी लाभ कमाया है। यदि ये निगम भारत से अपना पूंजी निवेश वापिस ले लेते है। तो इससे भारतीय अर्थव्यवस्था फिर से बर्बादी के द्वार पर पहुंच जायेगी। इसी कारण आज भारत में यह मांग उठने लगी है कि भारत धीरे धीरे नव-उपनिवेशीय नियन्त्रण में कमी लाने के प्रयास किये जाने पाहिये।

भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों की शर्मनाक भूमिका को देखते हुए कहा जाता है कि ये निगम बेरोजगारों के ऐजेन्ट हैं। भारत के अनेक अर्थशास्त्री छटनी को बहुराष्ट्रीय निगमों की नीति का ही एक हिस्सा मानते हैं। इन निगमों ने कई बार भारत के राष्ट्रीय हितों को हानि पहुंचाई है। इन्होंने भूखमरी, बेरोजगारी तथा आर्थिक असमानता को बढ़ाया है। ये निगम अमीर और गरीब देशों की खाई को पाटने की बजाय चौड़ा कर रहे हैं। क्योंकि ये निगम निर्धन राष्ट्रों पर धनी राष्ट्रों के नव-उपनिवेशीय नियन्त्रण के ही साधन हैं। इन निगमों ने भारत सहित कई विकासशील देशों के राष्ट्रीय हितों का अन्तर्राष्ट्रीय हितों के लिए बलिदान किया है। इन निगमों ने आर्थिक नियन्त्रण के द्वारा कई बार भारत की राजनीतिक प्रक्रिया को भी प्रभावित करने की चेष्टा की है। इसलिए आज समय की मांग है कि इन निगमों के अनुचित राजनीतिक व आर्थिक हस्तक्षेप की प्रव ति को रोका जाए और भारत से अमेरिका जैसे पूंजीवादी देशों का नव-उपनिवेशीय नियन्त्रण कम किया जाये।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि विदेशी सहायता, व्यापार, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन तथा बहुराष्ट्रीय निगमों की कार्यपणाली का भी भारत की विदेश नीति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि आज भारत ने विदेशी आर्थिक सहायता पर अपनी निर्भरता कम कर ली है, परन्तु बहुराष्ट्रीय निगमों की भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका यह सिद्ध करती है कि अमेरिका जैसा देश भारत पर CTBT पर हस्ताक्षर करने के लिए कभी भी दबाव डाल सकता है या भारत को आर्थिक विदेश नीति व घरेलु नीति में परिवर्तन करने के लिए कभी भी बाध्य कर सकता है। WTO तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों पर भी अमेरिका जैसे धनी देशों का वर्चस्व तथा इन संगठनों की पक्षपतापूर्ण भूमिका भी भारत की आर्थिक विदेश नीति व सामान्य विदेश नीति दोनों को ही प्रभावित कर सकती है और इस हस्तक्षेप के प्रति भारत को सचेत करते हुए विदेशी सहायता तथा बहुराष्ट्रीय निगमों के अन्धाधुन्ध प्रवेश को रोकने की महती आवश्यकता है ताकि भारत स्वतन्त्र आर्थिक नीति के माध्यम से अपना आर्थिक विकास का लक्ष्य हासिल कर सके।

अध्याय-8

भारत की परमाणु नीति

(India's Nuclear Policy)

भारत की परमाणु नीति उसकी विदेश नीति का ही एक अभिन्न अंग है। भारत की विदेश नीति के प्रमुख उद्देश्यों - राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक विकास व विश्व व्यवस्था से सरोकार रखती है। भारत की परमाणु नीति का ध्येय रहा है कि भारत अपनी सुरक्षा तथा आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करते हुए शांति वह सहयोग पर आधारित विश्व व्यवस्था के निर्माण में योगदान दे। इसी कारण नेहरु जी ने परमाणु ऊर्जा का प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए करने का संकल्प किया था और भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए परमाणु शक्ति का विकल्प भी खुला रखा था। इस संकल्प को 1974 तक दोहराया गया। परन्तु चीनी आक्रमण के बाद ही भारत परमाणु बम्ब बनाने का विचार करने लग गया था ताकि चीन के परमाणु बम्ब के सम्भावित खतरे वे वह स्वयं को बचा सके। 1974 में भारत ने अपने पहला परमाणु विस्फोट करके विश्व समुदाय को अपने मनसूबे दिखा दिए थे कि अब भारत आदर्शवादिता के स्थान पर राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए यथार्थवादी नीति अपनाने जा रहा है। 1998 के परमाणु विस्फोटों ने विश्व समुदाय को यह सोचने को विवश कर दिया कि अब भारत भी परगाणु बम्ब बनाने में सक्षम है। इसके बावजूद भी भारत की परमाणु नीति 1947 की तरह आज भी नेहरु जी के इस संकल्प को ही दोहराती रही है कि भारत परमाणु शक्ति का प्रयोग शांतिपूर्ण कार्यों के लिए ही करेगा। परन्तु भारत की आणविक नीति राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए परमाणु शस्त्रों के निर्माण का विकल्प भी खुला रखती है। भारत की परमाणु नीति को निम्न प्रकार से समंझा जा सकता है :-

(1) **भारत का परमाणु विकल्प** (India's Nuclear Option) :- प्रारम्भ से लेकर आज तक भारत बार-बार इस संकल्प को दोहराता रहा है कि वह परमाणु बम्ब का निर्माण नहीं करेगा और परमाणु निःशस्त्रीकरण का पूरा समर्थन करता रहेगा। लेकिन फिर भी वह परमाणु विकल्प को खुला रखेगा। इसका सीधा तात्पर्य यह है कि यदि भारत की सुरक्षा के हित में परमाणु अस्त्रों की आवश्यकता पड़ी तो भारत अपने विकल्प का प्रयोग अवश्य करेगा। भारत के चीन तथा पाकिस्तान के साथ असामान्य सम्बन्ध इस विकल्प को खुला रखेन के लिए भारत को बाध्य करते रहते हैं। भारत के अनेक प्रयासों के बावजूद भी पाकिस्तान भारत विरोधी नीति में कोई बदलाव नहीं आया है और चीन ने पाकिस्तान को परमाणु कार्यक्रम को विकसित करने में हर कदम पर मदद दी है तो इस हालात में भारत अपनी सुरक्षा के लिए परमाणु बम्ब बनाने का विकल्प खुला रखे तो इसमें क्या हर्ज है। चीनी आक्रमण के समय भारत पर जनमत का यह दबाव बना रहा है कि उसे परमाणु विकल्प का प्रयोग करने में देरी नहीं करनी चाहिए, परन्तु भारत ने न तो परमाणु विकल्प को छोड़ा और न ही उसे अपनाया। इसी कारण भारत के परमाणु विकल्प की आलोचना करते हुए ब्रह्मा चैलेनी ने कहा है कि "भारत ने द ढ़ता और हठधर्मित से अपने परमाणु विकल्प का सहारा लिया

हुआ है, परन्तु इसको प्रत्यक्ष सुरक्षा सम्पदा के रूप में प्रयोग करने से घ णा करता रहा है। वह परमाणु व्यवस्था की भेदभावपूर्ण प्रकृति का शोर मचाता रहा है, परन्तु उसके बढ़ते हुए भेदभाव और बड़ी शक्तियों की वर्चस्व-आधारित प्रथाओं से उबारने की कोई कोशिश नहीं की है। वह सहमे हुए, अपने न उपयोग किए गए परमाणु विकल्प के लिए बढ़ता हुआ, अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य चुकाता रहा है, परन्तु उसने न तो यह साहस किया कि इस विकल्प को छोड़ दे और न यह कि बड़ी शक्तियों की नरसंहार प्रव त्ति के विरुद्ध अपने इस विकल्प का प्रयोग करे।" इसका सीधा अर्थ यह है कि भारत अपने परमाणु विकल्प के मुद्दे पर अनिश्चिय व अनिर्णय की स्थिति में रहा है।

भारत के परमाणु विकल्प के बारे में कहा जाता है कि भारत ने स्वतन्त्रता के एक वर्ष के अन्दर ही अणु ऊर्जा आयोग भी स्थापित कर लिया था। नेहरु जी ने इस आयोग को निर्देश दिया था कि "जिस प्रकार विश्व में परमाणु दौड़ आरम्भ हो गई है, उसे ध्यान में रखते हुए प्रत्येक देश को अपनी सुरक्षा के लिए आधुनिकतम वैज्ञानिक उपायों का विकल्प करना होगा।" नेहरु जी के इस विचार को साकार करते हुए हमारे वैज्ञानिकों ने भारत को परमाणु शक्ति सम्पन्न देश तो बना दिया, परन्तु संकट के समय हम उसका प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त नहीं कर सक। जब 1962 में भारत पर चीन ने आक्रमण किया था तो भारत अपने परमाणु विकल्प के बारे में कोई निर्णय ले सकता था, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। भारत ने 1974 तक अपने परमाणु विकल्प का कोई प्रयोग नहीं किया। भारत चाहता तो इस विकल्प द्वारा परमाणु-निरोधक शक्ति प्राप्त कर सकता था। उसके बाद 1974 में परमाणु विस्फोट करने के बाद भी 1998 तक 24 लम्बे अन्तराल तक भारत ने कोई परमाणु परीक्षण नहीं किा और न ही अपना परमाणु विकल्प बन्द किया। इसके बाद 1998 में भारत के प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी जी ने मार्च 1998 में भारत के परमाणु विकल्प की दुविधा को दूर करने का प्रयास किया और सरकार के कार्यक्रम में घोषणा की कि परमाणु विकल्प न केवल खुला रखा जाएगा, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर इसका प्रयोग भी किया जाएगा।

मई 1998 में भारत द्वारा पोकरण में किए गए पांच परमाणु परीक्षणों ने भारत को एक परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बना दिया। अब भारत के परमाणु विकल्प के बारे में उठाई जाने वाली सब आपत्तियां बन्द हो गई। भारत ने अपने परमाणु सिद्धान्त की घोषणा करके सबको चौंका दिया। भारत ने कहा कि वह 'न्यूनतम परमाणु निवारक' (Minimum Nuclear Deterrence) की क्षमता रखेगा और प्रथम प्रयोग न करने के सिद्धान्त पर चलेगा। इसका सीधा अर्थ यह है कि भारत मात्र उतने ही परमाणु अस्त्रों का निर्माण और भंडारण करेगा जो उसकी सुरक्षा के लिए आवश्यक होंगे, और जो शत्रु के द्वारा भारत पर आक्रमण की दशा में अवरोधक का कार्य करेंगे। इसके अतिरिक्त भारत किसी भी स्थिति में परमाणु शक्ति विहिन देश के विरुद्ध अपने परमाणु अस्त्रों का प्रयोग नहीं करेगा। वह अन्य परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों के विरुद्ध भी परमाणु आक्रमण की पहल नहीं करेगा। वह केवल उसी स्थिति में अपने परमाणु अस्त्रों का प्रयोग करेगा जब उस पर कोई परमाणु शक्ति सम्पन्न देश परमाणु हमला करेगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत का परमाणु विकल्प सन्देह से परे है। वाजपेयी सरकार ने वर्षों से चली आ रही परमाणु विकल्प की दुविधा की स्थिति को समाप्त करके जो नया आयाम कायम किया है, वह भारत की परमाणु नीति को समझने के लिए काफी है।

(2) भारत की परमाणु नीति विकास की ओर (India's Nuclear Policy towards Development) :- स्वतन्त्रता के बाद नेहरु जी ने घोषणा की थी कि भारत परमाणु शक्ति का प्रयोग शांतिपूर्ण कार्यों के लिए ही करेगा और कभी परमाणु बम्ब का निर्माण नहीं करेगा। नेहरु जी ने भविष्य की सरकारों की ओर से भी परमाणु शस्त्रों के विकास न करने के आश्वासन को दोहराया। नेहरु जी ने कहा कि हमारी भविष्य की सरकारें भी अणु ऊर्जा का दुरुपयोग नहीं करेंगी। 1962 के चीनी आक्रमण के बाद भी नेहरु जी अपने वचन पर कायम रहे। नेहरु जी की म त्यु के

बाद शास्त्री जी ने भी परमाणु शस्त्र न बनाने का संकल्प बदला। शास्त्री जी ने कहा कि सरकार की नीतियां हमेशा अपरिवर्तनशील नहीं हो सकती। चीनी आक्रमण के बद अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश व भारत का रक्षा वातावरण बदल चुका है। इसलिए भारत को भी परमाणु नीति पर बदलते विश्व परिवेश में पुनः विचार करना होगा। उसके बाद प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने देश की रक्षा को अति महत्वपूर्ण विषय मानते हुए परमाणु नीति पर पुनर्विचार की बात कही। इसी सन्दर्भ में गांधी जी ने 1974 में प्रथम परमाणु विस्फोट किया। इन्दिरा गांधी ने स्पष्ट किया कि यह विस्फोट शांतिपूर्ण कार्यों के लिए परमाणु ऊर्जा के प्रयोग के सन्दर्भ में ही किया गया है। उन्होंने ही पहले वाली सरकारों की तरह परमाणु बम्ब न बनाने की बात कही। उसके बाद प्रधानमन्त्री मोरार जी देसाई ने भी परमाणु हथियार न बनाने का संकल्प दोहराया, परन्तु नए सन्दर्भ में परमाणु नीति तय करने का प्रयास अवश्य किया। देसाई जी ने कहा कि - भारत परमाणु अस्त्र नहीं बनाएगा, कोई परमाणु परीक्षण नहीं करेगा, यदि करना पड़ा तो वह दूसरों की सलाह लेगा। भारत अपने परमाणु ठिकानों के निरीक्षण की अनुमति तब तक नहीं देगा जब तक परमाणु शक्तियां अपने स्थलों को हमारे निरीक्षण के लिए नहीं खोलेंगी तथा भारत परमाणु अप्रसार सन्धि पर भी हस्ताक्षर नहीं करेगा। इस तरह भारत ने अपनी परमाणु नीति को अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ जोड़े रखा। आगे चलकर राजीव गांधी ने परमाणु हथियारों की रोक की बात की। परन्तु परमाणु हथियार बनाने पर वे भी चुप रहे। इसके बाद देवगौडा तथा गुजराल ने भी अपने परमाणु विकल्प खुले रखने की बात कही। उसके बाद 1998 में भारत द्वारा किए गए परमाणु विस्फोटों तथा उसके प्रत्युत्तर में पाकिस्तान द्वारा किए गए विस्फोटों ने भारत को अपनी परमाणु अस्त्र न बनाने की नीति को बदलने को विवश कर दिया। आज भारत के पास, पाकिंस्तान से कहीं अधिक आणविक अस्त्र बनाने की क्षमता है। वाजपेयी जी ने परमाणु सिद्धान्त की घोषणा करके सिद्ध कर दिया है कि भारत परमाणु अस्त्र बनाने में सक्षम है और उसकी परमाणु नीति उसकी राष्ट्रीय सुरक्षा के सन्दर्भ में ही निर्धारित की गई है।

(3) **भारत की परमाणु नीति व राष्ट्रीय सुरक्षा** (India's Nuclear Policy and National Security) :- राष्ट्रीय सुरक्षा प्रत्येक देश की सरकार व विदेश नीति निर्धारकों का प्रमुख उत्तरदायित्व होता है। अन्य देशों की तरह भारत भी अपनी परमाणु नीति का निर्धारण राष्ट्रीय सुरक्षा के सन्दर्भ में ही करता है। भारत को अपने पड़ोसी देशों से निरन्तर खतरा बना रहता है और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां भी भारत की सुरक्षा व्यवस्था पर दबाव डालती रहती है। भारत को 1965 तथा 1971 में पाकिस्तान से तथा 1962 में चीन से अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत बनाने के लिए अपनी आणविक नीति में बदलाव लाना पड़ा। चीन के पास प्रचुर मात्रा में आणविक अस्त्रों का होना, पाकिस्तान की परमाणु बम्ब बनाने की क्षमता, पाकिस्तान के परमाणु कार्यक्रम ने चीन की सहायता, हिन्द महासागर में अमेरिका द्वारा डियागों गार्शिया द्वीप पर परमाणु शक्ति सम्पन्न नौ-सैनिक अड्डे के विकास आदि बातें भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा उत्पन्न करती है। इसलिए भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ कोई समझौता न करे। आज भारत निरन्तर अपनी परमाणु क्षमता बढ़ा रहा है, उसके पीछे राष्ट्रीय सुरक्षा का ही प्रश्न जुड़ा हुआ है। भारत 1962 की स्थिति फिर से नहीं लाना चाहता। शीत युद्ध के बाद भी अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने भारत की सुरक्षा के लिए उत्पन्न खतरों को कम करने में कोई योगदान नहीं दिया है। भारत को पाकिस्तान की तरफ से मिलने वाली परमाणु युद्ध की धमकी, भारत को इसबात को सोचने पर विवश करती है कि वह व्यावहारिक विदेश नीति अपनाए और उसमें परमाणु शक्ति के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए। वाजयेपी सरकार द्वारा परमाणु बम्ब बनाने का स्वतन्त्र निर्णय लेकर भारत की परमाणु नीति के साथ-साथ विदेश नीति को भी सुद ढ़ बनाया है। आज पाकिस्तान दावा करता है कि उसने परमाणु बम्ब बना लिया है तो भारत के लिए भी यह नितान्त

आवश्यक है कि वह भी अपने परमाणु विकल्प का प्रयोग करके अस्त्र निर्माण करे। आज भारत के पास परमाणु हमले से भारत की सुरक्षा के लिए निरोधक के रूप में अपनी प्रक्षेपास्त्र क्षमता के विकास और सुधार करने के सिवाय और कोई विकल्प ही नहीं है। भारत द्वारा अग्नि प्रक्षेपास्त्रों के सफल परिक्षणों ने भारत की सुरक्षा व्यवस्था को मजबूती प्रदान की है। उधर चीन द्वारा पाकिस्तान को उपलब्ध कराई गई वैलिस्टिक मिसाइलें भी भारत को इस बात के लिए बाध्य करती हैं कि वह अधिक-से-अधिक मात्रा में परमाणु शस्त्रों का निर्माण करे ताकि आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर उनका प्रयोग भी किया जा सके। भारत द्वारा NPT व CTBT पर हस्ताक्षर न करने के पीछे भी राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न ही कार्य कर रहा है। भारत की परमाणु नीति कभी भी राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ कोई समझौता नहीं कर सकती।

(4) शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए परमाणु शक्ति का प्रयोग (Use of Nuclear Power for Peaceful Objectives) :- नेहरु जी ने 1948 में ही स्पष्ट कर दिया था कि भारत परमाणु शक्ति का प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए करेगा। इसी सन्दर्भ में भारत ने 1948 में परमाणु ऊर्जा अधिनियम बनाया और 1957 में भाभा परमाणु उर्जा केन्द्र की स्थापना की। 1962 में भारत ने परमाणु उर्जा आयोग की स्थापना की तथा कई अन्य सहायक संस्थाओं का विकास किया जो परमाणु तकनीकों के विकास के लिए कार्य कर रही है। 1974 में भारत द्वारा पोकरण में किया गया विस्फोट भी शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए किया गया था। आज भारत में तारापुर, कोटा, कल्पाकम, नरौरा तथा कैगा में परमाणु उर्जा केन्द्र कार्य कर रहे हैं। भारत ने 1980 के दशक में ही परमाणु उर्जा के विकास में सफलता प्राप्त कर ली थी। आज भारत परमाणु ईंधन के घटने, उत्खनन करने, उसे अलग करके यूनेरियम में बदलने, ईंधन बनाने, भारी पानी उत्पादन, रिएक्टर बनाने तथा कचरे के प्रबन्धन तक के सभी कार्य करने में सक्षम है। प्रारम्भ से ही भारत उर्जा का उत्पादन और उद्योग, चिकित्सा, कृषि अनुसंधान और अन्य क्षेत्रों में रेडियो आइसोटोपों का उपयोग तथा अपने परमाणु प्रयत्नों के लिए कौशल, साज सामान और तकनीक के मामले में आत्मनिर्भर बनने के जो प्रयास करता रहा है, आज वह अपने उस उद्देश्य में कामयाब है। इसके साथ ही वह परिवर्तित सुरक्षा सन्दर्भ में आणविक अस्त्रों का निर्माण करने में भी सक्षम है। 1998 के पोकरण विस्फोटों के बाद यह सिद्ध हो गया है कि भारत में परमाणु उर्जा के विकास की प्रबल सम्भावनाये हैं जिसका प्रयोग वह शांतिपूर्ण उद्देश्यों तथा परमाणु हथियारों के निर्माण में कर सकता है।

(5) परमाणु निःशस्त्रीकरण व परमाणु अप्रसार की नीति (Policy of Nuclear Disarmament and Nuclear Non-Proliferation) :- परमाणु निःशस्त्रीकरण की बात करने वाला प्रथम देश भारत ही है। 1954 मे भारत ने 'यथास्थिति वाले समझौते' (Stand still Agreement) के माध्यम से विश्व का ध्यान परमाणु निःशस्त्रीकरण की तरफ आकर्षित किया। भारत ने 1988 में संयुक्त राष्ट्र के तीसरे निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में 2010 तक विश्व को परमाणु मुक्त बनाने पर भी जोर दिया। भारत ने परमाणु अप्रसार से सम्बन्धित 1963 की 'आंशिक परीक्षण निषेध सन्धि' पर हस्ताक्षर किए। यह सन्धि परमाणु परीक्षणों के विरुद्ध प्रथम महत्वपूर्ण कदम थी। इस सन्धि को भारत ने इसलिए स्वीकार किया कि यह सन्धि भू-गर्भ परीक्षणों को छोड़कर बाह्य आकाश, समुद्र तथा वायुमण्डल में अणु परीक्षण करने पर रोक लगाती थी। भू-गर्भ परीक्षण के बारे में भी इस सन्धि में यह प्रावधान किया गया कि कोई भी देश ऐसा परीक्षण नहीं करेगा जिसमें रेडियोधर्मिता का प्रभाव किसी अन्य देश पर पड़ता हो। यह सन्धि पर्यावरण को परमाणु विस्फोटों से बचाने वाली थी। इसका अन्तिम ध्येय पूर्ण निःशस्त्रीकरण था। इस सन्धि को "पर्यावरण की सुरक्षा के लिए किया गया प्रथम विश्वव्यापी समझौता" कहा गया। परन्तु विश्व में परमाणु शक्ति के प्रसार की बढ़ती हुई दौड़ ने पर्यावरण व विश्वशांति के लक्ष्य को खतरा उत्पन्न कर दिया। 1963 की सन्धि का सरेआम उल्लंघन होने लगा। अब फिर विश्व जनमत ने परमाणु प्रसार के निषेध की मांग उठाई। अमेरिका तथा

सोवियत संघ ने 1968 में परमाणु प्रसार को रोकने के लिए एक सन्धि पर हस्ताक्षर किए जिसे 'परकाणु अप्रसार सन्धि' (NPT) के नाम से जाना जाता है। भारत ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किये, क्योंकि यह सन्धि परमाणु-अस्त्र विहिन राष्ट्रों को तो परमाणु अस्त्रों का निर्माण करने से रोकती थी, परन्तु परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों को अस्त्रों को नष्ट करने के लिए कुछ नहीं कहती थी। इस सन्धि को निःशस्त्रीकरण से सीधा नहीं जोड़ा गया था। यह सन्धि गैर-परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों को ही परमाणु अप्रसार के लिए बाध्य करती थी और उन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा की कोई गारन्टी भी नहीं देती थी। यह सन्धि अन्तर्राष्ट्रीय यथास्थिति कायम रखकर अन्य देशों को परमाणु शक्ति सम्पन्न बनने से रोकती थी। इसलिए इसके भेदभावपूर्ण स्वरूप पर भारत ने आपत्ति जताई और इस पर कभी हस्ताक्षर नहीं किये। भारत राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ कभी समझौता नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने 1993 की CTBT सन्धि पर भी हस्ताक्षर नहीं किए।

भारत ने 1978 में संयुक्त राष्ट्र निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में घोषणा की कि हम परमाणु अस्त्रों का निर्माण नहीं करेंगे और न ही इन्हें कहीं से प्राप्त करेंगे। उसके बाद 1982 में प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने भी परमाणु अस्त्रों पर रोक लगाने के बारे में अपना 5 सूत्री कार्यक्रम पेश किया। इस अधिवेशन के नाम अपने सन्देश में भारत ने कहा कि सभी परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों को विश्व में परमाणु युद्ध के खतरे से मुक्त करने का प्रयास करना चाहिए। उसके बाद 19 अक्टूबर, 1987 को भारत के प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने संयुक्त राष्ट्र को आह्वान किया कि सभी आणविक हथियार समाप्त किए जाने चाहिए ताकि विश्व में पर्यावरण का संतुलन बनाया रखा जा सके। उसके बाद 1 जून, 1988 को भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने ही एक ऐसी योजना प्रस्तुत की जिसमें 2010 तक विश्व को आणविक अस्त्रों से मुक्त करने की व्यवस्था थी। इसी योजना पर चलते हुए 1991 में अमेरिका तथा सोवियत संघ ने स्टार्ट-I सन्धि ा तथा 1993 में स्टार्ट-II सन्धि पर हस्ताक्षर करके अपने आणविक अस्त्रों में कटौती की बात स्वीकार की। परन्तु भारत ने 1993 की CTBT सन्धि जो परमाणु अप्रसार से सम्बन्धित थी, पर हस्ताक्षर नहीं किये। भारत का मानना था कि यह सन्धि परमाणु तकनीक की दहलीज पर खड़े देशों के विरुद्ध है तथा प्रमुख रूप से भारत के परमाणु ज्ञान को सीमित या समाप्त करने की साजिश रचती है। यह सार्वभौमिक भी नहीं है, क्योंकि यह सभी प्रकार के परीक्षाणों को निषेध नहीं करती और साथ में यह परमाणु शक्ति सम्पन्न तथा गैर-परमाणु राष्ट्रों की सुरक्षा की गारन्टी भी नहीं देती तथा जबरदस्ती राष्ट्रों पर थोपने का प्रयास भी करती है जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून व परम्पराओं के विरुद्ध है। अमेरिका ने भारत पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगाकर तथा भारत को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता की मांग अस्वीकृत करके इसका दण्ड दे दिया है। परन्तु अनेक दबावों के बावजूद भी भारत ने आज तक इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं।

इससे स्पष्ट है कि भारत की परमाणु नीति निःशस्त्रीकरण व परमाणु अप्रसार के ऐसे किसी भी प्रयास का विरोध करती रही है जो परमाणु निःशस्त्रीकरण व अप्रसार के सार्वभौमिक कार्यक्रम से सम्बन्धित नहीं है। इसी कारण उसने NPT तथा CTBT पर हस्ताक्षर नहीं किए। भारत का हमेशा ही यह प्रयास रहा है कि राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ कोई समझौता न किया जाए चाहे इसके लिए उसे आर्थिक प्रतिबन्ध सहने पड़े या स्थायी सदस्यता से वंचित रहना पड़े। भारत ने हमेशा ही सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण व सार्वभौतिक निःशस्त्रीरकण कार्यक्रमों का भरपूर स्वागत किया है। 1997 में 'रासायनिक शास्त्रास्त्र समझौते' का भारत द्वारा अनुमोदन करना इस बात का सबूत है कि भारत की आणविक नीति हमेशा ही न्यायपूर्ण परमाणु अप्रसार व निःशस्त्रीकरण की समर्थक रही है।

परमाणु निःस्त्रीकरण तथा परमाणु अप्रसार सम्बन्धी भारत की आणविक नीति की प्रमुख बातें -

भारत ने अपनी परमाणु नीति में परमाणु अप्रसार तथा निःशस्त्रीरकण के लिए जो स्थान दिया है और इस दिशा में जो कार्य किया है उससे भारत की आणविक नीति के बारे में निम्नलिखित बातों का ज्ञान होता है :-

(1) भारत सम्पूर्ण विश्व में निःशस्त्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है।

(2) भारत समान व न्यायपूर्ण निःशस्त्रीकरण की नीति का समर्थन करता है।

(3) भारत विश्व में बढ़ते हुए आणविक खतरे को सभी स्तरों पर समाप्त करके राष्ट्रों के बीच पारस्परिक सहयोग व विश्वास बढ़ाना चाहता है।

(4) भारत सभी आणविक शक्तियों को निःशस्त्रीकरण के दायरे में लाकर सार्वभौमिक निःशस्त्रीकरण का लक्ष्य प्राप्त करने का इच्छुक है।

(5) भारत बढ़ती शस्त्र दौड़ पर नियन्त्रण करके मानव जाति की सुरक्षा चाहता है।

(6) भारत परमाणु अप्रसार सन्धि को भी सभी राष्ट्रों पर समान रूप से लागू करवाना चाहता है।

(7) भारत परमाणु प्रसार तकनीकी पर भी प्रतिबन्ध लगाना चाहता है और इस कार्य को चरणबद्ध तरीके से करने का इच्छुक है।

(8) भारत विश्व में समान सुरक्षा व्यवस्था लागू करना चाहता है।

(9) भारत विश्व में सांझा परमाणु सिद्धान्त विकसित करना चाहता है।

(6) परमाणु शक्ति तथा अन्तरिक्ष एवं प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम का विकास (Development of Nuclear Power and Space-Ballistic Missiles) :- भारत ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत बनाने के लिए NPT तथा CTBT पर कभी हस्ताक्षर नहीं किए। परमाणु शक्तियों द्वारा परमाणु अप्रसार पर भेदभाव रुख अपनाए जाने से भारत को जब अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा का ध्यान आया तो उसने प्रक्षेपास्त्रों के माध्यम से ही अपनी सुरक्षा पर जोर दिया। इस सन्दर्भ में उसने अन्तरिक्ष क्षेत्र में विकास तथा प्रक्षेपास्त्रों के निर्माण पर विशेष जोर दिया। भारत ने 1962 में भारतीय अन्तरिक्ष शोध समिति की स्थापना की जिसे 1972 में स्वतन्त्र विभाग बना दिया। उसने 1965 में अन्तरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र थुम्बा में स्थापित किया। 1967 में अहमदाबाद में उपग्रह दूर-संचार भू-केन्द्र तथा 1969 में भारतीय अन्तरिक्ष संगठन (ISRO) की स्थापना की। भारत के अन्तरिक्ष कार्यक्रम के दो प्रमुख उद्देश्य हैं- (i) आधुनिकतम तकनीकी ज्ञान प्राप्त करना तथा (ii) राष्ट्र के आर्थिक विकास में तकनीकी ज्ञान के प्रयोग की संभावनाएं। इसी सन्दर्भ में भारत ने राकेट तकनीक के माध्यम से उपग्रह भेजने की तकनीक में सफलता प्रापत की है। इसके लिए भारत ने राकेट छोड़ने, दूरसंचार उपग्रह, दूस संवेदनशील उपग्रह तथा अन्य अन्तरिक्ष यान भेजने व निर्माण करने की कई महत्वपूर्ण योजनाओं पर कार्य किया है। 1992 में भारत ने 1000 किलोग्राम वजन ले जाने वाले ध्रुवीय उपग्रह छोड़ने वाले यान को छोड़ने में सफलता प्राप्त की तथा 1996 में 2500 किलोग्राम की क्षमता वाले भूमि के इर्द-गिर्द घूमने वाला उपग्रह छोड़ने वाला यान छोड़ने का कार्य सफलतापूर्वक किया। इसके अतिरिक्त भारत ने सामरिक द ष्टि से महत्वपूर्ण मध्यम दूरी प्रक्षेपास्त्र तथा अन्ततः महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र क्षमता प्रणाली को विकसित कर लिया है।

भारत द्वारा प्रक्षेपास्त्रों के विकास ने भारत की परमाणु नीति को नया आयाम दिया है। इसने

भारत की सुरक्षा व्यवस्था को सबल आधार प्रदान करके भारत को परमाणु शक्तियों की पंक्ति में खड़ा कर दिया है। भारत ने जमीन-से-हमीन पर मार करने वाला प्रक्षेपास्त्र 'प थ्वी' जिसकी मारक क्षमता 250 किलोमीटर है, विकसित कर लिया है। इसके अतिरिक्त 10 किलोमीटर की मार (जमीन-से-हवा में) करने वाला त्रिशूल, टैंक भेदी प्रक्षेपास्त्र 'नाग', जमीन-से-हवा में मार करने वाला 'आकाश' (25 किलोमीटर मारक क्षमता), जमीन-से-जमीन पर मार करने वाला 'अग्नि' तथा हवा-से-हवा में मार करने वाला 'अस्त्र' प्रक्षेपास्त्र बना लिया है। इस द ष्टि से भारत प्रक्षेपास्त्रों के विकास करने वाले देशों को अग्रिम पंक्ति में आ गया है। इसके अतिरिक्त भारत स्वदेशी तकनीक पर आधारित 'अग्नि' प्रक्षेपास्त्रों में सुधार भी कर चुका है। भारत द्वारा प्रक्षेपास्त्रों के निर्माण का निर्णय लेने के बाद ही अमेरिका की धड़कन तेज हो गई है। इसलिए उसने भारत राजनयिक दबावों के द्वारा 'अग्नि' से आगे परीक्षण न करने का दबाव डाला और भारत को आधुनिकतम तकनीकों के निर्यात पर प्रतिबन्ध भी लगा दिया। उसने रूस को भी भारत के साथ हुए क्रायोजनिक ईंजन आपूर्ति के समझौते को तोड़ने पर विवश किया। परन्तु भारत ने राष्ट्रीय सुरक्षा के द ष्टिगत किसी बाहरी दबाव को नहीं माना और अपनी निरोधक क्षमता में व द्धि करता रहा। उसने 29 अक्तूबर, 2003 को सुपसोनिक क्रुज प्रक्षेपास्त्र ब्रह्मोस का परीक्षण किया तथा आगे चलकर अग्नि-I का भी परीक्षण किया। उसने रूस के साथ मिलकर एजेटी प्रक्षेपास्त्र बनाने का भी निर्णय लिया है। भारत का इस बारे में द ष्टिकोण बड़ा ही स्पष्ट रहा है कि पाकिस्तान तथा चीन द्वारा प्रक्षेपास्त्रों के विकास से अपनी राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा व अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के लिए उसका अन्तरिक्ष कार्यक्रम सर्वथा उचित था। वास्तव में भारत द्वारा बैलिस्टिक मिसाइलें (प्रक्षेपास्त्र) बनाने के पीछे परमाणु निरोधक क्षमता तथा भारत के आर्थिक विकास में तकनीकी ज्ञान की भूमिका का लक्ष्य ही नजर आता है।

(7) **शीत युद्ध के अन्त के बाद भारत की आणविक नीति (India's Nuclear {Policy after the End of the Cold War)** :- शीत युद्ध के अन्त के बाद भारत की परमाणु नीति में महत्वपूर्ण बदलाव आया। अब तक भारत अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के मामले में सोवियत संघ पर ही निर्भर था। अमेरिका का एकध्रुवीय शक्ति के रूप में उभरना भारत के लिए चिन्ता का विषय था। अब अमेरिका ने भारत पर परमाणु कार्यक्रम बन्द करने के लिए दबाव डालना शुरु कर दिया। परन्तु भारत परमाणु शक्ति के रूप में उभरने का प्रयास कर रहा था। अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दे को ध्यान में रखते हुए भारत के प्रधानमन्त्री पी०वी० नरसिम्हाराव ने स्पष्ट किया कि भारत परमाणु बम बनाने का विकल्प उस समय तक खुला रखेगा जब तक सभी राष्ट्रों द्वारा इस बारे में कोई समझौता नहीं हो जाता। भारत ने यह भी स्पष्ट किया कि वह किसी धमकी के आगे नहीं झुकेगा और अपना परमाणु कार्यक्रम जारी रखेगा। इसी कारण भारत ने NPT तथा CTBT पर भी हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। वस्तुतः इस दौरान भारत की आणविक नीति में परमाणु बम्ब बनाने का विकल्प खुला रखा गया, इसमें परमाणु कार्यक्रम को शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए उचित स्थान दिया गया, भारत ने अपनी सुरक्षा व्यवस्था के लिये परमाणु परीक्षण आवश्यक माना, भारत की आणविक नीति स्थायी नीति के रूप में बनी रही तथा महाशक्तियो ने आणविक मामलों में भारत के साथ भेदभावपूर्ण रवैया अपनाया।

1995 में भारत को अपने पड़ौसी देशों चीन व पाकिस्तान की तरफ से खतरा महसूस होने लगा। भारत पर CTBT पर हस्ताक्षर करने का दबाव भी अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय डालने लगा। इस हालात में भारत ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में मई 1998 में परमाणु परीक्षण करने ही पड़े। 11 व 13 मई 1998 को भारत द्वारा क्रमशः तीन व दो परमाणु परीक्षण करने से भारत परमाणु शस्त्र सम्पन्न देशों की पंक्ति में खड़ा हो गया। अब भारत परमाणु बम्ब बनाने में सक्षम था। इस समय भारत इस स्थिति में था कि वह अपने शत्रु के सामरिक तथा गैर-सामरिक दोनों

तरह के ठिकानों को आसानी से नष्ट कर सकता था। इसके बाद भारत के परमाणु विकल्प को खुला रखने के विचार की कोई जरूरत नहीं रह गई। इन परीक्षणों ने भारत को परमाणु अस्त्र बनाने के साथ-साथ तकनीकी क्षमता भी प्रदान की गई। अब भारत किसी भी निःशस्त्रीकरण या शस्त्र नियंत्रण कार्यक्रम को प्रभावित करने की स्थिति में था। यद्यपि अमेरिका तथा उसके पिछलग्गु देशों ने भारत के द्वारा किए गए विस्फोटों की निन्दा की। परन्तु इसका भारत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इन विस्फोटों की सफलता ने भारत को परमाणु निरोधक शक्ति वाले देश के रूप में प्रतिष्ठित कर ही दिया।

1998 में पोकरण विस्फोटों के बाद भारत ने अपना परमाणु सिद्धान्त प्रस्तुत किया। भारत ने इस सिद्धान्त में स्पष्ट किया कि भारत परमाणु शस्त्रों का प्रयोग करने में पहल नहीं करेगा, वह CTBT पर भी संशोधित रूप में हस्ताक्षर करने को तैयार रहेगा, वह सार्वभौमिक निःशस्त्रीकरण का समर्थन करेगा तथा स्वेच्छिक परमाणु परीक्षण न करने के प्रति वचनबद्ध रहेगा। भारत ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रमुख मानते हुए इसी वर्ष (2004) पाकिस्तान के साथ परमाणु मुद्दे पर बातचीत की है और हॉटलाइन समझौते को भी जारी रखने पर सहमति जताई है। इनसे स्पष्ट हो जाता है कि भारत आज भी परमाणु शस्त्रों के संयमित विकास एवं इनके शांतिपूर्ण, राजनयिक व राजनैतिक उपयोग के माध्यम से निःशस्त्रीकरण, शस्त्र नियन्त्रण एवं परमाणु अप्रसार का प्रबल पक्षधर है। भारत के परमाणु सिद्धान्त में यह भी लिखा गया है कि भारत सीमाओं पर परमाणु आज तैनात नहीं करेगा तथा अपनी परमाणु क्षमता का प्रयोग परम्परागत हथियारों वाले देशों के विरुद्ध नहीं करेगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत ने यह शक्ति अपना वर्चस्व बढ़ाने, दूसरे राष्ट्रों को धमकाने या उनके मामलों में हस्तक्षेप करने तथा परमाणु शस्त्रों के प्रसार को बढ़ाने के लिए नहीं प्राप्त की है।

भारत की परमाणु नीति का मूल्यांकन

(Evaluation of India's Nuclear Policy)

भारत की परमाणु नीति का मूल्यांकन करते समय यह बात उभरती है कि भारत प्रारम्भ से ही परमाणु शक्ति का प्रयोग शांतिपूर्ण कार्यों के लिए अर्थात् अपनी जनता के जीवन स्तर को सुधारने व आर्थिक प्रगति के लिए करता रहा है। भारत ने हमेशा ही विश्व मानवता की भलाई के लिए परमाणु अप्रसार तथा निःशस्त्रीकरण के समान व न्यायपूर्ण कदमों का स्वागत किया है। भारत ने परमाणु अप्रसार व निःशस्त्रीकरण के भेदभावपूर्ण प्रयासों का हमेशा विरोध किया है। NPT तथा CTBT पर भारत द्वारा हस्ताक्षर न करने का प्रमुख कारण इनका भेदभावपूर्ण होना ही था। भारत ने विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को तकनीकी हस्तांतरण पर लगे प्रतिबन्धों का हमेशा विरोध किया है। भारत ने राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ कभी समझौता न करके स्वतन्त्र परमाणु नीति अपनाई और हमेशा अपना परमाणु विकल्प भी खुला रखा। 1974 कें भारत द्वारा किया गया पोकरण विस्फोट इस बात का सबूत है कि भारत परमाणु शक्ति का प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए करना चाहता है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर यह इसका राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भी प्रयोग कर सकता है। 1998 में किएगए परमाणु विस्फोटों ने भारत को विश्व की महान शक्ति बना दिया है। अब भारत परमाणु निरोधक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। आज भारत राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए परमाणु बम्ब बनाने में भी सक्षम है। इसी बात से भारत की जनता अपनी आणविक नीति के प्रति पूर्ण आश्वस्त है कि 1962 की स्थिति अब भारत को नहीं देखनी पड़ेगी। 1998 में परमाणु-सिद्धान्त के विकास ने भारत की आणविक नीति के माध्यम से विदेश नीति को भी मजबूत बनाया है। यद्यपि आज भी भारत की आणविक नीति के बारे में कुछ भ्रान्तियां विद्यमान हैं, जैसे - भारत द्वारा बार-बार परमाणु मुक्त क्षेत्रों की स्थापना का विरोध तथा हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र घोषित करवाने

के प्रयास आपस में विरोधाभासी हैं। भारत आज भी इस असमंजस्य की स्थिति में है कि वह परमाणु बम्ब बनाए या न बनाए। भारत बार-बार परमाणु विकल्प खुला रखने की बात कह रहा है, लेकिन इस बात का खुलासा करने में असमर्थ है कि परमाणु विकल्प का प्रयोग कैसे किया जाएगा। इस द ष्टि से भारत की परमाणु नीति के सैद्धान्तिक और व्यवहारिक पक्ष में अन्तर द ष्टिगोचर होता है। इसलिए आज समय की मांग है कि भारत को अपनी परमाणु नीति को सुस्पष्ट बनाना होगा। भारत को अपनी परमाणु नीति के दो महत्वपूर्ण पहलुओं - शांतिपूर्ण उद्देश्यों हेतु तकनीक का प्रयोग तथा शस्त्र निर्माण का विरोध - के प्रति अपनी वचनबद्धता दोहरानी होगी। इसके साथ ही अपने परमाणु विकल्प के प्रयोग की स्थिति भी स्पष्ट करनी होगी ताकि भारत की परमाणु नीति व परमाणु सिद्धान्त में सुस्पष्टता आ सके। इस सन्दर्भ में उपयुक्त परमाणु नीति के लिए हमें सी० राजामोहन द्वारा सुझाए गए दस निर्देशों का पालन करना होगा :-

(1) भारत को परमाणु कार्यक्रम पर अपना नरम रवैया अपनाना होगा।

(2) परमाणु शस्त्रों पर प्रतिबन्धों का ढांचा तैयार करना होगा।

(3) निःशस्त्रीकरण से शस्त्र नियन्त्रण की तरफ जाना होगा।

(4) परमाणु शक्ति सम्पन्न पड़ौसी देशों को युद्ध न करने हेतु तैयार करना होगा।

(5) अपने पड़ोसी राष्ट्रों में विश्वास की भावना पैदा करनी होगी तथा उनका विश्वास जीतना पड़ेगा।

(6) भारत को चीन के साथ मित्रता प्रगाढ़ करनी पड़ेगी।

(7) भारत को किसी अज्ञात भय से बचना होगा।

(8) परमाणु शस्त्रों के राजनैतिक खेल को बन्द करना होगा।

(9) परमाणु शस्त्रों से सम्बन्धित विरोधी विचारों को स्वतन्त्रता देनी होगी।

(10) भारत को परमाणु क्रान्ति से परे भी देखना होगा।

इस तरह यदि भारत उपरोक्त निर्देशों का पालन करते हुए अपने पड़ौसी देशों का विश्वास जीत सके और चीन के साथ उसके सम्बन्ध मधुर व विश्ववासपूर्ण बन जाएं तो यह भारत की परमाणु नीति के लिए शुभ संकेत होगा। भारत को अपनी परमाणु नीति में स्पष्टता लाते हुए विश्व शान्ति हेतु प्रयास करने होंगे। इसी में भारत तथा तीसरी दुनिया के देशों का हित निहित है। यदि भारत को भविष्य में अपनी परमाणु नीति को राष्ट्रों द्वारा गलत आकलन व भ्रान्तियों से बचाना है तो यह बिल्कुल साफ रूप से राजनयिक माध्यमों के द्वारा संकेत देने होंगे कि भारत आज भी परमाणु उर्जा का प्रयोग शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए करने तथा सम्पूर्ण परमाणु निःशस्त्रीकरण एवं परमाणु परीक्षण निषेध का पक्षधर है। वर्तमान सन्दर्भ में भारत की परमाणु नीति का संतोषजनक पहलु इस बात में दिखाई देने लगा है कि भारत, चीन तथा पाकिस्तान के साथ मिलकर सांझा परमाणु सिद्धान्त को विकसित करना चाहता है, परन्तु चीन द्वारा इस मुद्दे पर चुप्पी साधे रहना इसमें बाधा उत्पन्न करता है। इसलिए इस दिशा में भी सकारात्मक प्रयास करने जरूरी हैं।

अध्याय-9

भारत का सुरक्षा परिवेश और विदेश नीति

(India's Security Environment and and Foreign Policy)

किसी भी देश की विदेश नीति का निर्धारण करते समय, नीति निर्धारकों को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि वे ऐसी नीति का निर्माण करें जो देश की सुरक्षा तथा अर्थिक विकास का मार्ग तैयार करने में सफलता की तरफ अग्रसर हो। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। भारत की विदेश नीति का निर्धारण राष्ट्रीय सुरक्षा के आन्तरिक व बाहरी परिवेश के सन्दर्भ में ही किया गया है। राष्ट्रीय सुरक्षा नीति के रूप में भारत की विदेश नीति के प्रमुख ध्येय सीमाओं की सुरक्षा, भौगोलिक अखण्डता व सम्प्रभुता की सुरक्षा, जनता के जीवन व सम्पति की सुरक्षा व आर्थिक विकास एवं प्रगति हैं। भारत की सुरक्षा नीति घरेलु, क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश से प्रभावित होती है क्योंकि कई बार देश की सुरक्षा व्यवस्था को कई तरह से संकट उत्पन्न हो जाता है। यह खतरा देश की सीमाओं के अन्दर रहने वाली विघटनकारी ताकतों से भी हो सकता है और सीमाओं से बाहर विदेशों द्वारा प्रोत्साहित आतंकवाद या प्रत्यक्ष आक्रमण से भी। सुरक्षा परिवेश के सन्दर्भ में भारत की विदेश नीति सुरक्षा नीति को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

(I) घरेलु परिवेश व भारत की सुरक्षा नीति

(Domestic Environment and India's Security Policy)

किसी भी देश की राष्ट्रीय सीमाओं के अन्दर घटने वाली घटनाएं भी राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करने में सक्षम होती हैं। भारत को बार-बार उठने वाले अलगाववादी आन्दोलन व गतिविधियां ने विदेशी सहायता प्राप्त करके देश की एकता व अखण्डता को चुनौती दी है। जम्मू-कश्मीर व पंजाब में लम्बे समय तक जारी रहने वाली आतंकवादी गतिविधियां पाकिस्तान द्वारा ही समर्थित रही हैं। पाकिस्तान आज भी कश्मीर में प्रशिक्षित आतंकवादी भेजकर व उन्हें आर्थिक मदद देकर प्रोकसी युद्ध को जन्म दे रहा है। इसी तरह चीन, पाकिस्तान, भूटान, बर्मा व बंगलादेश की सीमाओं से लगते राज्यों में बार-बार स्वायत्तता से उठने वाली मांगें व आन्दोलन के भी विदेशों से तार जुड़े रहे हैं। इनमें नागा आन्दोलन व मिजो आन्दोलन प्रमुख हैं। कई बार बाहरी देशों या पड़ौसी देशों की तरफ से शरणार्थी के रूप में आने वाले लोग भी विघटनकारी प्रक्रिया को जन्म दे देते हैं। 1971 में बंगलादेश से भारत में शरणार्थी के रूप में आए लोगों ने राष्ट्रीय सुरक्षा को गम्भीर खतरा उत्पन्न किया था। इसी तरह तमिल शरणार्थी समस्या को लेकर भी हुआ। कई बार विघटनकारी गुटों में आपसी तालमेल भी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार का तालमेल पंजाब व कश्मीर के आतंकवादी गुटों में देखने को मिला। इस प्रकार का तालमेल राष्ट्रीय

सुरक्षा की द ष्टि से पड़ौसी देशों के साथ सम्बन्धों को भी प्रभावित कर देता है। इसी तरह देश मे कमजोर केन्द्रीय सरकारें व केन्द्र तथा राज्य सरकारों में तालमेल क अभाव भी राष्ट्रीय सुरक्षा व्यवस्था को प्रभावित करता है। ऐसा ही देश की कमजोर आर्थिक स्थिति व सामाजिक समरसता अभाव के कारण भी होता है। 1947 से 1974 तक भारत की सुरक्षा नीति के कमजोर रहने के पीछे भारतीय अर्थ-व्यवस्था का पिछड़ापन व आत्मनिर्भरता का अभाव ही था। इस तरह देश की घरेलु परिस्थितियां भी सुरक्षा नीति व विदेश नीति को प्रभावित करती हैं। पिछली सदी के अन्त में देश की मजबूत आर्थिक व्यवस्था व राजनीतिक सिरिता के कारण भारत की विदेश नीति भी काफी मजबूत हुई है। अब भारत सरकार रक्षा नीति को व्यावहारिक रूप देने में पर्याप्त धन की व्यवस्था करने में सक्षम है। आर्थिक उदारीकरण के दौर में भी भारत में विदेशी पूंजी निवेश बढ़ने से ही भारत अपनी सुद ढ़ आर्थिक व सामरिक विदेश नीति बनाने में सफल हुआ है।

(II) क्षेत्रीय परिवेश व भारत की सुरक्षा नीति

(Regional Environment and India's Security Policy)

भारत की सुरक्षा नीति पर क्षेत्रीय परिवेश अर्थात् पास-पड़ोस के देशों द्वारा उत्पन्न परिवेश का भी प्रभाव पड़ता है। कुछ विद्वानों का तो यहां तक कहना है कि भारत की सुरक्षा नीति क्षेत्रीय परिवेश के आधार पर ही निर्धारित की जाती है। क्षेत्रीय परिवेश में चीन, पाकिस्तान, बर्मा, नेपाल, भूटान, बंगलादेश, श्रीलंका, ईरान, अफगानिस्तान, मध्य एशियाई गणराज्य, खाड़ी देश, इन्डोनेशिया, मलेशिया, थाईलैण्ड, सिंगापुर, हिन्द महासागर का क्षेत्र शामिल है। इनमें से चीन, पाकिस्तान तथा हिन्द महासागार के घटनाक्रम का भारत की सुरक्षा व्यवस्था पर सीधा असर पड़ता है। 1962 के चीनी आक्रमण, चीन का परमाणु क्षेत्र में भारत से शक्तिशाली होना व चीन द्वारा पाकिस्तान को परमाणु कार्यक्रमों में सहयोग देना भारत की सुरक्षा व्यवस्था के लिए एक गम्भीर चुनौती रहा है।

यद्यपि भारत चीन व पाकिस्तान के साथ प्रारम्भ से ही सम्बन्ध सुधारने के प्रयास करता रहा है, लेकिन फिर भी 1962 में चीन ने तथा 1965, 1971 तथा 1999 में पाकिस्तान ने भारत की सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती दी है। हिन्दी चीनी-भाई भाई की बात करने वाला भारत भी 1962 में चीनी आक्रण को रोकने में नाकाम रहा। चीन द्वारा तिब्बत व पाक अधिकृत कश्मीर के कुछ भागों में सड़क मार्गों के विकास ने भारत को सामरिक द ष्टि से कमजोर किया है। इस युद्ध में जीता हुआ हजारों मील क्षेत्र आज भी चीन के कब्जे में है। तिब्बत व सीमा-विवाद को लेकर दोनों देशों में चलने वाला लम्बा संघर्ष भारत की सुरक्षा के लिए सिरदर्द बना रहा है। भारत के कुछ पड़ोसियों का उसके प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार, चीन की भारत विरोधी नीति का ही एक हिस्सा रहा है। पिछली सदी के अन्त तक चीन की भूमिका भारत की शक्ति को सीमित करने वाली रही है। चीन ने बर्मा में सैनिक शासकों को समर्थन दिया और भारतीय लोकतन्त्र को चुनौती पेश की। चीन ने पाकिस्तान के साथ भी सन्धि करके उससे पाक-अधिकृत कश्मीर का कुछ हिस्सा प्राप्त किया और बेलेस्टिक प्रक्षेपास्त्र भी पाकिस्तान को दिये। 1996 में इस बात की भी सूचना मिली कि चीन एक प्रक्षेपास्त्र कारखाना स्थापित करने में पाकिस्तान को मदद दे रहा है। चीन की तरह पाकिस्तान भी भारत विरोधी नीति अपनाता रहा है। 1980 के दशक में पाक द्वारा पंजाब में आतंकवाद तथा उसके बाद 1990 के दशक में कश्मीर में फैलाया गया आतंकवाद इसी बात की ही पुष्टि करता है। 1987 में पाकिस्तान द्वारा परमाणु शक्ति हासिल करने के बाद भारत की सुरक्षा व्यवस्था को गम्भीर खतरा उत्पन्न हो गया है। 1990 के दशक में पाकिस्तान को चीन, फ्रांस, ब्रिटेन तथा अमेरिका से मिलने वाले प्रक्षेपास्त्रों के कारण यह स्थिति और अधिक गम्भीर हो गई है। पाकिस्तान द्वारा हाल ही में स्वदेशी 'हल्फ मिसाईल' का परीक्षण करने से भारत की सुरक्षा व्यवस्था को और अधिक खतरा पैदा हो गया है। प्रतिदिन सीमा पार से होने वाली घुसपैठ व आतंकवादी गतिविधियां इसे असुरक्षा की भावना से परिपूरित ही करती है। यद्यपि भारत ने शिमला व लाहौर समझौते के द्वारा दोनों

देशों के बीच मधुर सम्बन्धों में कई प्रयास किए हैं और हाल ही में भारत व पाकिस्तान के बीच विदेश सचिव स्तर की वार्ता में दोनों देशों के बीच शिमला समझौते 1972 (Simla Agreement 1972) के आधार पर सम्बन्धों को मधुर बनाने की बात स्वीकार की गई है। परन्तु यह तो समय ही बता सकता है कि भारत को पाकिस्तान से अपनी सुरक्षा को लेकर चिन्तित होना चाहिए या आश्वस्त। इसके विपरीत 1997 के बाद भारत-चीन सम्बन्धों में आए सुधार के कारण भारत को चीन से उतना खतरा नहीं रहा, जितना पाकिस्तान से। मई 2004 मे चीन द्वारा सिक्किम को भारत का अभिन्न अंग मान लिये जाने से भारत-चीन सम्बन्धों की खाई कम हो गई है। इसलिए अब भारत की सुरक्षा व्यवस्था को चीन की बजाय पाकिस्तान से ही अधिक खतरा रह गया है। परन्तु फिर भी हमें चीन के प्रति भी अपनी सुरक्षा व्यवस्था को लेकर आवश्यकता से अत्यधिक आशावान या किसी पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं रहना चाहिये जैसा 1962 से पहले रहे थे।

पाकिस्तान तथा चीन की तरह हिन्द महासागर का घटनाक्रम भी भारत की सुरक्षा के लिए गम्भीर चुनौती रहा है। 1960 के दशक में इस क्षेत्र में अमेरिका द्वारा डियागो गार्शिया द्वीप पर अपना परमाणु शक्ति से युक्त हवाई अड्डा स्थापित करने से भारत की चिन्ताएं बढ़ने लगी और उसके बाद सोवियत संघ, चीन, फ्रांस, जापान व आस्ट्रेलिया आदि देशों द्वारा भी इस क्षेत्र के सैन्यकरण से यह स्थिति अधिक गम्भीर हुई। भारत का अधिकतर व्यापार इसी क्षेत्र से होता है। इस क्षेत्र में भारत का जल क्षेत्र 12 समुद्री मील है। सामरिक द ष्टि से महत्वपूर्ण यह क्षेत्र सैन्यकरण के कारण भारत की सुरक्षा को गम्भीर चुनौती पैदा कर रहा है। 1992 में चीन द्वारा म्यांमार के बसीन नदी के मुहाने पर स्थित हियांगी द्वीप पर नौसैनिक अड्डे का निर्माण करने में म्यामांर की मदद करने तथा अकयाब, मदगुई व ग्रेट कोको टापू के अड्डों का आधुनिकीकरण करने में उसकी मदद करने से भारत की चिन्ताएं और अधिक बढ़ गई हैं। इनमें से ग्रेट कोको टापू का हवाई अड्डा तो केवलमात्र 30 समुद्रीमी है जो सामरिक द ष्टि से भारत की सुरक्षा के लिए खतरा हो सकता है।

इसके साथ-साथ मध्य एशिया का क्षेत्र व दक्षिण-पूर्व एशिया का क्षेत्र भी आर्थिक व सामरिक द ष्टि से भारत के लिए आकर्षण का केन्द रहा है। खाड़ी देशों का घटनाक्रम भी बार-बार भारत की सुरक्षा नीति पर प्रभाव डालता रहा है। इन देशों में प्रचूर मात्रा में मिलने वाले खनिज पदार्थ, तेल, गैस व अन्य पैट्रोलियम पदार्थ भारत के आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। इसी कारण भारत खाड़ी देशों के साथ अच्छे सम्बन्ध कायम रखने के प्रयास करता रहा है। वस्तुतः भारत की विदेश नीति इजराइल समर्थक होने के साथ-साथ अरब-समर्थक भी रही है। पाकिस्तान को छोड़कर अन्य किसी मुस्लिम राष्ट्र के साथ भारत के सम्बन्ध खराब नहीं हुए हैं। भारत के इन देशों के इस्लामिक बम्ब से हमेशा खतरा बना रहता है। यदि कभी इन देशों ने इस्लामिक कट्टरवाद का प्रयोग किया तो पाकिस्तान को इसका पूरा लाभ होगा और इससे भारत की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न होने में कोई गुंजाईश शेष नहीं रहेगी। इस दशक में ईराक तथा अफगानिस्तान के घटनाक्रम से भारत का चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। परन्त क्षेत्रीय परिवेश के सन्दर्भ में भारत की सुरक्षा नीति के बारे में सुखद पहलु यह है कि 'ASEAN' के मंच पर उभरता आर्थिक सहयोग व सुरक्षा व्यवस्था की बढ़ती विश्वसनीयता इस बात की द्योतक है कि दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से भारत की सुरक्षा व्यवस्था को कोई गम्भीर खतरा नहीं है।

(III) अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश व भारत की सुरक्षा नीति

(International Environment and India's Security Policy)

भारत की सुरक्षा व्यवस्था पर अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम का भी व्यापक प्रभाव पड़ा है। 1962 में चीनी आक्रमण तथा 1965, 1971 तथा 1999 में भारत-पाक युद्धों ने भी भारत की सुरक्षा नीति को प्रभावित किया है। 1965 में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा पाकिस्तान का समर्थन और 1971 के युद्ध में भी और अधिक समर्थन, भारत की सुरक्षा के लिए एक गम्भीर चुनौती थी। 1979 में अफगानिस्तान

में सोवियत हस्तक्षेप, अमेरिका द्वारा हिन्द महासागर के डियागो गार्शिया द्वीप पर परमाणु युक्त हवाई अड्डे का निर्माण करने व वियतनाम में अमेरिकी हस्तक्षेप से भी भारत की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हुआ था। इसके अतिरिक्त स्वेज नहर संकट, कांगो विवाद, कोरिया संकट तथा NATO, SEATO तथा CENTO आदि सैनिक गठबन्धनों ने भी भारत की सुरक्षा व्यवस्था के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में खतरा उत्पन्न किया। पाकिस्तान का संगठनों का सदस्य होने के कारण भारत को पाकिस्तान की तरफ से हमेशा ही राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर चिन्ता बनी रही है। आतंकवाद का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप भी वर्तमान समय में भारत की सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती दे रहा है। इसके साथ-साथ महाशक्तियों द्वारा परमाणु अप्रसार व परमाणु निःशस्त्रीकरण के बारे में अपनाए गए भेदभावपूर्ण द ष्टिकोण के कारण भी भारत की सुरक्षा व्यवस्था के सामने गम्भीर संकट आ गया है। अब भारत यह सोचने को मजबूर हो गया है कि वह अपनी परमाणु नीति व परमाणु अप्रसार कार्यक्रमों में तालमेल कैसे बिठाए। इसी कारण भारत ने आज तक NPT तथा CTBT (Nuclear Non-Proliferation Treaty and Comprehensive Test Ban Treaty) पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। 1991 के बाद शीतयुद्ध के अन्त व सोवियत संघ के विघटन ने भारत के सामने अपनी सुरक्षा व्यवस्था को लेकर जो चिन्ताएं खड़ी हुई थी, उनका समाधान तो भारत ने 1998 में परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनकर कर लिया, परन्तु बदले हुए अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में वह अपनी सुरक्षा को लेकर आज भी चिन्तित है। वस्तुतः भारत की सुरक्षा व्यवस्था को आज भी पाकिस्तान व चीन की मैत्री, पाक-अमेरिकी सैन्य गठबन्धन व हिन्द महासागर में बढ़ता सैन्य हस्तक्षेप के सन्दर्भ में खतरा दिखाई देता है। इसलिए आज भारत को अपनी सुरक्षा नीति को सुद ढ़ बनाने के लिए अमेरिका, पाकिस्तान व चीन सहित सभी राष्ट्रों से मधुर व सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों के विकास के लिए नई विदेश नीति अपनाने की आवश्यकता है और ऐसे ही प्रयास भारत कर रहा है।

भारत की सुरक्षा नीति का विकास

(Evolution of India's Security Policy)

अपनी स्वतन्त्रता के बाद भारत ने अपनी स्वतन्त्रता व सुरक्षा को सुनिश्चित व सुद ढ़ करने के लिए गुटनिरपेक्षता की नीति को ही अपनाया। इस दौरान भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति ही भारत की सुरक्षा की नीति थी। इस नीति को राष्ट्रीय सुरक्षा का सुरक्षा कवच माना गया। भारत न तो किसी ऐसे सैनिक गठबन्धन में शामिल होना चाहता था जिसका गठन शीतयुद्ध के सन्दर्भ में किया गया था, और न सामूहिक सुरक्षा की किसी व्यवस्था का सदस्य बनना चाहता था। स्वतन्त्रता के बाद भारत द्वारा इस नीति को अपनाने के पीछे मूल कारण यह था कि भारत न तो आर्थिक द ष्टि से ही महाशक्तियों की बराबरी कर सकता था और वह सैनिक द ष्टि से भी काफी कमजोर था। इसलिए भारत ने दोनों गुटों के साथ समान नीति अपनाई ताकि दोनों देशों से अधिक से अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त की जा सके। इसी नीति के तहत भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य भी बना रहा। इसका प्रमुख लाभ यह हुआ कि 1962 के चीनी आक्रमण के बाद भी भारत के पश्चिमी देशों से सम्बन्ध स्थापित करने के विकल्प खुले रहे। इस तरह 1962 से पहले भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति ही उसकी सुरक्षा नीति बनी रही। नेहरु जी ने इस नीति को अपनाते हुए कहा, "हमारे पास हथियार नहीं हैं इसलिए हमें गुटनिरपेक्षता की नीति ही अपनानी चाहिए।" नेहरु जी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति में ही भारत की सुरक्षा का स्वप्न देखते थे। इसलिए उन्होंने पंचशील सिद्धान्त का विकास करके शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना के आधार पर ही अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति को पोषित किया।

1962 तक भारत ने कभी भी युद्ध के सिद्धान्त या रक्षा के सिद्धान्त का विकास नहीं किया। इस दौरान नेहरु की विदेश नीति का प्रमुख उद्देश्य शान्ति को विकास द्वारा मानवता का कल्याण होने के कारण सैन्य विकल्प के विकास की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया और राष्ट्रीय सुरक्षा के

सन्दर्भ में सैन्य विशेषज्ञता का पूर्ण अभाव रहा। इसका प्रमुख कारण भारत के पास अपनी सुरक्षा हेतु सीमित विकल्पों का होना था। अपनी स्वतन्त्रता के बाद अपनी कमजोर आर्थिक शक्ति के कारण भारत के लिए सुरक्षा नीति का विकास करना पूर्णतया असम्भव था। यद्यपि इसी दौरान भारत के पाकिस्तान तथा चीन के साथ तनावपूर्ण सम्बन्धों का जन्म हो चुका था। शीत युद्ध के वातवारण ने भी भारत की सुरक्षा व्यवस्था को चुनौतियां पेश की, परन्तु फिर भी भारत ने अपनी कोई सुरक्षा नीति विकसित करने में असमर्थता ही दिखाई। इसकी बजाय भारत ने अपनी सुरक्षा को सुद ढ़ करने के लिए सैन्य विकास के स्थान पर पंचशील जैसे राजनैतिक तरीकों को ही महत्व दिया और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से ही अपने विवादों को शांतिपूण्र ढंग से हल करने को प्राथमिकता दी। भारत ने कश्मीर विवाद को संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से तथा तिब्बत व सीमा-विवाद को पंचशील सिद्धान्त के आधार पर ही हल करने का प्रयास किया। इस तरह नेहरु युग में राष्ट्रीय सुरक्षा पर कोई नीति विकसित नहीं ही गई।

1962 से पहले भारत की सुरक्षा नीति के कोई व्यावहारिक परिणाम नहीं निकले और चीन व पाकिस्तान ने भारत की सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती दी। नेहरु की गुटनिरपेक्षता की नीति के रूप में भारत की सुरक्षा व्यवस्था को उस समय करारा झटका लगा जब चीन ने 1962 में भारत पर आक्रमण कर दिया। इससे भारत की शांतिपूर्ण सहअस्तित्व पर आधारित विदेश नीति कोरी कल्पना साबित हुई। 1962 तक नेहरु द्वारा निर्धारित भारत की विदेश नीति की आलोचना करते हुए प्रो० ए०बी० शाह ने कहा है-"नेहरु की विदेश नीति अव्यवहारिक थी और नेहरु सुरक्षा के प्रति सबसे ज्यादा उदासीन थे।" इसके बाद भारत ने अपनी सुरक्षा नीति का विकास करने का मार्ग अपनाया जिसमें इन्दिरा गांधी का योगदान सर्वाधिक रहा। 1964 में चीन द्वारा परमाणु विस्फोट करने के बाद भारत की सुरक्षा व्यवस्था को उत्पन्न संकट के सन्दर्भ में इन्दिरा गांधी ने अपनी गुटनिरपेक्षता को यथार्थवादी बनाते हुए परमाणु परीक्षण का कार्यक्रम बनाया। इन्दिरा गांधी ने सीमाओं पर चौकसी बढ़ाई और सैन्य सेवाओं का आधुनिकीकरण किया। इन्दिरा गांधी ने सैन्य खर्च में व द्धि करके भारत को सुरक्षा के मामले में आत्मनिर्भर किया।

1962 के चीनी आक्रमण के बाद भारत की विदेश नीति में व्यापक बदलाव देखने को मिला। भारत ने नेहरु की विदेश नीति की पुनःसमीक्षा की और अपने पड़ोसी देशों, अमेरिका तथा रूस के साथ नए सिरे से सम्बन्ध स्थापना के प्रयास शुरु किए। नई सरकार ने नेहरु युग में अपनाई गई नीतियों को बदलकर भारत की सुरक्षा नीति के विकास के लिए सैन्य आत्मनिर्भरता के प्रयास शुरु किये और महाशक्तियों से मित्रता की। अब भारत ने अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति का नए सिरे से आकलन किया। 1965 में भारत पर पाकिस्तान द्वारा आक्रमण ने भारत को अपनी सैन्य शक्ति का विकास करने की नीति अपनाने को बाध्य कर दिया। चीन-पाक सन्धि के द ष्टिगत भारत द्वारा सैन्य नीति का विकास और अधिक जरूरी हो गया। अब भारत को चीन के साथ-साथ पाकिस्तान से भी खतरा था। इसलिए भारत ने सैन्य आत्मनिर्भरता के साथ-साथ भारत ने शक्तियों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के विकास की नीति अपनाई। उसने चीन के साथ भावी युद्ध की सम्भावनाओं के मध्येनजर अमेरिका तथा ब्रिटेन से भी मदद प्राप्त की और 1971 की स्थिति को देखते हुए उसने सोवियत संघ के साथ एक मैत्री व सहयोग की सन्धि भी की। इस दौरान भारत ने अपने राष्ट्रीय सुरक्षा के हित के द ष्टिगत परमाणु अप्रसार सन्धि (NPT) पर भी हस्ताक्षर नहीं किये।

भारत ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत बनाने के लिए महाशक्तियों के साथ सम्बन्ध कायम करने के साथ-साथ सैन्य नीति का विकास भी जारी रखा और अपनी सुरक्षा नीति को सुद ढ़

करने वाला प्रथम परमाणु विस्फोट 1974 में पोकरण (राजस्थान) नामक स्थान पर किया। परन्तु भारत ने परमाणु बम्ब बनाने की नीति न अपनाने की बात करके सामान्य परमाणु विकास करने का मार्ग अवश्य अवरुद्ध कर दिया। इसके विकल्प के तौर पर भारत ने परमाणु अप्रसार व परमाणु निःशस्त्रीकरण के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों को देखते हुए प्रक्षेपास्त्रों का विकास शुरु किया। 1980 के दशक में भारत ने अन्तरिक्ष तकनीकों का शान्तिपूर्ण उपयोग का मार्ग भी अपनाया। इस सन्दर्भ में भारत ने अग्नि, नाग, आकाश, त्रिशुल आदि प्रक्षेपास्त्रों का विकास करके अपनी सुरक्षा पंक्ति को सुद ढ़ किया। परन्तु 1980 के दशक मे ही पाकिस्तान द्वारा परमाणु नीति का विकास करने से भारत की सुरक्षा नीति को चुनौती अवश्य दी गई। इस दौरान चीन द्वारा अरुणाचल प्रदेश में घुसपैठ की गई और रांग चू घाटी में एक सैनिक अड्डा भी बना लिया। परन्तु भारत भी निरन्तर अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाता रहा और अपनी सुरक्षा नीति को सुद ढ़ करता रहा। 1989 में भारत के प्रधानमन्त्री ने मध्यम दूरी के अग्नि नामक बेलिस्टिक मिसाईल के सफल परीक्षण की प्रशंसा की और इसे भारत की सुरक्षा नीति के लिए मजबूत कदम बताया।

1991 में सोवियत संघ के विघटन से भारत की सुरक्षा व्यवस्था के क्षेत्र में असुरक्षा का वातावरण पैदा हो गया। इसलिए भारत ने अपनी सुरक्षा के हित को ध्यान में रखते हुए अमेरिका तथा पश्चिमी देशों के साथ सम्बन्ध जोड़े और आर्थिक उदारीकरण की नीति अपनाई ताकि पश्चिमी देशों से अधिक से अधिक आर्थिक व सैन्य मदद प्राप्त की जा सके। इसके साथ ही भारत ने अपना परमाणु कार्यक्रम व प्रक्षेपास्त्र तकनीक का विकास भी जारी रखा। उसने 1994 में 'अग्नि प्रक्षेपास्त्र परीक्षण कार्यक्रम' को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। दसवीं लोकसभा की रक्षा सम्बन्धी स्थायी समिति के अध्यक्ष इन्द्रजीत गुप्त ने कहा "निरोधक शक्ति के रूप में अपनी प्रक्षेपास्त्र क्षमता के विकास और सुधार करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प है ही नहीं।" इसी वर्ष रक्षा मंत्रालय ने भी इस बात की पुष्टि की कि विकसित हो जाने पर ये प्रक्षेपास्त्र विरोधी पक्ष के लिए निरोधक का कार्य करेंगे। 1996 में रक्षा मन्त्रालय ने फिर कहा कि "यद्यपि 'अग्नि' प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम पूरा हो गया है, परन्तु अग्नि प्रौद्योगिकी पर आधारित प्रक्षेपास्त्र व्यवस्था का विकास और उन्हें स्थापित करने का निर्णय उचित समय पर लिया जायेगा। ऐसा निर्णय लेते समय भारत के सम्मुख उत्पन्न खतरों और क्षेत्रीय एवं विश्वव्यापी सुरक्षा परिवेश को ध्यान में रखना होगा।" इसी दौरान भारत पर व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि [Comprehensive Test Ban Treaty (CTBT)] पर भी हस्ताक्षर करने का दबाव डाला जाता रहा। परन्तु भारत ने आज तक भी इस सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं।

1996 में क्षेत्रीय सुरक्षा की स्थिति पर विचार करके भारतीय प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के जनक डा०ए०पी०जे० कलाम ने कहा कि भारत दो परमाणु अस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों चीन व पाकिस्तान से घिरा हुआ है। उन देशों के पास परमाणु अस्त्र व प्रक्षेपास्त्र पर्याप्त मात्रा में हैं। किसी भी अन्य राष्ट्र की तरह भारत को रक्षा व्यवस्था में आत्मनिर्भर बनाने के लिए सैनिक प्रौद्योगिकी की जरूरत है। उन्होंने आगे कहा कि वर्तमान परमाणु अप्रसार सन्धि NPT तथा CTBT दोनों ही परमाणु सम्पन्न देशों के हितों की पोषक हैं और ये परमाणु शक्ति सम्पन्न तथा गैर परमाणु शक्ति वाले राष्ट्रों के बीच प्रौद्योगिकी की खाई बनाए रखने का प्रयास करती हैं। इस परिस्थिति में भारत के लिए यह आवश्यक है कि हमें निरोधक के रूप में बैलिस्टिक मिसाइलों को उत्पादित व स्थापित रखना होगा और अपने प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम को लागू रखना होगा ताकि हम अपनी सुरक्षा के खतरों का सामना कर सकें।

1997 में भारत द्वारा परमाणु अस्त्रों का उत्पादन न करने, परमाणु शक्ति का शांतिपूर्ण कार्यों के लिए विकास कार्यक्रम जारी रखने और अग्नि व प थ्वी प्रक्षेपास्त्रों को स्थापित करने के

रक्षा वैज्ञानिकों के आह्वान के बावजूद प्रधानमन्त्री इन्द्रकुमार गुजराल ने घोषणा की कि भारत प्रक्षेपास्त्रों तथा रासायनिक शास्त्रास्त्रों को तब तक स्थापित नहीं करेगा जब तक भारत की सुरक्षा के हित में ऐसा करना नितांत आवश्यक नहीं हो जायेगा। इसके साथ ही गुजराल ने भी नेहरु की तरह गुजराल सिद्धान्त के आधार पर ही अपने पड़ोसी देशों के प्रति विदेश नीति का संचालन किया और प्रक्षेपास्त्रों जैसे घातक शस्त्रास्त्रों को स्थापित करने की आलोचना की। परन्तु गुजराल ने भी CTBT पर हस्ताक्षर नहीं किए। उसके बाद 1998 में अटल बिहारी वाजपेयी ने अपनी सुरक्षा नीति को सुद ढ़ करने के लिए परमाणु नीति को व्यवहारिक रूप दिया। मई 1998 में भारत ने पांच परमाणु परीक्षण करके स्वयं को परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों की पंक्ति में खड़ा कर लिया। अब भारत राष्ट्रीय सुरक्षा के मामले में आत्मनिर्भर हो गया। अब भरत को चीन या पाकिस्तान से डरने की कोई आवश्यकता नहीं रही। इस समय भारत की सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती देने के लिए पाकिस्तान ने चीन से एम-1 व एम-11 प्रक्षेपास्त्र खरीदे तथा गौरी नामक प्रक्षेपास्त्र का परीक्षण भी किया। यद्यपि भारत ने भी बहमोस प्रक्षेपास्त्र का परीक्षण (29 अक्तूबर, 2003) करके उसका जवाब जरूर दे दिया। मई, 2004 में पाकिस्तान ने हल्फ नामक प्रक्षेपास्त्र का परीक्षण किया है जो भारत की सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती पेश करता है। इसके बाद भारत भी 3000 k.m. मारक क्षमता वाली अग्नि-3 प्रक्षेपास्त्र के निर्माण की योजना बना रहा है। वास्तव में भारत की सुरक्षा नीति अब यह मांग करती है कि पड़ोसी देशों की सुरक्षा प्रणाली का विश्लेषण करके ही उसका निर्माण किया जाये।

भारत की सुरक्षा नीति पर सी० उदय भास्कर ने कहा है कि जब भारत अपनी तकनीकी क्षमता को चीन के बराबर कर लेगा तो पाक स्वतः ही गौण हो जाएगा। इसी तरह मेजर जनरल बनर्जी भी यही कहते हैं कि भारत को अपनी मारक प्रक्षेपास्त्र तकनीक को सुधारना चाहिए क्योंकि पाकिस्तान के पास भी लम्बी दूरी पर मार करने वाले प्रक्षेपास्त्र हैं चाहे संख्या में वे कम ही हों। यद्यपि 1999 में कारगिल युद्ध में पाकिस्तान की करारी हार इस बात का प्रमाण देती है कि भारत की सुरक्षा पंक्ति काफी मजबूत है, लेकिन फिर भी उसे पाकिस्तान व चीन की सुरक्षा नीति व रक्षा प्रणाली का विश्लेषण करके ही अपनी नीति का निर्माण करना चाहिए। हालांकि आज भारत के पास रक्षा उत्पादन व अनुसंधान कार्य में प्रगति संतोषजनक है और भारत 2005 तक अति आधुनिकतम तकनीकी ज्ञान वाले अस्त्रों के विकास में भी आत्मनिर्भर बनने का लक्ष्य रखता है। नौसेना के पास भी नीलगिरी, तारागिरी, आई०एन०एस० शाली व आई०एन०एस० दिल्ली नामक पनडुब्बियां हैं और वर्तमान में विमानवाहक जहाज विराट है। हाल ही में उसने INS बेतवा आधुनिकतम निर्देशित प्रक्षेपास्त्रों से लैस युद्धपोत भारत नौसेना में शामिल कर लिया है। परन्तु भारत को आज और अधिक विमानवाहक जहाजों की जरूरत है तथा इसके लिए सैन्य खर्च में व द्धि करना आवश्यक हो गया है। इसके लिए भारत को अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत करना चाहिये।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता के बाद नेहरु जी ने कोई रक्षा नीति या रक्षा सिद्धान्त नहीं बनाया। उन्होंने उसके स्थान पर पंचशील सिद्धान्त के आधार पर ही अपने पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके अपनी सुरक्षा नीति का संचालन किया। वास्तव में गुटनिरपेक्षता की नीति ही भारत की सुरक्षा नीति के रूप में कार्य करती रही। परन्तु 1962 में चीनी आक्रमण के बाद भारत ने अपनी आदर्शवादी गुटनिरपेक्षता की नीति को यथार्थवादी रूप दिया और इसी सन्दर्भ में अपनी परमाणु नीति व सुरक्षा नीति का विकास किया गया तथा आगे चलकर 1974 में पोकरण परमाणु विस्फोट किया। इसके बाद भारत की सुरक्षा नीति को नया आयाम मिला और 1998 में फिर से परमाणु कार्यक्रम का विकास करके भारत ने स्वयं को परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों की पंक्ति में खड़ा कर लिया। इससे भारत की सुरक्षा नीति इतनी मजबूत हो गई कि वह पाकिस्तान तथा चीन की तरफ से मिलने वाली किसी भी चुनौती का सामना करने में समर्थ हुआ। परन्तु उधर

पाकिस्तान का परमाणु शक्ति के रूप में उभरना भारत की सुरक्षा नीति को चुनौती पेश करता है। पाकिस्तान को अमेरिका व चीन की तरफ से मिलने वाली सैन्य सहायता व तकनीक भारत की सुरक्षा के लिए खतरा उत्पन्न कर सकती है। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि भारत को बदले विश्व परिवेश में अपनी प्रक्षेपास्त्र तकनीक का विकास करने के साथ-साथ अपने पड़ोसी देशों तथा विश्व के अन्य देशों के साथ राजनय के माध्यम से विश्वास बढ़ाया जाये ताकि नये परिवेश में भारत की सुरक्षा सुद ढ़ व सुनिश्चित हो सके।

इकाई-III

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions)

Q. 1 भारतीय विदेश नीति के प्रमुख आर्थिक तत्वों की व्याख्या कीजिए।

Q. 2 विदेशी सहायता एवं व्यापार की नीति ने भारत की विदेश नीति पर क्या प्रभाव डाला है ?

Q. 3 भारत की विदेश व्यापार नीति की व्याख्या कीजिए।

Q. 4 भारत की विदेश नीति में अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों तथा बहुराष्ट्रीय निगमों की क्या भूमिका रही है ?

Q. 5 भारत की परमाणु नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

Q. 6 भारत के सुरक्षा परिवेश का उसकी विदेश नीति पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

Q. 7 भारत की सुरक्षा नीति पर एक विस्त त निबन्ध लिखो।

इकाई-IV

अध्याय-10

भारत-पाक सम्बन्ध : नीति व निष्पादन

(India-Pak Relations : Policy and Performance)

भारत और पाकिस्तान एक ही उप-महाद्वीप में स्थित हैं जो 1947 से पहले एक ही देश के हिस्से थे। वस्तुतः मुस्लिम लीग की हठधर्मिता तथा राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की अन्तिम परिणति भारत-पाक विभाजन के रूप में हुई। ब्रिटिश शासकों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति (Policy of Devide and Rule) के दुष्परिणाम साम्प्रदायिक तनाव के रूप में निकले। इसी साम्प्रदायिक तनाव ने भारत को मुस्लिम और हिन्दू राष्ट्र में बंटने को विवश कर दिया। भारत का दो राष्ट्रों में विभाजन 'दो राष्ट्रों के सिद्धान्त' (Two Nations Theory) का व्यावहारिक रूप था। भारत-पाक विभाजन के वातावरण ने जिस घ णास्पद अविश्वास की भावना को जन्म दिया, वही आगे चलकर दोनों देशों के बीच संघर्षपूर्ण सम्बन्धों का आधार बनी। यद्यपि भारत की तरफ से पाकिस्तान के साथ कई बार सम्बन्ध सुधारने की जो नीति अपनाई गई वह हमेशा ही पंचशील व शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों के अनुकूल रही, लेकिन फिर भी पाकिस्तान ने अच्छे पड़ोसी होने का परिचय नहीं दिया। बल्कि इसके बदले पाकिस्तान ने 1965, 1971 तथा 1999 के युद्ध दिये। इनमें सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पाकिस्तान द्वारा भारत पर आतंकवाद थोपा गया है। प्रतिदिन सीमा पर से होने वाली घुसपैठ भारत के लिए गम्भीर खतरा बनी हुई है। इस वातावरण में दोनों देशों के बीच शांतिपूर्ण सम्बन्धों की आशा करना बेकार है। भारत-पाक सम्बन्धों का अध्ययन करने के लिए हमें भारत द्वारा पाकिस्तान के प्रति अपनाई गए विदेश नीति तथा उसकी सफलता का आकलन करना होगा। भारत-पाक सम्बन्धों को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है :-

(क) भारत-पाक सम्बन्धों का शैशवकाल

(Indo-Pak Relations in the Early Days)

भारत-पाक सम्बन्धों कायह काल भारत-पाक विभाजन से उत्पन्न समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। विभाजन के हिंसात्मक व वैमनस्य भरे वातावरण ने दोनों देशों के बीच संघर्षपूर्ण सम्बन्धों की नींव डाली। यद्यपि नेहरू जी ने 15 अगस्त 1947 को अपने संदेश में स्पष्ट तौर पर कह दिया था कि "हम अपने पड़ोसी देश और शेष सभी देशों के साथ अच्छे व मित्रतापूर्ण सम्बन्ध चाहते हैं।" नेहरु जी का इशारा पाकिस्तान के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की तरह था। परन्तु पाकिस्तान ने भारत पर कभी विश्वास नहीं किया और भारत पर कई बार अघोषित युद्ध (Undeclared War) थोपा तथा भारत के स्वाभिमान को ठेस पहुंचाई।

भारत-पाक विभाजन के बाद सबसे महत्वपूर्ण विवाद देशी रियासतों (Native States) की समस्या को लेकर हुआ। स्वतन्त्रता के समय भारत में 567 रियासतों को भारत में मिला लिया गया। कुछ रियासतें पाकिस्तान में शामिल हो गई। रियासतों सम्बन्धी महत्वपूर्ण विवाद जूनागढ़ तथा हैदराबाद की रियासतों को लेकर हुआ। जूनागढ़ के नवाब ने अपनी रियासत पाकिस्तान में मिलाने की घोषणा कर दी जिससे वहां अराजकता फैल गई। भारत ने सैनिक कार्यवाही करके अराजकता की स्थिति पर काबू पा लिया। पाकिस्तान ने इसे संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाने का असफल प्रयास किया। इसके बाद जनमत संग्रह द्वारा भारत ने इसे अपने में मिला लिया। उसके बाद हैदराबाद की रियासत को भी भारत संघ में मिलाने को लेकर निजाम और ग हमन्त्री सरदार पटेल में काफी संघर्ष हुआ। भारत ने सैनिक कार्यवाही करके हैदराबाद को भी अपने में मिला लिया। परन्तु इस बार भी पाकिस्तान ने मामले को सुरक्षा परिषद् में उठाया, लेकिन वह असफल रहा। इसके बाद भारत व पाकिस्तान के बीच तनाव को स्थायी रूप से जन्म देने वाली घटना जम्मू और कश्मीर में लेकर हुई। यह समस्या आगे चलकर भारत-पाक सम्बन्धों के निर्धारण का प्रमुख मुद्दा है। इसके बाद दूसरा मुद्दा तत्कालीन आर्थिक तनाव का था। जिस समय भारत-पाक विभाजन हुआ उस समय विस्थापितों की सम्पत्ति का आदान-प्रदान करने को लेकर भारत-पाक में काफी संघर्ष हुआ। भारत ने विस्थापितों की सम्पत्ति व ऋण की अदायगी तुरन्त कर दी, लेकिन पाकिस्तान ने इसमें आनाकानी की। पाकिस्तान ने नेहरु-लियाकत समझौते का भी पालन नहीं किया जो सम्पत्ति के आदान प्रदान को लेकर हुआ था। इसके साथ ही विस्थापितों या शरणार्थियों को लेकर भी पाकिंस्तान ने काफी विवाद उत्पन्न किया। भारत ने तो पाकिस्तान जाने वाले विस्थापितों को भी आसानी से जाने दिया, लेकिन पाकिस्तान ने भारत की तरफ आने वाले विस्थापितों पर काफी अत्याचार किये जिसकी कल्पना मात्र ही रौंगटे खड़े कर देती है। उसके बाद भारत-पाक सम्बन्धों को प्रभावित करने वाला प्रमुख मुद्दा नहरी पानी के बंटवारे (Sharing of River Waters) का था जिसे 19 सितम्बर, 1960 को सिन्धु जल सन्धि द्वारा हल कर लिया गया। परन्तु पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बंगला देश). में यह समस्या गंगा जल के बंटवारे को लेकर बनी रही। बाद में इस समस्या को भी भारत-बंगला देश के बीच फरक्का जल विवाद को हल कर लिया गया। इसके अतिरिक्त पंजाब व बंगाल की सीमाओं के निर्धारण को लेकर भी दोनों देशों में विवाद हुआ। यद्यपि रेडकलिफ कमीशन द्वारा इस समस्या को काफी हद तक सुलझा दिया गया, लेकिन फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा निर्धारण के नाम पर इस मुद्दे को बार-बार उछालता रहता है। इस काल में सबसे महत्वपूर्ण विवाद कश्मीर को लेकर हुआ। पाकिस्तान ने अपनी सेना को कबाईलियों के भेष में सितम्बर, 1947 में भारत पर आक्रमण के लिए भेज दिया। इस कार्यवाही में पाकिस्तान को कश्मीर का बहुत बड़ा भाग मिल गया जिसे पाक अधिकृत कश्मीर कहा जाता है। यह समस्या भारत-पाक सम्बन्धों की सबसे अधिक महत्वपूर्ण निर्धारक रही है। इस समस्या पर बाद में अलग से विचार किया जायेगा।

इससे स्पष्ट है कि भारत-पाक सम्बन्धों की बुनियाद ही अविश्वास व वैमनस्य के वातावरण में पड़ी। यद्यपि कश्मीर को छोड़कर शेष समस्याओं का हल भी कर लिया गया, परन्तु फिर भी भारत पाक सम्बन्धों में कभी मधुरता नहीं आ सकी। तब से लेकर आज तक दोनों देशों की विदेश नीतियां एक दूसरे के सर्वथा विपरीत रही। दोनों देशों में धीरे-धीरे जो वैमनस्य की दरार बढ़ती गई, उसी वर्तमान परिणति भारत-पाक सम्बन्धों में तनाव के रूप में देखने को मिलती है।

(ख) 1954 से लेकर शिमला समझौते तक भारत-पाक सम्बन्ध

(Indo-Pak Relations from 1954 to Shimla Agreement)

भारत पाक विभाजन से उत्पन्न जिन तनावपूर्ण सम्बन्धो की शुरुआत हुई थी, उसका विकसित रूप इस काल में दिखाई दिया। इस काल को संघर्षपूर्ण सम्बन्धों का काल कहा जाता है। इस दौरान पाकिस्तान अमेरिका समर्थित SEATO तथा CENTO सैनिक सन्धियों में शामिल हो गया। उसने

भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति के विपरीत अपनी विदेश नीति की नींव डाली। इससे दोनों देशों के बीच अविश्वासपूर्ण सम्बन्धों का जन्म हुआ, क्योंकि भारत सैनिक गुटों में शामिल होने का पूर्ण विरोधी था। इसके बाद 1962 के चीनी आक्रमण ने भी भारत पाक सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न किया। जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो भारत ने अमेरिका तथा ब्रिटेन से सहायता की गुहार लगाई। जब इन देशों ने भारत की मदद की तो पाकिस्तान ने इसका विरोध किया। उसने कहा कि चीन की तरफ से भारत पर ऐसा कोई आक्रमण नहीं हुआ है कि उसे मदद की आवश्यकता पड़े। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान ने चीन के साथ एक समझौता करके पाक-अधिकृत कश्मीर का 5180 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र भी चीन को दे दिया। इसका दोनों देशों के आपसी सम्बन्धों पर विपरीत प्रभाव पड़ा। इसी दौरान जब अमेरिकी विदेश मंत्री एबरेल हेरीमन तथा ब्रिटिश मंत्री डन्कडसेन्ड नवम्बर 1962 में भारत आए तो उन्होंने भारत-पाकिस्तान में मेल-मिलाप करने का प्रयास किया, लेकिन इसके इसके सकारात्मक परिणाम नहीं निकले तो वार्ताओं का सिलसिला बंद कर दिया गया।

इसके बाद 1962 में पाकिस्तान के जासूसी षड्यन्त्र का पर्दाफाश होने से दोनों देशों के बीच सम्बन्ध अधिक तनावपूर्ण हो गये। पाकिस्तानी दूतावास द्वारा फैलाये गये जासूसी जाल का पता चलने के बाद जब भारत ने पाकिस्तानी दूतावास के अधिकारियों को हटाने का निर्णय लिया तो पाकिस्तान ने उल्टे भारत पर ही आरोप लगाकर अपने वहां स्थित भारतीय दूतावास के अधिकारियों को हटाने का निर्णय ले लिया। इसके परिणामस्वरूप पाकिस्तान में भारतीय पुस्तकालय तथा हाई कमीश्नर के कार्यालय बन्द कर दिये गये और पाकिस्तान ने यह भी घोषणा की कि वह 1949 की युद्ध-विराम रेखा को मान्यता नहीं देता। इससे दोनों देशों में तनाव बढ़ा। इसके बाद 28 दिसम्बर 1963 को श्रीनगर की हजरतबल दरगाह से पैगम्बर मुहम्मद साहब के पवित्र बाल के चोरी होने का आरोप भी पाकिस्तान ने भारत पर लगाया। इससे पूर्वी पाकिस्तान (बंगला देश) में साम्प्रदायिक दंगे उठ खड़े हुए। इसके पीछे पाकिस्तान का ही हाथ था। इस समस्या के समाधान के लिए 1964 में दिल्ली तथा रावलपिंडी में दोनों देशों के स्वराष्ट्र मन्त्रियों का सम्मेलन हुए। इसी बीच 1964 में ही कश्मीर के नेता शेख अब्दुल्लाह को कश्मीर की सरकार ने जेल से रिहा कर दिया। अब्दुल्ला ने जब बाहर आकर स्वतन्त्र कश्मीर की मांग उठाई तो पाकिस्तान ने कश्मीर क लिए आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग का समर्थन किया। जेल से बाहर आने के बाद अब्दुल्ला ने नेहरु से वार्तायें की तथा भारत के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने पर बल दिया। परन्तु नेहरु जी की म त्यु हो जाने से ये प्रयास धरे-के-धरे रह गये। इस तरह नेहरु युग में भारत-पाक सम्बन्धों में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। य़द्यपि भारत ने 15 अगस्त 1964 को पाकिस्तान के साथ युद्ध न करने का समझौता करने के लिए एक प्रस्ताव रखा, लेकिन पाकिस्तान ने उसे ठुकराकर सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना का अवसर खो दिया। बल्कि इसके विपरीत पाकिस्तान ने अप्रेल 1965 में कच्छ के क्षेत्र में हमला कर दिया। इस युद्ध में पाकिस्तान की सेना ने कई क्षेत्रों पर अपना कब्जा कर लिया। परन्तु भारत ने उसे अधिक आगे तक नहीं बढ़ने दिया। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री विल्सन ने मध्यस्थता द्वारा 30 जून, 1965 को इस युद्ध को बन्द करा दिया और इस समझौते के तहत दोनों देशों में 1 जनवरी 1965 की स्थिति में वापिस लौटने पर सहमति व्यक्त की। उस समझौते के तहत एक ट्रिब्यूनल भी बनाया गया। ट्रिब्यूनल ने अपना अन्तिम निर्णय 19 फरवरी, 1968 को दिया। इसके तहत विवादग्रस्त क्षेत्र का 90 प्रतिशत भाग भारत को तथा शेष 320 वर्गमील क्षेत्र पाकिस्तान को दिया गया। भारत में इसकी काफी आलोचना हुई। लेकिन शान्ति के प्रयासों को व्यावहारिक रूप देने के लिए भारत ने इसे स्वीकार कर ही लिया।

(i) 1965 का भारत-पाक युद्ध व ताशकन्द समझौता

(Indo-Pak War of 1965 and Tashkent Agreement)

भारत-पाक सम्बन्धों मं वास्तविक कड़वाहट उस समय पैदा हुई जब पाकिस्तान ने कच्छ समझौते

का उल्लंघन करते हुए अगस्त 1965 में हजारों पाकिस्तानी छापामारों को कश्मीर में प्रवेश करा दिया। संयुक्त राष्ट्र के अधिकारी इस समय युद्ध-विराम रेखा का पहरा दे रहे थे। उन्होंने सारी घटना को देखा ओर उसकी सूचना महासचिव यूथांट को दे दी। इसके साथ ही पाकिस्तान ने अपनी रेडियों से घोषणा की कि भारत पाकिस्तान पर युद्ध थोप रहा है। पाकिस्तान के छापामार युद्ध में असफलता के कारण स्वयं अपनी सेनाओं को लेकर 1 सितम्बर 1965 को औपचारिक रूप से कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। उसने न केवल युद्ध विराम रेखा बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सीमा का भी उल्लंघन किया। भारत ने जवाबी हमले में पाकिस्तान की सेनाओं को पीछे धकेल दिया। चीन ने पाकिस्तान को पूरा समर्थन दिया तथा भारत को चेतावनी दी कि वह तिब्बत-सिक्किम सीमा पर अपने सैनिक अड्डे बन्द कर दे। इस दौरान सुरक्षा परिषद में भी युद्ध-विराम सम्बन्धी प्रस्तावों पर चर्चा होती रही। अन्त में संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप से 23 सितम्बर, 1965 को दोनों देशों में युद्ध-विराम हो गया। इस युद्ध में भारत का काफी नुकसान हुआ, परन्तु उसे पाकिस्तान का 750 वर्ग मील का क्षेत्र मिल गया। युद्ध के बाद दोनों देशों में शान्तिपूर्ण सम्बन्धों की नींव डालने के एिल सोवियत संघ की मध्यस्थता से 10 जनवरी 1966 को ताशकन्द में भारत के प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री तथा पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब खाँ मिले। इसकी मध्यस्थता सोवियत प्रधानमन्त्री कोसीगिन ने की। 10 जनवरी, 1966 को लम्बी वार्तालाप के बाद नौ-सूत्री ताशकन्द घोषणापत्र प्रस्तुत किया गया। इसमें आशा व्यक्त की गई कि भारत और पाकिस्तान के मध्य सामान्य और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होंगे तथा दोनों देशों की जनता के बीच मित्रता और सौहार्द की भावना बढ़ेगी। ताशकन्द समझौते में निम्नलिखित बातें शामिल की गई :-

(1) **दोनों देश अच्छे पड़ोसियों के सम्बन्ध रखेंगे तथा अपने विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करेंगे।**

(2) **दोनों देशों की सेनाएं 25 फरवरी, 1966 तक उस स्थिति में लौट जायेंगी जहां वे 5 अगस्त, 1965 से पूर्व थी।**

(3) **दोनों देश एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।**

(4) **दोनों देश एक दूसरे के विरुद्ध अनावश्यक प्रचार को बन्द करेंगे।**

(5) **दोनों देश अपने राजनयिक सम्बन्ध पुनः स्थापित करेंगे।**

(6) **दोनों देशों के बीच आर्थिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध, दूर संचार तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान पुनः स्थापित होंगे।**

(7) **दोनों देश युद्धबन्दियों की अदला-बदली का कार्य निष्ठा से पूरा करेंगे।**

(8) **दोनों देश शरणार्थियों की समस्या पर भी विचार-विमर्श जारी रखेंगे।**

(9) **दोनों देश प्रत्यक्ष मामलों में संयुक्त आयोगों का गठन करेंगे तथा आपस में मिलना जारी रखेंगे।**

निस्संदेह तौर पर भारत-पाक सम्बन्धों को नया आयाम देने का गुण ताशकन्द समझौते में दिखाई दिया। भारत की जनता ने यह आशा की कि वह समझौता भारत-पाक सम्बन्धों को सामान्य बनाने में सहायक होगा। प्रधानमन्त्री ने कहा कि यह समझौता नया इतिहास रचेगा, क्योंकि यह अन्तर्राष्ट्रीय राजनय में एक अनूठा प्रयोग था। परन्तु पाकिस्तान में इस समझौते की आलोचना हुई। वहां के विदेश मन्त्री ने कश्मीर समस्या का निदान किए बिना इसे निरर्थक कहा। इस समझौते से अमेरिका तथा चीन को निराशा हुई तथा ब्रिटेन की प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचा, क्योंकि इसके सोवियत संघ ने मध्यस्थता की थी। पश्चिमी गुट साम्यवादी गुट के प्रति भारत के बढ़ते लगाव को कैसे सहन कर सकता था। परन्तु यह समझौता वास्तव में ऐतिहासिक था। भारत ने इस समझौते को लागू करने का पूरा प्रयास किया। परन्तु पाकिंस्तान की द ष्टि कश्मीर पर ही लगी हुई थी,

इसलिए उसने इस समझौते की व्यावहारिक क्रियान्विती में भारत के साथ कोई सहयोग नहीं किया। पाकिस्तान का विचार था कि उपमहाद्वीप में शान्ति तभी स्थापित हो सकती है जब कश्मीर का प्रश्न सुलझ जाए। वस्तुतः सत्य तो यह है कि ताशकन्द समझौते से भारत और पाकिस्तान के मौलिक मतभेदों का अन्त नहीं हुआ, बल्कि आपसी अविश्वास तथा मनमुटाव और अधिक बढ़ गया। विदेश नीति के विश्लेषकों का मानना है कि ताशकन्द समझौते ने अल्पकालिक शान्ति को ही जन्म दिया जो बाद में कम ही समय में लुप्त हो गई। परन्तु इस समझौते का महत्त्व इस बात में है कि इस समझौते ने भारत-पाक सम्बन्धों में कड़वाहट कम करने का अच्छा अवसर दिया जिसे पाकिस्तान ने गंवा दिया।

ताशकन्द समझौते के बाद कुछ समय के लिए दोनों देशों के आपसी सम्बन्ध शान्तिपूर्ण दिशा में अग्रसर हुए। दोनों देशों की सेनाएं पूर्ववत स्थिति में लौट गई और दोनों देशों ने एक दूसरे के विरुद्ध प्रचार रोक दिया। सितम्बर 1966 में भारत और पाकिस्तान के सैनिक अधिकारियों के बीच एक समझौता हुआ और यह निश्चय हुआ कि वे अपने सीमान्तों पर यदि कोई सैनिक गतिविधि करें तो इसकी पूर्व सूचना एक-दूसरे को दे दें। परन्तु यह शान्ति व्यवस्था शीघ्र ही अन्तिम दिन गिनने लगी जब 1967 में भारत ने अपनी सीमा के अन्तर्गत एक पाकिस्तानी हवाई जहाज को मार गिराया। इससे अखनूर क्षेत्र में तनाव बढ़ गया। इसके बाद 30 जनवरी 1971 को दो अपहर्णकर्ताओं द्वारा एक यात्री विमान को लाहौर में उतार लिया गया। पाकिस्तान ने अपहरर्णकर्ताओं को अपने वहां राजनीतिक शरण दी। भारत ने पाकिस्तान से मांग की कि उसका विमान व यात्री लौटा दिये जों। पाकिस्तान ने एक दिन बाद यात्री तो लौटा दिये, लेकिन विमान को आग लगा दी। इस अपहरण कांड में पाकिस्तान का सीधा हाथ साबित हो गया। लाहौर में भारतीय विमान के ध्वंस से भारत भर में आक्रोश की लहर फूट गई। भारत ने पाकिस्तान की असैनिक उड़ाने भारतीय आकाश में निषिद्ध कर दी और उसी दिन से सीमा कें दोनों तरफ तनाव का वातावरण और अधिक गहरा हो गया।

(ii) 1971 का भारत-पाक युद्ध व शिमला समझौता

इसके बाद 1971 में पूर्वी पाकिस्तान में मुक्ति आन्दोलन की शुरुआत हो गई। पाकिस्तान ने इस आन्दोलन को कुचलने के लिए अपना पूरा दमन-चक्र चलाया। इसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। पाकिस्तान के दमन चक्र से आतंकित होकर पूर्वी पाकिस्तान की जनता ने भारत की तरफ पलायन करना शुरु कर दिया। इससे भारत पर आर्थिक व राजनीतिक दबाव बढ़ गया। जब अप्रैल 1971 में पूर्वी बंगाल के लोगों ने अपनी प्रान्त को स्वतन्त्र बंगलादेश घोषित कर दिया तो इस पर भारत चुप कैसे रह सकता था। भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने सभी प्रमुख देशों से सम्पर्क स्थापित करके, पाकिस्तान पर इस बात के लिए दबाव डालने का प्रयास किया कि वह पूर्वी बंगाल में नरसंहार बन्द कर दे ताकि वहां के शरणार्थी अपने घरों को वापिस चले जायें। इसके विपरीत अमेरिका ने यह घोषणा की कि यदि युद्ध हुआ तो वह पाकिस्तान की मदद करेगा। इस परिस्थिति में भारत ने सोवियत संघ के साथ मैत्री सन्धि करनी पड़ी। सोवियत संघ ने भी पाकिस्तान को पूर्वी पाकिस्तान के मामले में शान्ति से काम लेने की सलाह दी, लेकिन पाकिस्तान पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। इस दौरान पाक-चीन-अमेरिकी त्रिगुट बनने से भारत-पाक तनाव चरम सीमा पर पहुंच गया। अन्ततः 3 दिसम्बर, 1971 को भारत व पाकिस्तान के बीच पूर्वी पाकिस्तान की समस्या को लेकर जंग छिड़ गई। अमेरिका ने पाकिस्तान की मदद के लिए अपना परमाणु लैस सातवां बेड़ा बंगाल की खाड़ी में भेज दिया, परन्तु भारत-सोवियत मैत्री के दबाव में चीन व अमेरिका युद्ध में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं कर सके। 15 दिसम्बर तक पूर्वी पाकिंस्तान की धरती पर पाकिस्तान की सेना अपना मनोबल खो चुकी थी। उसके जनरल नियाजी ने भारतीय सेना के ले० जनरल अरोड़ा के सामने बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया। इसक बाद भारत ने भी पश्चिमी क्षेत्र में एक तरफ युद्ध

विराम की घोषणा कर दी। उस समय तक बंगला देश के रूप में पूर्वी पाकिस्तान एक वास्तविकता बन चुका था। इस युद्ध ने पाकिस्तान के दो टुकड़े कर दिये। बंगला देश के रूप में नए देश का उदय होना पाकिस्तान के लिए दुविधाजनक था। इसमें भारत की भूमिका को लेकर पाकिस्तान के मन में अविश्वास और वैमनस्य की भावना और अधिक गहरी हो गई।

इससे दक्षिण एशिया में भारत की स्थिति को काफी मजबूत किया। इस युद्ध से अमेरिका की विदेश नीति को करारा झटका लगा। इस युद्ध के बाद भारत की विदेश नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया जिसने पहले की तुलना में अधिक यथार्थवादी और आत्मविश्वासपूर्ण रूप ग्रहण किया। अब भारत ने पाकिस्तान के प्रति तुष्टिकरण की नीति के स्थान पर द ढ़ता और आवश्यक कठोरता की नीति अपनाई। अब भारत अमेरिका की विदेश नीति की आलोचना करने लगा और उसने सोवियत सुघ के साथ मित्रता की नीति अपनाना शुरु कर दिया। इसके बाद भारत व बंगलादेश में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की नींव पड़ी। अब भारत ने स्पष्ट किया कि वह उन्हीं राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्धों को मजबूत बनायेगा जो उसकी विदेश नीति के लक्ष्यों से साम्य रखते हैं व उनको पूरा सम्मान देते हैं। इस युद्ध ने भारत को दक्षिण एशिया का एक महान देश साबित कर दिया। अब वे देश भी भारत के साथ सम्बन्धों को प्राथमिकता देने लगे जो अब तक भारत की उपेक्षा करते आ रहे थे। इससे चीन के मन में भी भारत के प्रति कुछ आशंकाओं ने जन्म लिया। इससे पाकिस्तान की विदेश नीति को करारा झटका लगा। इसके विपरीत भारत की युद्ध-विराम रेखा के पास एक बहुत बड़ा भूभाग प्राप्त हुआ। भारत ने घोषणा की कि पाकिस्तान ने स्वयं युद्ध करके ताशकन्द समझौते का उल्लंघन किया है। इसलिए अब युद्ध-विराम रेखा में भी परिवर्तन आ गया है।

इस दौरान पाकिस्तान के राष्ट्रपति अली भुट्टो सोवियत संघ गए ओर वहां उसने भारतीय उपमहाद्वीप में शान्तिपूर्ण वातावरण बनाए रखने, विद्वेषपूर्ण प्रचार पर रोक लगाने और बिना शर्त भारत और बंगलादेश से समझौते की पहल की तीव्र इच्छा प्रकट की। परन्तु वापिस पाकिस्तान आते ही उन्होंने कश्मीर का राग अलापना शुरु कर दिया। लेकिन भुट्टो अच्छी तरह जानते थे कि अभी युद्धबन्दियों व खोई हुई जमीन का प्राप्त करना है, इसलिए उनका रुख कुछ नरम हुआ। उसने भारत से शान्ति समझौते की पेशकश की। दोनों देशों में अप्रैल 1972 में एक उच्च स्तरीय प्रतिनिधि स्तर की वार्ता मरी में हुई। इसमें यह तय हुआ कि दोनों देश जून, 1972 में पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार-विमर्श करने के लिए फिर से मिलें। इस निश्चय के बाद भारत और पाकिस्तान के बीच 28 जून, 1972 को शिमला में एक शिखर सम्मेलन हुआ। काफी विचार-विमर्श के बाद अन्ततः दोनों देशों में 3 जुलाई, 1972 को एक शान्ति समझौता हो गया जिसे **शिमला समझौता** (Shimla Agreement) कहा जाता है। इस समझौते की प्रमुख बातं निम्नलिखित हैः-

(1) दोनों देश सभी विवादों और समस्याओं में शांतिपूर्ण समाधान के लिए सीधी बातचीत करेगे और स्थिति में एक तरफा कार्यवाही करके कोई परिवर्तन नहीं करेंगे। वे एक दूसरे के विरुद्ध न तो बल प्रयोग करेंगे, प्रादेशिक अखंडता की अवहेलना करेंगे तथा न ही एक दूसरे की राजनीतिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करेंगे।

(2) दोनों ही देशों की सरकारें एक दूसरे के विरुद्ध घ णापूर्ण प्रचार को रोकेंगी और ऐसी खबरों को प्रोत्साहन देंगी जो दोनों देशों के बीच में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास करें

(3) आपसी सम्बन्धों को सामान्य बनाने के लिए दोनों देश -

(i) डाकतार सेवा, जल एवं वायु मार्गों द्वारा सभी संचार साधनों की पुनः बहाली करेंगे,
(ii) एक दूसरे के नागरिकों को आने-जाने की सुविधा देंगे,
(iii) शीघ्र ही व्यापारिक तथा आर्थिक मामलों में सहयोग करेंगे तथा

(iv) विज्ञान और संस्कृति के क्षेत्र में भी आपसी आदान-प्रदान को प्रोत्साहन देंगे।

(4) स्थायी शान्ति की प्रक्रिया आरम्भ करने के लिए दोनों देशों की सरकारें इस बात पर सहमत हुई - (i) भारतीय और पाकिस्तानी सेनाएं अपनी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा में वापिस चली जायेंगी, (ii) दोनों देश एक दूसरे की स्थिति को हानि पहुंचाए बिना जम्मू कश्मीर में 17 दिसम्बर 1971 को हुए युद्ध-विराम की नियन्त्रण रेखा को मान्यता देंगे, (iii) सेनाओं की वापसी 30 दिन (समझौता होने के बाद) के अन्दर पूरी कर ली जायेगी।

(5) दोनों देशों के राष्ट्राध्यक्ष भविष्य में स्थायी शान्ति की स्थापना तथा सम्बन्धों को सामान्य बनाये रखने के लिए आपस में समय-समय पर मिलते रहेंगे।

शिमला समझौते के बाद भारत-पाक सम्बन्धों में एन युग का सूत्रपात हुआ। इससे दोनों देशों के सम्बन्धों में सकारात्मक परिवर्तन दिखाई देने लगे। लेकिन भातर को समझौते का सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि जो क्षेत्र हमारी सेनाओं ने युद्ध के मैदान में जीता था, वह कूटनीतिक सम्बन्धों ने गंवा दिया। भारत ने इस समझौते को पूरी ईमानदारी से लागू किया। विश्व भर में भारत के प्रयासों की सराहना की गई। पाकिस्तान ने भी भारत के साथ एक अनाक्रमण सन्धि (Non-Agression Treaty) की। इस सन्धि के अनुसार पाकिस्तान ने भारत को आश्वस्त किया कि पाकिस्तान भारत की क्षेत्रीय अखण्डता या राजनीतिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध कोई खतरा उत्पन्न नहीं करेगा। शिमला समझौते से शांतिपूर्ण द्वि-पक्षीय बातचीत का रास्ता खुल गया। इससे दोनों देशों में शान्तिपूर्ण सामान्य सम्बन्धों की बुनियाद पड़ी। यद्यपि कुछ आलोचकों ने शिमला समझौते की आलोचना भी की। उन्होंने कहा कि "जो कुछ हमने युद्ध में पाया था, उसे हमें कूटनीतिक वार्ता की मेज पर खो दिया।" इसका तात्पर्य यह था कि हमारी सरकार ने शिमला समझौते में कश्मीर पर पाकिस्तान के साथ सौदेबाजी करने का अवसर हाथ से खो दिया। वस्तुतः सच्चाई तो यह थी कि इस समझौते ने भारत-पाक सम्बन्धों की दिशा में शांतिपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना का अवसर दोनों देशों को प्रदान किया।

(ग) शिमला समझौते के बाद व गुजराल सिद्धान्त तक भारत-पाक सम्बन्ध

(Indo-Pak Relations Between The Shimla Agreement andThe Gujral Doctrine)

शिमला समझौते के लागू होने के बाद भारत-पाक सम्बन्धों में जिस नए युग की शुरुआत हुई, उसे तनाव शैथिल्य (Detente) का दौर कहा जाता है। इसके बाद दोनों देशों ने बदली हुई क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में अपने सम्बन्धों का आकलन करना शुरु कर दिया। सितम्बर 1973 में पाकिस्तान ने फिर से संयुक्त राष्ट्र महासभा में कश्मीर का मुद्दा उठाया और नवम्बर, 1973 में पाक प्रधानमन्त्री ने अधिकृत कश्मीर के दौरे के समय शिमला समझौते के विरुद्ध ब्यान दिये। 18 मई, 1974 को जब भारत ने प्रथम परमाणु परीक्षण किया तो पाकिस्तान ने भी परमाणु बम्ब बनाने की घोषणा की और अनाक्रमण सन्धि को ठुकरा दिया। लेकिन इसके साथ-साथ भारत के साथ उसने कुछ ऐसे समझौते भी किये जो दोनों देशों के सम्बन्धों को सुधार सकते थे। पाकिस्तान ने अगस्त 1973 में मानवीय समस्याओं पर भारत के साथ एक समझौता किया जो दिल्ली में सम्पन्न हुआ। पाकिस्तान ने यह स्वीकार किया कि वह पाकिस्तान स्थित सब बंगालियों को वापिस भेज देगा व 1971 के पाक युद्ध-बन्दियों की रिहाई के लिए भारत के साथ पूर्ण सहयोग करेगा। इसके बाद पाकिस्तान ने 22 फरवरी 1974 को बंगलादेश को राजनयिक मान्यता भी प्रदान की। इससे दोनों देशों में निकटता आई। नवम्बर 1974 में भारत-पाक सम्बन्धों में मधुरता लाने के लिए एक समझौता हुआ। इस समझौते

पर दोनों देशों ने इस्लामाबाद में हस्ताक्षर किए। इसके अनुसार भारत के आणविक परीक्षण के बाद आए तनाव को दूर करने के लिए दोनों देशों ने डाक-तार, दूरसंचार व यात्रा सेवाएं फिर से चालू करने पर सहमति हो गई। इससे दोनों देशों में शान्तिपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना के आसार बढ़े। इसके बाद 23 जनवरी, 1975 को दोनों देशों ने एक-दूसरे के व्यापारिक जहाजों को अपनी-अपनी बन्दरगाहों पर ठहरने की सुविधा प्रदान की। इसके बाद 14 मई, 1976 को इस्लामाबाद में एक और समझौता हुआ जिसके अनुसार दौत्य (राजनयिक), रेल, स्थल और हवाई सम्पर्क बहाल करने पर सहमति हुई। इसके बाद पड़ोसी देशों से सम्बन्ध सुधारने के प्रयास में भारत के विदेश मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी 6 फरवरी, 1978 को पास्तिान की यात्रा पर गए। वाजपेयी जी ने स्पष्ट कहा कि हमारी यात्रा का उद्देश्य किसी खास मुद्दे पर बातचीत करना नहीं, बल्कि सद्भावना पैदा करना है। वाजपेयी की यात्रा के फलस्वरूप भारत-पाकिस्तान के बीच व्यापार, संचार, आवागमन, परियोजनाओं के क्षेत्र में सहयोग आगे बढ़ा। उसके बाद पाकिस्तान का व्यापार प्रतिनिधिमण्डल भारत आया और दोनों देशों में व्यापारिक सम्बन्ध बढ़े। 14 अप्रैल, 1979 को पाकिस्तान के वैदेशिक मामलों के सलाहकार आगाशाही भारत आए तथा सलाल-पन-बिजली परियोजना पर दोनों देशों में एक समझौता हुआ। वस्तुतः शिमला समझौते से लेकर सलाल-परियोजना पर समझौते तक भारत-पाक सम्बन्ध काफी मधुर व सौहार्दपूर्ण रहे। इस दौरान 1979 में पाकिस्तान ने हवाना शिखर सम्मेलन में CENTO की जगह गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सदस्यता ग्रहण कर ली। इससे दोनों देशों के सम्बन्धों में और अधिक प्रगाढता आई।

जनवरी 1980 में पाकिस्तान के राष्ट्रपति जिआ-उल-हक ने अपने संदेश में घोषणा की कि उनका देश शिमला समझौते का पूरी निष्ठा से पालन करता रहेगा। इसके बाद 1981 में जेनेवा में मानवाधिकार आयोग की बैठक में कश्मीर के मुद्दे पर दोनों देशों में कुछ गतिरोध पैदा हो गया। इस पर पर्दा डालने के लिए पाकिस्तान ने 'युद्ध न करने का प्रस्ताव' भारत के सामने रखा। 1 नवम्बर, 1982 को पाकिस्तान के राष्ट्रपति जिया-उल-हक भारत यात्रा पर आए और भारत के सम्बन्ध सुधारने की बात कही। इस यात्रा के परिणामस्वरूप जा विचार-विमर्श हुआ, उसके तहत 19 जनवरी 1983 को इस्लामाबाद में भारत-पाक सम्बन्धों पर विचार करने के लिए एक संयुक्त आयोग गठित करने का फैसला हुआ। उसके बाद 1984 में दोनों देशों के बीच सम्बन्ध सुधारने के लिए 21 मई, 1984 को इस्लामाबाद में एक विदेश सचिव स्तर की वार्ता हुई। इसी दौरान अगस्त 1984 में पाकिस्तान में भारतीय विमान के अपहरणकर्ताओं को सक्रिय मदद भी दी तथा वह पंजाब में उग्रवादी तत्वों को बराबर मदद देता रहा। इससे सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये। प्रधानमन्त्री इन्दिरागांधी की म त्यु के बाद प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने स्पष्ट किया कि दोनों देशों के बीच सम्बन्ध मधुर बने रहेंगे और पूर्व में अपनाई गई विदेश नीति में कोई खास बदलाव नहीं होगा। परन्तु जब पाकिस्तान की तरफ से काई सकारात्मक प्रयास नहीं किया गया तो भारत ने स्पष्ट शब्दों में कहना पड़ा कि जब तक पाकिस्तान पंजाब में आतंकवादियों को सहायता देना बन्द नहीं करेगा, तब तक दोनों देशों के बीच सम्बन्ध सामान्य नहीं हो सकते। इसी दौरान भारत ने पाकिस्तान द्वारा परमाणु बम्ब बनाने पर भी चिन्ता व्यक्त की। जनवरी 1985 में भारत-पाक संयुक्त आयोग की बैठक में दोनों देशों के बीच कुछ आपसी सहयोग बढ़ाने वाले कृषि और विकास क्षेत्र में समझौते हुए तो दोनों देशों में सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की दिशा में प्रयास पुनः शुरु हो गये। उसके बाद नवम्बर 1985 में दोनों देशों में द्वि-पक्षीय समस्याओं तथा सहयोग के क्षेत्रों पर विचार किया गया। 17 दिसम्बर, 1985 को प्रधानमन्त्री राजीव गांधी तथा राष्ट्रपति जिया-उल-हक में वार्ता हुई और दोनों नें संयुक्त घोषणा की कि वे एक दूसरे के परमाणु प्रतिबन्ध हटाकर अपने निजि क्षेत्र को भारत से 42 वस्तुएं आयात करने की अनुमति दे दी। इसके साथ ही एक सांस्कृतिक समझौता भी हुआ। इस तरह दोनों देशों में तनाव कम करने की दिशा में कुछ प्रगति हुई। लेकिन इस दौरान दोनों देश परमाणु क्षमता में व द्धि करने की होड़ लगााते रहे। पाकिस्तान ने भारत के जवाब में कोरिया जैसे देशों से चोरी छिपे

परमाणु तकनीक प्रापत करके परमाणु बम्ब बना लिया। इससे दोनों देशों में अविश्वास व तनाव की भावना में भी व द्धि होती रही।

इसके बाद सितम्बर, 1987 में पाकिस्तान ने सियाचीन ग्लेशियर के बर्फीले क्षेत्र पर कब्जा करने के लिए आक्रमण कर दिया, लेकिन उसे मुंह की खानी पड़ी। इसके दौरान दोनों देशों में सैनिक अभ्यास की प्रतिस्पर्धा भी चलती रही। जनवरी, 1988 में पाकिस्तानी सेना ने सियाचिन ग्लेशियर की सारटोरी पहाड़ी पर स्थित कुछ चौकियों पर हमला बोल दिया। भारत ने इसका विरोध किया, लेकिन पाकिस्तान ने सियाचिन क्षेत्र पर अपने दावे को उचित ठहराया। भारत की सेनाओं ने इस बार भी पाकिस्तान की सेनाओं को खदेड़ दिया। भारत ने स्पष्ट तौर पर कह दिया कि सियाचिन भारत का अभिन्न अंग है और उस पर पाकिस्तान के साथ समझौते का प्रश्न ही नहीं उठता। इस दौरान भारत के प्रधानमन्त्री 1988 के सार्क शिखर सम्मेलन (SAARC Conference) में भाग लेने पाकिस्तान गए और वहां पाकिस्तान के साथ कई द्वि-पक्षीय समझौते किये ताकि दोनों देशों में सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों का विकास हो सके। प्रधानमन्त्री राजीव गांधी के बाद भारत के प्रधानमन्त्री चन्द्रशेखर ने पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों को सुधारने पर जोर दिया। दोनों देशों के बीच एक हॉट लाइन समझौता हुआ ताकि आवश्यकता पड़ने पर शासनाध्यक्ष सीधे बातचीत करके किसी भी समस्या का हल तलाश सकें। पाकिस्तान के साथ शांतिपूर्ण व तनाव रहित और अच्छे पड़ोसी के सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से विदेश सचिव स्तर की वार्ताएं शुरु की जो 1991 से 1996 तक चलती रही। इन वार्ताओं में दोनों देशों ने रसायनिक शस्त्रों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने, राजनयिकों की आचार संहिता सम्बन्धी संयुक्त घोषणा, नभ सीमा का उल्लंघन रोकना तथा सैनिक गतिविधियों की सूचना एक-दूसरे को पहले ही देना आदि घोषणाएं शामिल हैं। भारत के विदेश मन्त्री ने 30 दिसम्बर, 1991 को न्यूयार्क में पाकिस्तान के विदेश मन्त्री से भेंट की और उनसे कहा कि पाकिस्तान पंजाब व जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद को अपना समर्थन देना बन्द करे। उसके बाद भारत के प्रधानमन्त्री नरसिम्हा राव ने पाकिस्तान की प्रधानमन्त्री बेनजीर भुट्टो को 17 अक्तूबर, 1991 को हरारे में तथा 21 दिसम्बर, 1991 को कोलम्बों में भेंट करके दोनों देशों के बीच तनाव कम करने और द्विपक्षीय रूप से शांतिपूर्ण ढंग से सभी समस्याओं को हल करने की आवश्यकता को दोहराया। पाकिस्तान ने इसकी तरफ अधिक ध्यान नहीं दिया। इस दौरान भारत में बावरी मस्जिद (192) को तोड़ने की घटना ने तथा 12 मार्च, 1993 में हुए बम्बई बम्ब विस्फोटों ने धार्मिक कट्टरता को चरम सीमा पर पहुंचा दिया। इसके कारण दोनों देशों में आपसी तनाव में व द्धि हुई। विश्व में तो शीतयुद्ध समाप्त हो चुका था, लेकिन भारत-पाक संघर्ष अभी भी जारी था।

वस्तुतः इस युग में भारत-पाक सम्बन्धों की कड़वाहट अन्तिम सीमा पर पहुंच चुकी थी। इसके प्रमुख कारण पाकिस्तान द्वारा पंजाब व कश्मीर में आतंकवाद को बढ़ावा देना, पाकिस्तान द्वारा भारत विरोऋी प्रचार, पाकिस्तान में हिन्दू अल्पसंख्यकों पर आक्रमण तथा हिन्दू मन्दिरों को गिराने, भारतीय राजनयिकों के साथ इस्लामाबाद में दुव्यर्ववहार, 1993 के बम्बई बम विस्फोटों में पाकिस्तान का हाथ, सियाचिन ग्लेशियर पर पाकिस्तान का हमला, अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर जम्मू कश्मीर के प्रश्न को पाकिस्तान द्वारा बार-बार उठाया जाना, दोनों देशों में बढ़ती परमाणु शस्त्रों की होड़ व सीमाओं पर सैन्य अभ्यास आदि प्रमुख रहे। इस युग को तनावपूर्ण सम्बन्धों का युग कहा जाता है। यद्यपि शिमला समझौते के बाद भारत-पाक सम्बन्धों में कुछ सुधार अवश्य आया था, लेकिन वह स्थायी परिणाम प्राप्त नहीं कर सका। धीरे-धीरे दोनों देशों में आपसी सम्बन्ध अधिक सौहार्दपूर्ण नहीं बन सके, बल्कि इसके विपरीत कटुतापूर्ण बन गए।

भारत-पाक सम्बन्धों को मधुर बनाने के लिए 27 फरवरी 1997 को पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ ने कश्मीर मुद्दे को हल करने के लिए भारत के साथ वार्ता का प्रस्ताव पेश किया। इसी के तहत 28 मार्च, 1997 को दोनों देशों में विदेशमन्त्री स्तर की वार्ता नई दिल्ली में शुरु हुई। यह वार्ता

भारत-पाक सम्बन्धों को सुधारने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम माना गया। तत्कालीन विदेश मन्त्री इन्द्रकुमार गुजराल जो बाद में प्रधानमन्त्री भी बने 1996 से 1997 तक अपने पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए एक तरफा निर्णय लेने शुरु कर दिया। प्रधानमन्त्री कबे रूप में इन्द्रकुमार गुजराल ने कहा-"मैं किसी भी विषय पर रियायत देने के लिए तैयार हूँ सिवाय भारत की सम्प्रभुता और धर्म-निरपेक्षता के सिद्धान्त पर।" प्रधानमन्त्री इन्द्रकुमार गुजराल द्वारा अपने पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए जिस पहल की शुरुआत की उसे गुजराल सिद्धान्त (The Gujral Doctrine) कहा जाता है। जब इस सिद्धान्त को पाकिस्तान के सन्दर्भ में लागू करने की पहल की गई तो इससे दोनों देशों के बीच तनाव कम करने तथा जनता से जनता के सम्पर्क को बढ़ावा देने को प्राथमिकता दी गई। इस सिद्धान्त के अनुसार भारत आने वाले पाकिस्तानी व्यापारियों के लिए पहली बार एक वर्ष का अनेक बाद प्रवेश योग्य वीजा जारी किया गया। इसके अतिरिक्त आम यात्रियों व पर्यटकों को भी प्रवेश की रियायत दी गई। भारत ने यह भी घोषणा की कि व द्धों, छात्रां, पत्रकारों, धार्मिक यात्रियों को एक देश से दूसरे देश में अपने जाने की खुली छूट होगी, लेकिन पाकिस्तान की तरफ से सकारात्मक प्रयास नहीं किए गए और अन्त में यह सिद्धान्त पाकिस्तान की धार्मिक कट्टरता तथा जम्मू-कश्मीर के एकतरफा राग अलापने की भेंट चढ़ गया। यद्यपि पाकिस्तान ने भी दिखावे के तौर पर कुछ घोषणाएं कीं लेकिन वे कभी सिरे नहीं चढ़ सी। गुजराल सिद्धान्त के द्वारा मधुर सम्बन्ध कायम करने के प्रयास के बावजूद भी कश्मीर, सियाचिन, आतंकवाद व घुसपैठ जैसी समस्याएं ज्यों की त्यों बनी रहीं। 1998 में भारत द्वारा तथा उसके जवाब में पाकिस्तान द्वारा किए गए परमाणु विस्फोटों ने स्थिति को और अधिक खराब कर दिया।

(घ) कारगिल युद्ध से वर्तमान तक भारत-पाक सम्बन्ध

(Indo-Pak Relations from Kargil War to the Present Days)

गुजराल के बाद जब अटल बिहारी वाजपेयी ने भारत के शासन की बागडोर संभाली तो उन्होंने भी गुजराल सिद्धान्त के अनुरूप ही पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारने पर बल दिया। वाजपेयी जी स्वयं लाहौर में प्रधामनत्री नवाब शरीफ से मिले। प्रधानमन्त्री वाजपेयी ने दिल्ली से लाहौर तक की बस सेवा शुरु की और दोनों देशों के बीच आपसी सहयोग व शान्ति स्थापना के लिए एक घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए जिसे 'लाहौर घोषणापत्र' के नाम से जाना जाता है। लेकिन पाकिस्तान ने वाजपेयी की मित्रता का जवाब कारगिल में घुसपैठिए भेजकर दिया। पाकिस्तान द्वारा कारगिल में घुसपैठिए भेजना सरेआम धोखा था जो भारत के साथ हुआ था। इस समस्या ने लाहौर यात्रा से उत्पन्न आशावादी सम्बन्धों की नींव को हिला दिया।

पाकिस्तान द्वारा शिमला समझौते का उल्लंघन करके कारगिल पर कब्जा करने के पीछे प्रमुख कारण श्रीनगर लेह राजमार्ग को काटना था ताकि लद्दाख क्षेत्र का कश्मीर घाटी से सम्पर्क टूट जाए। अपने उद्देश्य में कामयाब हो जाने पर इस क्षेत्र से पाकिस्तान आतंकवादी गतिविधियां आसानी से संचालित कर सकता था। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों व विदेश नीति के विश्लेषकों का यह मानना है कि इस क्षेत्र पर पाकिस्तान का कब्जा करने के उद्देश्य कश्मीर समस्या का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करना तथा नियन्त्रण रेखा के इस तरफ भारतीय प्रदेश में असंतोष भड़काना था। लेकिन पाकिस्तान इस उद्देश्य में नाकाम रहा। भारतीय सेना कारगिल की लड़ाई (मई, 1999) में पाकिस्तान को करारी मात दी। इस युद्ध में पाकिस्तान की कूटनीति और विदेश नीति दोनों असफल रही। जब युद्ध के बाद पाकिस्तान के विदेश मन्त्री सरताज अजीज 12 जून, 1999 को भारत आए तो उन्होंने कहा कि कारगिल में घुसपैठ करने वाले न तो पाकिस्तान के सैनिक थे और न ही भाड़े के सैनिक थे। भारत ने इस बात पर विश्वास नहीं किया। भारत अच्छी तरह जानता था कि वे पाकिस्तान के सैनिक ही थे जिन्होंने कारगिल में युद्ध किया था। इस युद्ध में पास्तिान को चीन तथा अमेरिका की तरफ से कोई सहयोग नहीं मिला। इसलिए इसमें भारत की ही विदेश नीति की कूटनीतिक

व सैनिक दोनों मोर्चों पर विजय हुई। अमेरिका ने तो इस युद्ध में मध्यस्थता तक करने से भी इन्कार कर दिया। इसके विपरीत 14 जून, 1999 को अमेरिका के राष्ट्रपति क्लिंटन ने भारत के संयम की सराहना की। लेकिन पाकिस्तान की तरफ से प्रतिदिन गोला-बारी की घटनायें बढ़ने लगी और आतंकवाद भी बढ़ने लगा। इस दौरान पाकिस्तान में तख्ता पलट की घटना के बाद मुशर्रफ का सैनिक शासन स्थापित हो गया। भारत ने घोषणा की कि वह पाकिस्तान से उस समय तक कोई बातचीत नहीं करेगा जब तक वहां लोकतन्त्र की बहाली न हो जाती। परन्तु पाकिस्तान द्वारा बार-बार प्रार्थना करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के बढ़ते दबाव के कारण भारत ने पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज मुसर्रफ को भारत आने का निमन्त्रण दिया और 14 से 16 जुलाई 2001 तक आगरा में दोनों देशों के बीच शिखर वार्ता हुई। परन्तु यह वार्ता विफल रही। पाकिस्तान की तरफ से सम्बन्ध सुधारने की दिशा में भारत को कोई आश्वासन नहीं मिला। भारत ने मुशर्रफ से स्पष्ट रूप से कह दिया कि स्थायी शान्ति के लिए जब तक पाकिस्तान नियन्त्रण रेखा का सम्मान नहीं करेगा तथा कश्मीर में नागरिक हत्याओं व आतंकवाद को नहीं रोकेगा, तब तक दोनों देशों में मधुर व सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध सम्भव नहीं है। आगरा शिखर वार्ता में पाकिस्तान ने कश्मीर के मुद्दे को ही प्रमुख बनाकर इसे असफल व अनिर्णित बना दिया।

इसके बाद भी पाकिस्तान ने अपनी आतंकवादी गतिविधियां जारी रखी और अक्तूबर 2001 में श्रीनगर स्थित कश्मीर सचिवालय को बम्ब से उड़ाने का प्रयास किया। उसने 13 दिसम्बर, 2001 को पांच आतंकवादियों के माध्यम से दिल्ली संसद भवन को उड़ाने का भी असफल प्रयास किया। इस घटना की सर्वत्र निन्दा हुई। भारत को इस बात का पूरा विश्वास था कि यह पाक-प्रायोजित आतंकवाद का ही एक हिस्सा था। भारत ने मामले को गम्भीरता से लेते हुए सीमाओं पर अपनी सेनायें तैनात कर दी। उधर पाकिस्तान ने भी जवाब में अपनी सेनाओं को सीमा पर तैनात कर दिया। लेकिन परमाणु युद्ध के खतरे को देखते हुए तथा अन्तर्राष्ट्रीय चिन्ता को ध्यान में रखते हुए भारत ने 16 अक्तूबर, 2002 को अपनी सेनाएं वापिस हटा ली। परन्तु पाकिस्तान की तरफ से अब भी आतंकवादी गतिविधियां जारी रही। पाकिस्तान द्वारा समर्थित आतंकवादियों ने गुजरात के अक्षरधाम मन्दिर, कालुचक तथा जम्मू के रघुनाथ मन्दिर में अपने घ णास्पद कार्यों को अंजाम दिया। भारत द्वारा बार-बार इसका विरोध किया जाता रहा है, लेकिन पाकिस्तान अपनी हरकतों से बाज आने वाला नहीं है। भारत बार-बार पाकिस्तान के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम करने के प्रयास करता रहा है, लेकिन पाकिस्तान ने हर बार कथनी और करनी का अन्तर दिखाया है। भारत ने दोस्ती का हाथ पाकिस्तान की तरफ बढ़ाते हुए 13 जुलाई, 2003 में फिर से दोनों देशों के बीच बस सेवा प्रारम्भ की, राजनयिक सम्बन्ध फिर से जोड़े तथा व्यापारिक सुविधाओं में व द्धि करने का भी कार्यक्रम बनाया। उसके बाद जनवरी, 2004 में भारत ने पाकिस्तान के साथ विमान सेवाएं भी शुरु की और 15 जनवरी को ही रेल सेवा भी पुनः शुरु कर दी। भारत ने 2003 के कुआलालाम्पुर गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में भी कश्मीर के मुद्दे को एक तरफ रखकर पाकिस्तान से दोस्ती का हाथ बढ़ाया लेकिन पाकिस्तान ने भारत पर आरोप लगाया कि भारत कश्मीर के स्वतन्त्रता सेनानियों का दमन कर रहा है। इस तरह के आधारहीन ब्यान देना पाकिस्तान की नियत को स्पष्ट करते हैं कि पाक-राजनीतिक संस्कृति हमेशा भारत-विरोधी वातावरण तैयार करती रही है। लेकिन फिर भी भारत निरन्तर पाकिस्तान के साथ मधुर व सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को प्राथमिकता देता रहा है। मई 2004 में गठित मनमोहन सरकार में प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह तथा विदेश मन्त्री नटवर सिंह ने भी घोषणा की कि भारत नेहरु जी की गुटनिरपेक्षता की नीति को ही प्राथमिकता देगा तथा पाकिस्तान सहित सभी अन्य पड़ोसी देशों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना का प्रयास करेगा। इसी सन्दर्भ में वर्तमान सरकान ने हॉटलाईन समझौता जारी रखने तथा परमाणु मुद्दे पर बातचीत के लिए आपस में मिलने का कार्यक्रम बनाया। इस क्रम में मई महीने में भारत के विदेश मन्त्री पाकिस्तान के विदेश मन्त्री कसूरी से मिले और 27-28 जून, 2004 को दोनों देशों के विदेश

सचिवों की भी आपस में बातचीत हुई। दोनों देशों ने कश्मीर समस्या के साथ-साथ आपसी विश्वास बढ़ाने के लिए बम्बई व कराची में दूतावास खोलने तथा व्यापारिक सम्बन्धों की पुनर्स्थापना की बात स्वीकार की।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि भारत की तरफ से पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारने की विदेश नीति को हमेशा ही पाकिस्तान की तरफ से नकारात्मक परिणाम देखने को मिले हैं। भारत के विश्वास को तोड़ते हुए पाकिस्तान ने बार-बार आपसी सम्बन्धों को सुधारने वाले समझौतों को उल्लंघन किया है। इसके साथ ही पाकिस्तान ने 1948, 1965, 1971 तथा 1999 के युद्ध भी भारत पर थोपे हैं। पाकिस्तान ने ताशकन्द समझौते (1966), शिमला समझौते (1972), व लाहौर समझौते (1999) का तिरस्कार किया है। उसने भारत की तरफ से किए गए एकतरफा शांति प्रयासों (गुजराल सिद्धान्त) का भी मजाक उड़ाया है। पहले पंजाब में और अब जम्मू-कश्मीर में जारी आतंकवाद को पाकिस्तान ने जिस निष्ठा से निभा रहा है, उससे दोनों देशों में कभी सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम नहीं हो सकते। यदि भारत-पाक सम्बन्धों को सुधारना है तो पाकिस्तान को भारत के प्रति अपनी विदेश नीति में बदलाव लाना चाहिए। इसमें अमेरिका की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। जब तक अमेरिका पाकिस्तान पर भारत-विरोधी गतिविधियां समाप्त करने के लिए आर्थिक व सैनिक दबाव नहीं डालता, तब तक पाकिस्तान भारत के प्रति ऐसा ही व्यवहार करेगा। इसके लिए पाकिस्तान में लोकतन्त्र की बहाली एक अनिवार्य शर्त है। सैनिक शासन के तहत भारत-पाक सम्बन्धों के सौहार्दपूर्ण बनने के आसार ना के बराबर है। जब तक पाकिस्तान या तो स्वयं कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियां बन्द न कर दे या ईराक व अफगानिस्तान की तरह अमेरिका इस आतंकवाद को कुचलने में भारत की मदद न करे, तब तक भारत-पाक सम्बन्ध सामान्य व सौहार्दपूर्ण होना असम्भव है। परन्तु निकट भविष्य में ऐसा सम्भव नहीं है। अतः भारत-पाक सम्बन्धों का संघर्षपूर्ण बना रहना अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक सच्चाई ही मानी जानी चाहिए जो भारत के चीन व अमेरिका के साथ भी सम्बन्धों का निर्धारण करती है।

भारत-पाक सम्बन्ध : कश्मीर समस्या

(Indo-Pak Relation : The Kashmir Dispute)

भारत-पाक सम्बन्धों का निर्धारण करने वाली प्रमुख समस्या 'कश्मीर विवाद' है। प थ्वी का स्वर्ग कहा जाने वाला कश्मीर आज भारत-पाक सम्बन्धों का एक ऐसा फोड़ा है जिसका इलाज निकट भविष्य में सम्भव नहीं लगता। यह समस्या 1947 से लेकर अब तक इतनी अधिक उलझ चुकी है कि इसको हल करने के सभी प्रयास निराधार साबित हुए हैं। आज कश्मीर भारत और पाकिस्तान दोनों के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न बना हुआ है। जहां भारत कश्मीर को अपना अभिन्न अंग मानता है, वहीं पाकिस्तान प थक राष्ट्र के रूप में कश्मीर को देखता है।

कश्मीर समस्या की उत्पत्ति उस समय हुई थी जब भारत के विभाजन की प्रक्रिया के तहत रियासतों (Native States) को भारत व पाकिस्तान में मिलाया जा रहा था। बाकी सभी रियासतें तो आसानी से भारत संघ में मिला ली गई, लेकिन हैदराबाद जूनागढ़ तथा कश्मीर पर विवाद उत्पन्न हुआ था। कुछ प्रयासों के बाद हैदराबाद और जूनागढ़ को भी भारत संघ में शामिल कर लिया गया, लेकिन कश्मीर को भारत में मिलाने का काम पूरा नहीं हो सका। इस कार्य में ढील बरतने पर परिणाम आज कश्मीर विवाद के रूप में हमारे सामने है। कश्मीर समस्या को पैदा करने का सारा श्रेय कश्मीर के राजा हरिसिंह तथा प्रधानमन्त्री नेहरु जी को प्राप्त है। राजा हरिसिंह ने मुस्लिम बहुल जनसंख्या वाले कश्मीर को भारत में या पाकिस्तान में मिलाने पर त्वरित फैसला नहीं लिया, बल्कि कश्मीर को स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में देखने का स्वप्न संजोया। उधर पाकिस्तान ने कश्मीर को अपने में मिलाने की योजना बनानी शुरु की। जब लार्ड माउंटबेटन कश्मीर के विलय पर राजा हरिसिंह की राय जानने जून, 1947 में वहां गए तो राजा हरिसिंह ने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया, बल्कि

टालमटोल की नीति अपनाई। महात्मा गांधी ने भी महाराजा हरिसिंह को यह समझाने का प्रयास किया कि वह जल्दी निर्णय ले कि कश्मीर का विलय पाकिस्तान में करना है या भारत में। लेकिन इस बार भी महाराजा हरिसिंह टस से मस नहीं हुए, बल्कि उनका रुख पाकिस्तान के साथ 'यथास्थिति' समझौता' (Standstill Agreement) भी कर लिया तथा बाद में महाराजा ने पंजाब उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायधीश टेकचन्द बक्शी को जम्मू कश्मीर का संविधान तैयार करने के लिए नियुक्त किया तथा साथ में एम०सी० महाजन को अपना प्रधानमन्त्री भी नियुक्त कर लिया। महाराजा ने पाकिस्तान व भारत दोनों से समान दूरी बनाये रखने की घोषणा करते हुए दोनों से मित्रता करने का प्रस्ताव किया। इससे कश्मीर के राजा के मनसूबे स्पष्ट हो गये कि वह कश्मीर को स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में देखना चाहता है।

महाराजा हरिसिंह का कश्मीर को स्वतन्त्र राष्ट्र (Independent State) के रूप में देखने का स्वप्न उस समय चकनाचूर हो गया जब पाक समर्थित कबायलियों ने 22 अक्तूबर, 1947 को कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। अब राजा हरिसिंह की भ्रम निद्रा टूटी कि पाकिस्तान उसका सच्चा हितैषी नहीं है। ये आक्रमणकारी पांच दिन के अन्दर ही श्रीनगर से 25 मील दूर बरामूला तक पहुंच गए। कबायलियों के आक्रमण से आतंकित होकर राजा हरिसिंह ने कश्मीर को भारत में मिलाने के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर दिये तथा भारत से सैनिक सहायता की मांग की। भारत ने राजा हरिसिंह की प्रार्थना स्वीकार करते हुए कश्मीर से कबायलियों को खदेड़ने के लिए अपनी सेना भेज दी। परन्तु विलय की मांग पर नेहरु जी ने कहा युद्ध के बाद शान्ति के वातावरण में हम कश्मीर जनता की राय (जनमत संग्रह) जानकर ही कश्मीर को भारत में मिलायेंगे। वास्तव में नेहरु जी की कूटनीति की यह पहली भारी भूल थी कि वे कश्मीर समस्या को गहराई से नहीं जान सके। यहीं से कश्मीर समस्या की जड़ें गहरी होती गई जो आज एक कैंसर के फोड़े का रूप ले चुकी है। उधर भारतीय सेना ने पाकिस्तान समर्थित कबालियों को निरन्तर पीछे की तरफ हटने को मजबूर कर दिया। यद्यपि इस काम में भारतीय सेना को कुछ बाधा अवश्य आई, क्योंकि कबायलियों को पाकिस्तान से सहायता मिल रही थी।

भारत ने 1 जनवरी, 1948 को कश्मीर का मामला संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया, क्योंकि भारत, पाकिस्तान के साथ प्रत्यक्ष युद्ध से बचना चाहता था तथा शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व (Peaceful Coexistance) की भावना की रक्षा करना भी चाहता था जो भारत की पड़ोसी देशों के प्रति अपनाई जाने वाली विदेश नीति का प्रमुख सिद्धान्त रहा है। भारत ने पाकिस्तान पर आक्रमणकारी होने का आरोप लगाया तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के पाकिस्तानी सेनाओं से कश्मीर क्षेत्र को खाली कराने की मदद मांगी। उधर पाकिस्तान ने भारत पर आरोप लगाया कि उसने असंवैधानिक तरीके से कश्मीर को अपने में मिलाया है। सुरक्षा परिषद ने मामले की गम्भीरता को देखते हुए एक 'पांच सदस्यीय जांच आयोग' स्थिति का जायजा लेने के लिए 20 जनवरी 1948 को नियुक्त किया। इस आयोग ने जांच करने के बाद कहा कि जम्मू कश्मीर में पाकिस्तानी सेनाओं की उपस्थिति गलत है, इसलिए उसे वापिस हट जाना चाहिए ताकि इस क्षेत्र में शान्ति स्थापित हो सके। इसी बीच भारतीय सेनाओं ने पाकिस्तान के कब्जे वाले आधे क्षेत्र को मुक्त करा लिया तथा शेष क्षेत्र पर कबालियों का अधिकार रह गया जिसे उन्होंने बाद में 'आजाद कश्मीर' की स्थापना की। इस क्षेत्र को आजकल पाक-अधिकृत कश्मीर (Pak Occupied Area) कहा जाता है। इस क्षेत्र को प्राप्त करने के लिए भारत आज तक भी सफल नहीं हो सका है।। इसी क्षेत्र से पाकिस्तान अपनी आतंकवादी गतिविधियों का संचालन करके भारत की सुरक्षा व्यवस्था के लिए चुनौती पैदा करता है।

सुरक्षा परिषद ने 15 अगस्त 1948 को एक युद्ध-विराम सन्धि का प्रस्ताव किया। यह प्रस्ताव उस समय आया जब आक्रमणकारी कश्मीर से खदेड़े जा चुके थे। इस प्रस्ताव के अनुसार कश्मीर से पाकिस्तान को अपनी सेनाएं हटाने के लिए कहा गया तथा अन्तिम समझौता हो जाने तक वहां भारतीय सेनाओं की निश्चित मात्रा में उपस्थिति आवश्यक मानी गई। इसमें शान्तिपूर्ण वातावरण

बन जाने पर कश्मीर में जनमत संग्रह (Plebiscite) कराने की बात भी कही गई। पाकिस्तान ने कभी भी इस बात को स्वीकार नहीं किया कि वह इस क्षेत्र से अपनी सेनाएं हटा लेगा। उधर भारत ने मांग रखी कि जब तक पाकिस्तान कश्मीर से अपनी पूरी सेना नहीं हटा लेता तब तक जनमत संग्रह का सवाल ही पैदा नहीं होता। 5 जनवरी 1949 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्य प्रस्ताव पास करके दोनों देशों से अपने सैनिक वापिस बुलाने की बात कही जिसे पाकिस्तान ने अस्वीकार कर दिया। संयुक्त राष्ट्र द्वारा गठित (20 जनवरी, 1949) को संयुक्त राष्ट्र आयोग ने अपनी रिपोर्ट जनवरी 1941 में दी तो उसके बाद दोनों देश युद्ध-विराम समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार हो गए। इसमें मुख्य पर्यवेक्षक का उत्तरदायित्व चेस्टर निमिट्ज को दिया गया। पाकिस्तान ने युद्ध-विराम समझौते का ईमानदारी से पालन नहीं करने के कारण चेस्टर निमिट्ज़ ने जल्दी ही त्यागपत्र दे दिया।

अब तक यह स्पट हो चुका था कि पाक-अधिकृत क्षेत्र से अपनी सेनाएं हटाने में पाकिस्तान की कोई रुचि नहीं है। इसलिए संयुक्त राष्ट्र संघ आयोग के युद्ध-विराम प्रस्तावों को कराने के लिए 1949 के अन्त में सुरक्षा परिषद के प्रधान जनवरी मैकनाटन ने अपनी एक योजना (The Mc Naughton Plan) प्रस्तुत की, जिसके अनुसार दोनों देशों को कश्मीर से अपनी सेनायें हटाना था। यह योजना भेदभावपूर्ण थी, क्योंकि इसमें आक्रमणकारी तथा आक्रमण-प्रभावित देश में कोई अन्तर नहीं किया था। इसलिए भारत ने इसे अस्वीकार कर दिया। भारत के प्रतिनिधि बी० एन० राव ने सुरक्षा परिषद् में कहा "आज स्थिति यह है कि पाकिस्तान 1948 से कहता रहा है कि उसने आक्रमण करने वालों या आजाद कश्मीर की सेनाओं की कोई सहायता नहीं की, वह अब स्वयं आक्रामक है और बिना किसी अधिकार के राज्य के लगभग आधे भाग पर उसका कब्जा है। यह एक ऐसा नग्न आक्रमण है जिसका कोई अनुमोदन नहीं करता, मैकमॉटन योजना भी नहीं।" मैकमॉटन योजना की असफलता के बाद शान्ति प्रस्ताव को लागू करवाने के लिए 24 फरवरी, 1950 को आस्ट्रेलिया के उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश डिकशन को नियुक्त किया गया। डिक्शन प्रस्ताव (The Dixon Proposals) में कहा गया **कि पांच महीने के अन्दर दोनों देशों की सेनाएं वापिस बुला ली जाएं तथा कश्मीर में जनमत सग्रह कराया जाये।** डिकशन प्रस्ताव का भारत ने पालन नहीं किया क्योंकि वह आक्रमणकारी नहीं था। स्वयं डिकशन ने स्वीकार किया कि कश्मीर में कबायलियों का आक्रमण तथा पाकिस्तानी सेनाओं का प्रवेश अन्तर्राष्ट्रीय विधि उल्लंघन था। फिर भी डिकशन ने सुझाव दिया कि युद्ध विराम रेखा का पालन करते हुए कश्मीर का विभाजन कर दिया जाये। परन्तु भारत ने इसकी आलोचना की। स्वयं डिकशन ने भी अपनी गलती स्वीकार करते हुए त्यागपत्र दे दिया और कश्मीर समस्या पर भारत और पाकिस्तान के बीच सीधी वार्ता का सुझाव प्रस्तुत किया।

डिकशन प्रस्ताव मी असफलता के बाद लन्दन में हुए राष्ट्रमण्डल सम्मेलन में कहा गया कि कश्मीर का असैन्यीकरण करवाया जाये तथा फिर इस विवाद को पंच-निर्णय (Arbitration) के लिए सौंप दिया जाये। इसी दौरान अब्दुला सरकार ने जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए एक नया संविधान बनाने की योजना बनाई तो पाकिस्तान ने हताश होकर कश्मीर समस्या को फरवरी 1951 में सुरक्षा परिषद में फिर उठाया। अब सुरक्षा परिषद ने डिकशन के स्थान पर अमेरिका के फ्रैंक ग्राह्म (Frank Graham) को संयुक्त राष्ट्र की तरफ से कश्मीर समस्या का समाधान करने के लिए नियुक्त किया। ग्राह्म ने भी जनमत संग्रह से पहले कश्मीर में दोनों देशों द्वारा अपनी अपनी सेनाएं हटाने का प्रस्ताव रखा। परन्तु इस प्रस्ताव पर भी सहमति नहीं बन सकी और यह भी कश्मीर विवाद को हल करने में नाकाम रहा। इसके बाद भारत और पाकिस्तान ने कश्मीर समस्या को हल करने के लिए 1953 से 1954 तक आपस में वार्तायें कीं लेकिन इनके कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकले। यद्यपि इन वार्ताओं में जनमत संग्रह की बात पर तो सहमति हो गई थी, लेकिन जनमत-संग्रह प्रशासनिक (Plebiscite Administrator) के नाम पर कोई सहमति न होने के कारण यह व्यवस्था व्यावहारिक

नहीं बन सकी। इसी समय कश्मीर में व्यस्क मताधिकार के आधार पर संविधान सभा के चुनाव हुए और संविधान सभा ने 6 फरवरी, 1954 को कश्मीर का भारत में विलय अनुमोदित कर दिया तथा 19 नवम्बर 1956 को इसे भारत का अभिन्न अंग मान लिया गया।

पाकिस्तान कश्मीर के भारत में विलय को कैसे स्वीकार कर सकता था। उसने जनमत संग्रह का बार-बार जिक्र किया। पाकिस्तान ने दुबारा संयुक्त राष्ट्र संघ से मांग को भारत ने कश्मीर का अवैधानिक तरीके से विलय कर लिया है और जनमत संग्रह की बात टाल रहा है। सुरक्षा परिषद ने इस स्थिति में 16 जनवरी, 1957 की बैठक में विचार किया। इस बैठक में भारत का प्रतिनिधित्व रक्षा मन्त्री वी०के० कृष्ण मेनन ने किया। पाकिस्तान ने बैठक में कहा कि कश्मीर के भारत में विलय से कश्मीर की स्थिति अधिक भयावह हो गई है। इसलिए इस समस्या का शीघ्र हल होना चाहिए। 15 फरवरी, 1957 को सुरक्षा परिषद् के सभापति डा० गुन्नार जारिंग को इस समस्या का समाधान करने के लिए नियुक्त किया गया। इस बैठक में पाकिस्तान की तरफ से कश्मीर में संयुक्त राष्ट्र सेनाएं भेजने के प्रस्ताव को भारत ने अस्वीकार कर दिया। बैठक में सोवियत संघ के प्रतिनिधि ने कहा कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और साथ में संयुक्त राष्ट्र सेना भेजने वाले प्रस्ताव को भी वीटो कर दिया। इसके बाद दूसरा प्रस्ताव लाया गया जिसमें कहा गया कि जारिंग स्वयं जाकर इस समस्या का समाधान निकाले। इसके बाद जारिंग करांची तथा दिल्ली गए, लेकिन वे भी इस समस्या को हल नहीं कर सके। इसके बाद कश्मीर समस्या का समाधान करने के लिए डॉ० फ्रैंक ग्राह्म को फिर से भारत भेजने पर विचार हुआ। ग्राह्म ने भारत आकर दोनों देशों के साथ व्यापक विचार-विमर्श करने के बाद 3 अप्रैल, 1958 को अपना 13 प ष्ठीय प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए कहा-

(i) दोनों देश कश्मीर समस्या पर आपत्तिजनक वकतव्य न दें।

(ii) युद्ध-विराम रेखा का उल्लंघन न किया जाये।

(iii) जनमत संग्रह पर दोनों आपस में समझौता करें।

(iv) इस क्षेत्र से पाकिस्तान पहले अपनी सेनाएं हटाये और उसके बाद भारत भी संयुक्त राष्ट्र आयोग की सहमति से ऐसा ही करे।

भारत ने इस प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया और तर्क दिया कि पाकिस्तान ने 1948 में स्वीकृत प्रस्ताव को अभी तक अमल में नहीं लाया है। दूसरा कारण यह भी था कि इस प्रस्ताव में पाक को आक्रमणकारी घोषित नहीं किया गया था। भारत ने जनमत संग्रह का कोई औचित्य नहीं है। इस तरह यह प्रयास भी असफल हो गया। इसके बाद यह समस्या उलझी पड़ी रही। कई बार मन्त्री स्तर पर इस समस्या को हल करने के लिए नाकाम प्रयास भी हुए। फरवरी 1965 में यह सुरक्षा परिषद में फिर लाई गई, लेकिन इसका कोई समाधान नहीं हो सका। यह समस्या बार-बार भारत पाक सम्बन्धों को गलत दिशा में धकेलती रही है और आज भी ज्यों की त्यों है।

कश्मीर समस्या को लेकर दोनों एक दूसरे पर बार-बार आरोप-प्रत्यारोप लगाते रहे हैं। दोनों ही देश कश्मीर पर अपने-अपने दावे प्रस्तुत करते रहे हैं। पाकिस्तान के तर्क हैं कि भारत ने जनमत संग्रह न कराकर अवैध तरीके से कश्मीर का विलय किया है। इसके साथ ही दो राष्ट्रों (Two Nations) के आधार पर मुस्लिम जनसंख्या का बाहुल्य होने के कारण भी कश्मीर पर उसका ही हक है क्योंकि भारत-पाक विभाजन का आधार भी यही था। इसके अलावा कश्मीर से निकलने वाली नदियां पाकिस्तान की कृषि अर्थव्यवस्था का आधर हैं। यदि कश्मीर में कोई अमैत्रीपूर्ण सरकार बन जाए जो पाकिस्तान की विरोधी हो तो यहां की कृषि तो बर्बाद हो जायेगी। परन्तु 1961 में पाकिस्तान के साथ जल सन्धि हो जाने पर यह तर्क निराधार है। इसके साथ ही पाकिस्तान यह भी तर्क देता है कि पाकिस्तान के बाजार कश्मीर के अधिक निकट हैं। दोनों की अवर्थव्यवस्था एक दूसरे पर युगों से आश्रित रही है। भौगोलिक द ष्टि से भी पाकिस्तान व कश्मीर एक दूसरे के निकट हैं। पाकिस्तान की सेना कश्मीर के युवकों पर ही निर्भर करती है। इन सब कारणों से

पाकिस्तान कश्मीर पर अपना दावा प्रस्तुत करता है। इसके विपरित भारत दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को अस्वीकार करता रहा है। मुसलमान तो भारत में भी हैं। यदि दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को भारत मानता तो आज भारत में मुसलमन न होते। आज भारत कश्मीर में जो आर्थिक व सैनिक सहायता दे रहा है, वह पाकिस्तान के वश की बात नहीं है। भारत का कहना है कि कश्मीर का भारत में विलय 1947 के भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम के तहत ही हुआ है और कश्मीर को संविधान सभा ने इस विलय का अनुमोदन किया है। इसलिए इस विलय को अवैध कहना गलत है। आज पाकिस्तान कश्मीर में जिस आत्म-निर्णय के अधिकार की बात करता है, उसने अपने में शामिल रियासतों को यह अधिकार क्यों नहीं दिया। वह एक आक्रमणकारी देश होने के नाते आत्म-निर्णय के अधिकार का औचित्यपूर्ण समर्थक कैसे बन सकता है। पाकिस्तान ने स्वयं 1948 के संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया तो वह आज किए अधिकार से कश्मीर पर अपना दावा प्रस्तुत करता है।

कश्मीर समस्या वास्तव में नेहरु जी की उदारवादी प्रव त्ति की ही देन है। यदि हैदराबाद और जूनागढ़ की तरह नेहरू जी ने ग हमन्त्री सरदार पटेल को पूरी छूट दे दी होती तो कश्मीर का विलय कोई कठिन कार्य नही था। उसके बाद जब कबायली आक्रमण हुआ तब भी नेहरु जी ने जनमत संग्रह की बात करके इस समस्या को पेचीदा बना दिया। धीरे-धीरे यह समस्या एक कैंसर का फोड़ा बन गई और आज भी यह भारत-पाकिस्तान के बीच तनाव का प्रमुख कारण है। कश्मीर को हथियाने के चक्कर में पाकिस्तान ने भारत पर 1965, 1971 तथा 1999 में आक्रमण किए। वह निरन्तर कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियां जारी रखे हुए है। कश्मीर विवाद के कारण ही पाकिस्तान अमेरिका के साथ सम्बन्धों को प्राथमिकता देता है। इस विवाद में सोवियत संघ का रुख हमेशा ही भारत के पक्ष में रहा है। पाकिस्तान द्वारा कबायली आक्रमण करके कश्मीर के कुछ भाग को हथिया लेना भारत की विदेश नीति के लिए अपमान की बात है। पाकिस्तान ने चीन को भी पाक-अधिकृत कश्मीर की कुछ भूमि दी है। कश्मीर का वह क्षेत्र जिस पर आज पाकिस्तान कब्जा जमाए हुए है, उस पर भारत का ही हक बनता है। लेकिन पाकिस्तान इस बात को कभी स्वीकार नहीं कर सकता। कश्मीर समस्या ने भारतीय अर्थव्यवस्था को एक बहुत बड़ा हिस्सा चौपट किया है। भविष्य में इस समस्या के समाधान के आसार नहीं हैं और इस परिस्थिति में कारगिल जैसे आक्रमण भारत को और झेलने पड़ सकते हैं। कश्मीर को लेकर पाकिस्तान द्वारा समर्थित आतंकवाद आज भारत के लिए गम्भर खतरा बना हुआ है। बम्बई बम्ब काण्ड, अक्षरधाम मन्दिर पर हमला, 2001 में भारतीय संसद पर हमला, कालुचक नरसंहार आदि न जाने कितनी ही आतंकवादी गतिविधियों ने बेकसूर जनता की जानें ली हैं। परन्तु भारत इस समस्या से निजात पाने के लिए निरन्तर जूझ रहा है। कश्मीर से हजारों लोग पलायन करके भारत के अन्य राज्यों में विस्थापितों की तरह रह रहे हैं। पाकिस्तान अपनी गलती स्वीकार करने को कभी तैयार नहीं हुआ है। वह तो हमेशा स्वप्न में भी कश्मीर की रट लगाए हुए है। जब तक कश्मीर समस्या का समाधान नहीं हो जाता, तब तक भारत-पाक सम्बन्धों का सामान्य होना असम्भव है। पाकिस्तान द्वारा भारत विरोधी रुख अपनाया जाना ही कश्मीर विवाद को अधिक जटिल बनाता रहा है। इसमें अमेरिका की तरफ से मिलने वाला आशीर्वाद पाकिस्तान की गलत भावना को गति दे रहा है।

अध्याय-11

भारत-चीन सम्बन्ध : नीति व निष्पादन

(Indo-China Relations : Policy and Performance)

भारत और चीन एशिया के दो बड़े देश हैं जो लम्बे समय तक ब्रिटिश उपनिवेशवाद (Colonalism) का शिकार रहे हैं। इसलिए दोनों देशों की विदेश नीति स्वतन्त्रता से पूर्व ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित की जाती थी। भारत और चीन के बीच सम्बन्धों का इतिहास काफी पुराना है जिसे पश्चिमी उपनिवेशवाद से कुछ समय के लिए बाधित कर दिया था। लेकिन भारत द्वारा 1949 में साम्यवादी क्रान्ति के (Communist Revolution) बाद चीन में नए शासन का उदय हुआ तो भारत-चीन सम्बन्धों का नई दिशा मिली। 1959 तक ये सम्बन्ध स्वर्णिम रहे। इसके बाद तिब्बत की समस्या तथा सीमा विवाद को लेकर कुछ तनाव उत्पन्न हुआ जिसकी अन्तिम परिणति भारत-चीन युद्ध (1962) के रूप में हुई। इसके बाद लगभग 15 वर्ष तक भारत ने चीन के साथ अधिक घनिष्ठता स्थापित करने से स्वयं को बचाए रखा। परन्तु 1976 में भारत-चीन सम्बन्धों के नये अध्याय की शुरुआत हुई। 1988 के बाद तो सहयोगात्मक सम्बन्धों की दिशा में दोनों तरफ से प्रयास किये गये और 1999 में सम्बन्धों में एक नवीन सांझेदारी की शुरुआत हुई। यद्यपि आज भारत-चीन में कुछ बातों को लेकर मतभेद अवश्य हैं, लेकिन कुल मिलाकर भारत-चीन के आपसी सम्बन्ध पाकिस्तान की तुलना में काफी सौहार्दपूर्ण रहे हैं। हाल ही में चीन द्वारा सिक्किम को भारत का अभिन्न अंग स्वीकार करने से दोनों देशों के आपसी सम्बन्धों में नया अध्याय जुड़ गया है। भारत-चीन सम्बन्धों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :-

(1) भरत-चीन सम्बन्धों की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि

(Historical Background of Indo-China Relations)

भारत और चीन के सम्बन्धों का इतिहास काफी पुराना है। भारत चीनी सम्बन्धों का पुराना इतिहास बताता है कि चीन में बौद्ध धर्म भारत के रास्ते ही गया। चीन के लोग बौद्ध धर्म के बारे में जानने के लिए अशोक-युग में भारत आए। गुप्तकाल में चीनी यात्री भी भारत आए। इन यात्रियों में फाह्यान तथा ह्युनसांग थे जिन्होंने भारतीय कला का ज्ञान प्राप्त किया। भारत के समाट हर्षवर्द्धन, कश्मीर शासकों तथा कई राजाओं ने चीन के सम्राटों के पास अपने राजदूत भेजे तथा सम्राटों के राजदूत भारत के शासकों के दरबाद में आए। लेकिन मध्ययुग में मंगोलों और तुर्कों के आगमन से भारत-चीन सम्बन्ध टूट गये। बाद में जब चीन व भारत में उपनिवेशवाद का प्रारम्भ हुआ तो दोनों देश ब्रिटिश साम्राज्य से जुड़ गये। जब चीन का शोषण करने के लिए भारत के साधनों का प्रयोग किया जाने लगा तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने इसका तीव्र विरोध किया। 1927 के

ब्रुसेल्स सम्मेलन (Brussels Conference) में शोषित और पीड़ित देशों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए इस समय भारत और चीन के प्रतिनिधियों ने पश्चिमी साम्राज्यवाद को पराजित करने क लिए भारत-चीन सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया। जब 1931 कें जापान ने चीन के मंचूरिया प्रान्त पर आक्रमण किया तब भी भारत ने इसकी आलोचना की और चीन के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए 'चीन दिवस' (China Day) मनाया। 1937 में जब जापान ने चीन पर आक्रमण किया तब भी भारत ने इनकी आलोचना की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने चीन में एक चिकित्सा दल भी भेजा। इसके पीछे यही लक्ष्य था कि स्वतन्त्रता के बाद भारत-चीन सम्बन्ध मधुर बने। मार्च 1947 में नेहरु जी के प्रोत्साहन से जब सांस्कृतिक विश्व परिषद ने दिल्ली में जब एक एशियाई सम्मेलन बुलाया तो उसमें चीन का प्रतिनिधि भी शामिल हुआ। भारत ने चीन में चल रही साम्यवादी क्रान्ति का भी समर्थन किया। जब 1 अक्तूबर 1949 को साम्यवादी क्रान्ति के सफल होने पर चीन के जनवादी लोकतन्त्र (People's Democracy) की स्थापना हुई तो भारत ने उसका पूरा समर्थन किया और 30 दिसम्बर, 1949 को साम्यवादी चीन को मान्यता भी प्रदान की। इस तरह भारत ने चीन के साथ मधुर सम्बन्धों की नींव को सुद ढ़ किया।

(2) 1949 से चीनी-आक्रमण (1962) तक भारत-चीन सम्बन्ध

(Indo-Pak Relations from 1949 to Chinese Attack of 1962)

भारत ने 1949 में साम्यवादी चीन को राजनयिक मान्यता देकर सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की शुरुआत की। भारत ने 1949 में के०एम० पणिकर को चीन में राजदूत बनाकर भेजा। भारत ने चीनी क्रान्ति को नव जागरण का प्रतीक बताया और नये गणराज्य को संयुक्त राष्ट्र संघ में उचित स्थान दिलाने का प्रयास भी किया। भारत ने अमेरिका की परवाह न करते हुए 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का नारा दिया। 1950 में भारत ने कोरिया संकट (Korean Crisis) के समय चीन को आक्रान्ता घोषित करने के प्रस्ताव का विरोध किया तथा चीन का पक्ष लिया। 1951 में सेन फ्रांसिसको सम्मेलन (Fransisco Conference) में भारत ने जापान के साथ शान्ति सधि घोषणा पर हस्ताक्षर न करके तथा फारमूसा द्वीप को चीन में विलय का समर्थन करके चीन के प्रति अपने लगाव को प्रकट किया। 29 अप्रैल 1954 को दोनों देशों की बीच एक व्यापारिक समझौता (Trade Agreement) हुआ और भारत ने तिब्बत में प्राप्त अपने अधिकार चीन को सौंप दिये तथा बदले में कुछ नही मांगा। इस समझौते को नेहरु जी ने पंचशील-सिद्धान्त (Principles of Panchseel) के अनुसार ढालकर चीन के साथ अनूठी दोस्ती की मिसाल कायम की। 1954 में चीनी प्रधानमन्त्री चाऊ-एन-लाई भारत आए और नेहरु जी ने भी चीन की यात्रा की। इस तरह भारत द्वारा चीन के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की पहल की गई। दोनों देशों ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा रंगभेद की नीतियों का विरोध करने में भी सांझेदारी दिखाई तथा आपसी सम्बन्धों को सुद ढ़ बनाने के प्रयास किये। लेकिन इसके बावजूद तिब्बत और सीमा को लेकर दोनों के बीच तनाव भी जारी है।

(i) तिब्बत-विवाद

(The Problem of Tibet)

इस युग में सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को बिगाड़ने वाली दो प्रमुख घटनाएं घटी। यह घटनाएं थीं-तिब्बत विवाद तथा सीमा-विवाद (The Problem of Tibet and Border Dispute)। तिब्बत, भारत और चीन के मध्य स्थित एक ऐसा क्षेत्र है जिस पर चीन का प्राचीन प्रभुत्व रहा है। इसके बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए कर्जन ने 1905 में तिब्बत में दलाई लामा को एक सन्धि करने को बाध्य किया था। उसके बाद 1906 में ब्रिटेन और चीन के बीच हुई सन्धि के द्वारा भी ब्रिटेन ने चीन की तिब्बत पर सर्वोच्चता स्वीकार कर ली थी। इस सन्धि के अनुसार यह तय हुआ कि तिब्बत की राजधानी

ल्हासा (Lhasa) में एक भारतीय प्रतिनिधि रहेगा। इस सन्धि के अनुसार यह भी तय हुआ कि यांतुग, ग्यान्तसे और गारटोक में भारत की व्यापारिक एजेंसियां स्थापित की जायेंगी तथा ग्यान्तसे तक डाक-तार घर स्थापित करने तथा भारत सरकार को अपने व्यापारिक मार्ग की सुरक्षा के लिए तिब्बत में कुछ सेना का भी अधिकार होगा। परन्तु चीन ने तिब्बत की स्वायत्तता (Autonomy) को बार-बार नष्ट करने का प्रयास किया। जब चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई तब तिब्बत ने ल्हासा से 'कोमिन्तांग मिशन' को हटाने का प्रयास किया। चीन ने तिब्बत के इस प्रयास को शंका की द ष्टि से देखा। इसलिए जनवरी 1950 में चीन के तिब्बत के साम्राज्यवादी षड्यन्त्रों से मुक्त करने की घोषणा कर दी। भारत चीन के इस षड्यन्त्र के खिलाफ था, क्योंकि चीन, तिब्बत में भारत के विशेषाधिकारियों को कुलचना चाहता था। भारत चाहता था कि तिब्बत को एक स्वतन्त्र शासन इकाई बना दिया जाये, लेकिन चीन ने इसकी परवाह न करते हुए 25 अक्तूबर, 1950 को तिब्बत के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही शुरु कर दी। भारत ने इसका विरोध किया। इसके उत्तर में चीन ने भारत पर आरोप लगाया कि वह साम्राज्यवादियों के बहकावे में आकर उसके मामलों में हस्तक्षेप कर रहा है। इस वातावरण से घबराकर दलाई लामा तिब्बत छोड़र चले गये और उन्होंने तिब्बत के मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाने का असफल प्रयास किया। इससे भारत-चीन सम्बन्धों में अस्थायी रूप से तनाव उत्पन्न हो गया। बाद में 23 मई, 1951 को चीन और तिब्बत में एक समझौता हो गया। इस समझौते के तहत तिब्बत को सीमित स्वायत्तता (Limited Autonomy) दे दी गई। इससे भारत के सम्मान को ठेस पहुंची, क्योंकि भारत तिब्बत में पूर्ण स्वायत्तता चाहता था। 1954 में जब चीन के प्रधानमन्त्री चाऊ-एन-लाई भारत आये तो पंचशील के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके भारत ने तिब्बत-चीन समझौते को मान्यता दे दी।

मार्च 1958 में तिब्बत की जनता ने चीन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह को दलाई लामा का पूरा समर्थन प्राप्त था। चीनी शासकों ने इस विद्रोह को अमानवीय तरीके से कुचलना शुरु किया तो दलाई लामा को तिब्बत छोड़कर भागना पड़ा। दलाई लामा ने भारत में शरण ली। चीन ने भारत पर आरोप लगाया कि वह विद्रोह में तिबब्त की मदद कर रहा है। भारत ने स्पष्ट किया कि यद्यपि वह तिब्बत की स्वायत्तता का पूरा समर्थन करता है, लेकिन वह किसी प्रकार की हिंसा के पक्ष में नहीं है और न ही उसका तिब्बत में हस्तक्षेप का कोई इरादा है। चीन ने भारत द्वारा तिब्बत शरणार्थियों की मदद को शत्रुतापूर्ण कार्य बताया और भारत पर साम्राज्यवादी होने का आरोप लगाया। चीन ने तिब्बत की स्वायत्तता समाप्त कर दी और भारत के साथ लगती उत्तरी सीमाओं पर चीनी सेना को तैनात कर दिया। भारत ने चीन की वैधानिक स्थिति का पूरा समर्थन किया। प्रधानमन्त्री नेहरु ने कहा "हमारे लिए यह महत्वपूर्ण है कि हम महान् देश चीन के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखें, हमारी सहानुभूति फिर भी तिब्बत की जनता के साथ है। हम तिब्बत के लोगों के साथ भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की इच्छा रखते हैं।" लेकिन चीन ने भारत की भावनाओं का आदर नहीं किया और भारत के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार किया। तिब्बत विवाद को लेकर दोनों देशों ने जो शीत युद्ध चला, उसने भारत-चीन सम्बन्धों को बिगाड़ दिया।

(ii) सीमा विवाद

(Border Dispute)

इसी दौरान भारत चीन सम्बन्धों को बिगाड़ने वाला दूसरा पहलू सीमा-विवाद (Boundry Dispute) से सम्बन्ध रखता है। तिब्बत की घटनाओं के दौरान ही चीन ने भारत की सीमाओं का अतिक्रमण शुरु कर दिया। भारत की सीमाओं को पार कर चीनी सेनाओं के भारतीय क्षेत्रों में प्रदेश का औचित्य सिद्ध करने के लिए चीन ने कहा कि चीन के सुरक्षा बलों की चेतावनी के बावजूद भारत की सुरक्षा

सेनाएं अवैध रूप से चीनी क्षेत्र में रह रही थी। चीनी सरकार ने 1950-51में मानचित्र में भी भारत के एक बहुत बड़े क्षेत्र को चीन में दिखाया था। जब भारत ने उसकी इस बात को गलत कहा तो उसने कहा कि ये नक्शे गलती से बन गये हैं और चीनी सरकार इन्हें जल्दी ही सुधार लेगी। वस्तुतः भारत और चीन का सीमा-विवाद दो सीमान्तों के ऊपर है। उत्तर-पूर्व में मैकमोहन रेखा (Mc Mohan Line) और उत्तर-पश्चिम में लद्दाख। भारत मैकमोहन रेखा को अपने और चीन के मध्य एक निश्चित सीमान्त रेखा मानता है। यह रेखा 1914 में शिमला में हुए ब्रिटिश भारत, चीन और तिब्बत के प्रतिनिधियों के सम्मेलन में निर्धारित की गई थी। इस सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व आर्थर हेनरी मैकमोहन ने किया। इसलिए इसके द्वारा निर्धारित सीमा रेखा मैकमोहन रेखा कहलाती है। यह रेखा एक तरह से प्राकृतिक सीमा रेखा भी है। भारत ने हमेशा ही इस सीमा रेखा का आदर किया है। भारत और चीन के बीच दूसरा सीमान्त लद्दाख है। लद्दाख सीमा क्षेत्र का निर्धारण किसी सन्धि का परिणाम नहीं है, बल्कि यह तो दोनों देशों द्वारा सहर्षता से स्वीकार सीमा रेखा है।

भारत-चीन सीमा विवाद की वास्तविक शुरुआत तो 1956-57 में हुई जब चीन द्वारा अकसाई चिन (Aksai Chin) क्षेत्र से निकलती एक सड़क का निर्माण किया गया, लेकिन सीमा-विवाद, तिब्बत समस्या के साथ ही जन्म ले चुका था। 1954 में चीन ने भारत पर आरोप लगाया कि भारतीय जवानों ने चीन के तथाकथित प्रदेश में स्थित बू जे (बाराहूती) पर अवैध रूप से कब्जा कर लिया है। जबकि यह क्षेत्र भारत में है। भारत ने आरोप लगाया कि चीनी अधिकारी बार-बार भारतीय प्रदेश का अतिक्रमण कर रहे हैं। 1954 में चीन ने भारत के 48000 वर्ग मील क्षेत्र को भी अपने मानचित्र में दिखाया। जब चीनी प्रधानमन्त्री भारत आये तो उन्हें इस गलत कार्य की जानकारी दी गई तो उन्होंने इस भूल को सुधारने का आश्वासन दिया। परन्तु चीन की मन्शा गलत थी। जब चीन ने 23 जनवरी 1959 को भारत को एक पत्र लिखकर भेजा जिसमें भारत की हजारों मील भूमि पर चीन ने अपना दावा जताया तो भारत के होश उड़ गए। जुलाई 1959 तक चीन ने अकसाई चिन क्षेत्र में 1100 मील लम्बी सड़क बना ली और वहां अपने सैनिकों को तैनात किया। इसी दौरान अकसाई चिन में भारत की एक गश्ती टुकड़ी को लद्दाख के खुर्नक किले में चीनी सेना ने आकर बन्दी बना लिया। अगस्त के आरम्भ में चीन की सेना की एक टुकड़ी सीमा पार करके भारत के अरुणाचल प्रदेश में घुसपैठ कर गई। अक्तूबर 1959 में चीनी सेनाओं ने सीमा पार घुसकर 50 मील अन्दर जाकर भारतीय जवानों पर हमला बोल दिया जिसमें नौ की मौत हो गई और दस को बन्दी बना लिया गया। भारत ने चीन को कहा कि भारत के उस क्षेत्र से अपनी सेनाएं दक्षिण की तरफ हटा लेगा जिसे चीन अपनी सीमा रेखा मानता है। परन्तु इसके साथ ही चीन को भी पीछे हटना होगा। चीन ने इसे स्वीकार नहीं किया। भारत ने चीन के साथ सीमा-विवाद हल करने के लिए कई प्रयास किये, लेकिन परिणाम शून्य रहे। इससे दोनों देशों के बीच तनाव का बढ़ना स्वाभाविक ही था। जब सम्बन्धों में अधिक तनाव हो गया तो भारत और चीन के प्रधानमन्त्रियों ने अप्रैल 1960 में प्रत्यक्ष बातचीत करके विवाद को समाप्त करने का प्रयास किया। लेकिन इसका कोई हल नहीं निकला। इसके बाद भारत ने सीमाओं पर अपनी 50 सैनिक चौकियां स्थापित कर दी। इसका चीन ने कड़ा विरोध किया। इस तरह भारत और चीन के बीच सीमा-विवाद और अधिक गहरा होता चला गया तथा उसकी अन्तिम परिणति भारत-चीन युद्ध (1962) के रूप में हुई।

(iii) भारत-चीन युद्ध : 1962

(Indo-China War : 1962)

चीन ने 12 जुलाई 1962 को लद्दाख की गलबान घाटी में स्थित भारत की एक पुलिस चौकी पर

कब्जा कर लिया। चीन पहले ही भारत की 25000 वर्ग मील भूमि पर कब्जा कर चुका था। अपने अनौचित्यपूर्ण कार्यों को सही सिद्ध करने के लिए सितम्बर 1962 में भारत पर आक्रामक कार्यवाहियां थोप दी। 8 सितम्बर, 1962 को चीन ने मैकमोहन रेखा पार करके अरुणाचल प्रदेश (नेफा) में प्रवेश किया और भारत के कुछ क्षेत्र को हड़प लिया। भारत की सेना उस समय पर्वतीय युद्ध के लिए तैयार नहीं थी। लेकिन फिर भी सरकार ने सेनाओं को आदेश दिया कि चीनी सेनाओं को दूसरी तरफ धकेलकर अपनी धरती को मुक्त करा लें। प्रारम्भ में तो भारतीय सेनाओं को कुछ सफलता मिली और उन्होंने चीनी सेनाओं को कुछ पीछे धकेल दिया। परन्तु 20 अक्तूबर 1962 को चीनी सेनाओं ने उत्तर-पूर्वी सीमान्त तथा लद्दाख के मोर्चे पर एक साथ तीव्र गति से आक्रमण कर दिया। भारत को ऐसे आक्रमण की आशा नहीं थी। 25 अक्तूबर तक चीनी सेनाएं, भारतीय सेनाओं को खदेड़ती हुई मैकमोहन रेखा से 16 मील दक्षिण तक चली गई। 16 नवम्बर तक वे असम के मैदानी भागों में पहुंच गई। लद्दाख का तथा असम का वह भाग अब चीनीयों के कब्जे में था जिसे वह अपने मानचित्र में दर्शाता था। इस युद्ध में चीनी सेना ने भारतीय सेना को करारी मात दी। अचानक चीन ने 21 नवम्बर 1962 को युद्ध-विराम (Cease Fire) की घोषणा करके सबको चौंका दिया। भारत ने युद्ध विराम के बाद 8 सितम्बर की स्थिति में चीन को लौट जाने को कहा। चीन ने भारत की इस माँग को अस्वीकार कर दिया और कहा कि इस तरह से अड़े रहने पर सीमा संघर्ष नहीं सुलझ सकता। इसके साथ ही चीन ने भारत को धमकी भरा पत्र भी लिखा। भारत ने चीन के युद्ध विराम प्रस्ताव का विरोंध किया। परन्तु चीन ने भारत के बन्दी बनाए गए सैनिकों को युद्ध-विराम के बाद स्वेच्छा से लौटाना शुरु कर दिया।

इस युद्ध ने भारत की गुटनिरपेक्षता की पोल खोल दी। अब भारत जान गया कि कोरा आदर्शवाद अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में काम नहीं आ सकता। इसलिए भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति को व्यावहारिक बनाने के प्रयास शुरु कर दिये। उसने अमेरिका से सैन्य सहायता लेना स्वीकार किया। चीन ने भारत पर आरोप लगाया कि अब भारत गुटनिरपेक्षता त्यागकर अमेरिका का पिछलग्गू हो गया है। परन्तु इसका भारत की विदेश नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। चीन युद्ध में अपमानित होने के बावजूद भी भारत तिब्बत और ताईवान के सम्बन्ध में चीन का समर्थन करता रहा और संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी विदेश नीति में बदलाव लाते हुए पाकिस्तान के साथ लगाव बढ़ा लिया। उसने पाकिस्तान को सैन्य व आर्थिक मदद देना शुरु कर दिया। इससे भारत के गौरव को ठेस पहुंची। अब भारत समझ गया कि चीन अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए विस्तारवादी नीति (Expansionise Policy) अपना रहा है। अब भारत को पश्चिमी देशों से मदद मिलने लगी। सोवियत संघ ने भी चीनी आक्रमण की निन्दा की। लेकिन फिर भी भारत का खोया हुआ गौरव वापिस नहीं मिल सका। युद्ध के बाद भारत-चीन सम्बन्धों में अत्यधिक दूरियां बढ़ गई। युद्ध-विराम के बाद चीन को भारत का काफी बढ़ा क्षेत्र प्राप्त हो गया हो सामरिक द ष्टि से चीन के लिए काफी महत्वपूर्ण था। अब भारत और चीन के बीच सीमा-विवाद और अधिक गहरा हो गया।

(3) 1963 से 1975 तक भारत चीन सम्बन्ध
(Indo-China Relations from 1963 to 1975)

1962 के चीनी आक्रमण के बाद एशिया और अफ्रीका के देश इस बात से चिन्तित हुए कि इस तरह का अघोषित युद्ध (Undeclared War) दक्षिण एशिया की शान्ति के लिए सबसे बड़ा खतरा बन सकता है। इसलिए श्रीलंका, म्यांमार, इंडोनेशिया, मिस्त्र, घाना आदि गुटनिरपेक्ष देशों ने भारत-चीन सीमा विवाद को हल करने के लिए कोलम्बो सम्मेलन में एक प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव को कोलम्बो प्रस्ताव (Colombo Proposals), (19 जनवरी, 1963) कहा जाता है। इस

प्रस्ताव में चीनी सरकार को अपील की गई कि वह लद्दाख क्षेत्र में अपनी सैनिक चौकियां 20 किलोमीटर पीछे हटा ले। इसमें भारत को अपनी सैनिक स्थिति बनाए रखने की अपील की गई। इस प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि चीनी सैनिकों द्वारा खाली किया गया क्षेत्र असैनिक क्षेत्र माना जाए और उसकी निगरानी गैर-सैनिक चौकियों द्वारा की जाये। इसमें उत्तर-पूर्वी सीमान्त (अरुणाचल) क्षेत्र को वास्तविक नियन्त्रण रेखा पर ही युद्ध-विराम रेखा को मान्यता दे दी जाये। भारत ने तो यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। परन्तु चीन इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। इस तरह भारत चीन सम्बन्धों में गतिरोध बना रहा। 9 अक्तूबर 1963 को चीनी प्रधानमन्त्री चाऊ-एन-लाई ने द्विपक्षीय वार्ताएं (Bipartite Talks) शुरु करने को कहा। लेकिन चीन ने ऐसा करने से मना कर दिया।

भारत-चीन विवाद को दूर करने के लिए मिस्त्र के राष्ट्रपति कर्नल नासिर (Col. Nasser) ने 3 अक्तूबर 1963 को एक प्रस्ताव रखकर कोलम्बो प्रस्ताव की बातों को अमल में लाने का सुझाव दिया। लेकिन इस प्रस्ताव का कोई परिणाम नहीं निकला। इस बीच 1963 में ही पाकिस्तान-चीन समझौते के अन्तर्गत पाकिस्तान ने 'पाक-अधिकृत कश्मीर' (Pak Occupied Kashmir) का 5180 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र चीन को दे देने से भारत-चीन सम्बन्ध और अधिक बिगड़ गए। चीनी आक्रमण के बाद दोनों देशों ने अपने-अपने राजदूतों को वापिस बुलाकर सम्बन्धों को अधिक खराब कर लिया। भारत-चीन विवाद पर 1964 में चीन और म्यांमार ने मिलकर संयुक्त विज्ञप्ति निकाली और कोलम्बो प्रस्ताव के आधार पर अविलम्ब वार्ता शुरु करने का सुझाव दिया। इसके बाद चीन लद्दाख क्षेत्र की कुछ चौकियों को खाली करने को राजी हो गई तो भारत ने इसे सम्बन्ध सुधारने की दिशा में चीन द्वारा उठाया गया महत्वपूर्ण कदम बताया। मई 1964 में नेहरु जी की म त्यु पर चीन के प्रधानमन्त्री चाऊ-एन-लाई ने अपने शोक सन्देश में कहा कि भारत-चीन विवाद अस्थायी हैं, जिनका समाधान शान्तिपूर्ण ढंग से हो सकता है। परन्तु चीन की कथनी और करनी में भारी अन्तर रहा। इसलिए नेहरु युग में भारत चीन सम्बन्ध प्रगाढ़ नहीं बन सके।

भारत-पाक युद्ध (1965) और चीन

(Indo-Pak War of 1965 and China)

1965 में जब पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया तो चीन ने भारत के प्रति शत्रुतापूर्ण नीति अपनाई तथा उसने पाकिस्तान को नैतिक तथा राजनयिक समर्थन दिया। चीन ने पाकिस्तान को अप्रत्यक्ष रूप से हर सम्भव मदद दी। चीन ने पाकिस्तान को सैनिक सहायता देने का भी वचन दिया। इसके साथ ही चीन ने भारत को चेतावनी दी कि वी सिक्किम-चीन सीमा पर तैनात गैर-कानूनी ढंग से स्थापित 56 सैनिक चौकियां हटा लें, वरना परिणाम बुरा होगा। चीन की इस चेतावनी से पाकिस्तान को हर्ष हुआ। अब ऐसा प्रकट होने लगा कि भारत-पाक युद्ध अधिक गम्भीर हो जाएगा। लेकिन अमेरिका तथा सोवियत संघ ने चीन को चेतावनी दी कि वह आग के साथ न खेले। चीन के ऊपर इस चेतावनी का दबाव पड़ा और उसने युद्ध में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं किया। भारत पर चीन की चेतावनी का कोई खास असर नहीं पड़ा। भारत ने स्पष्ट किया कि वह अपने क्षेत्र में कुछ भी करने को स्वतन्त्र है। इसलिए इन 56 सैनिक चौकियों को हटाने या न हटाने का निर्णय करने का अन्तिम अधिकार उसी के पास है। 23 सितम्बर 1965 को भारत पाक युद्ध विराम हो गया तो पीकिंग रेडियो ने यह दुष्प्रचार किया कि भारतीय सैनिक प्रतिष्ठानों को नष्ट करके चीनी सैनिक अपनी सीमा में लौट आये हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत-पाक युद्ध में भी चीन ने भारत विरोधी रुख अपनाकर सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों के मार्ग को बाधित कर दिया।

जून 1967 में चीनी दूतावास के दो अधिकारियों को गुप्तचरी के आरोप में नई दिल्ली में गिरफ्तार किया गया। 1967 में चीन ने भारत की चो ला चौंकी (Cho La Post) पर आक्रमण किया तथा 1968 में नाथुला सिक्किम) में सैनिक गतिविधियां शुरु की। लेकिन भारत ने फिर भी चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने को प्राथमिकता दी और 1971 में संयुक्त राष्ट्र संघ में चीनी सदस्यता का समर्थन किया। इसके बाद दोनों देशों के राजदूतों को पुनः नियुक्त करने के बारे में सहमति व्यक्त की, लेकिन 1971 के भारत-पाक युद्ध ने भारत चीन सम्बन्धों में सुधार की प्रक्रिया को रोक दिया। चीन ने बंगलादेश के मुक्ति आन्दोलन में भारत के हस्तक्षेप को अनुचित बताया। इस दौरान भारत-सोवियत मैत्री (1971) ने चीन के मन में नई शंका को जन्म दिया। चीन ने सुरक्षा परिषद की बहसों में भारत को आक्रमणकारी बताकर भारत-विरोधी रवैया ही दिखाया। परन्तु भारत ने अपने इरादों पर अडिग रहते हुए पूर्वी पाकिस्तान को स्वतन्त्र बंगलादेश के रूप में स्थापित कर ही दिया। इसके बाद भारत ने जब 1974 में पोकरण-I परमाणु विस्फोट किया तो चीन ने भारत के विरुद्ध यह प्रचार किया कि भारत अपने पड़ोसी को भयभीत कर रहा है। परन्तु भारत ने स्पष्ट किया कि वह परमाणु शक्ति का प्रयोग शांतिपूर्ण कार्यों को करने के लिए ही करेगा। इसके बाद जब भारत ने 1975 में सिक्किम को भारत मे विलय किया तब भी चीन ने भारत पर आरोप लगाया कि वह भारत ने सिक्किम को हड़प लिया है, पाकिस्तान का विभाजन करवा दिया है, नेपाल में राष्ट्रविरोधी तत्वों को प्रोत्साहन दे रहा है तथा तिब्बत के विद्रोहियों को शरण दे रहा है। इस तरह का भारत विरोधी प्रचार भारत-चीन सम्बन्धों में दूरियां कम नहीं कर सका और सम्बन्ध खराब ही बने रहे।

(4) 1976 से 1987 तक भारत-चीन सम्बन्ध

(Indo-China Relations from 1976 to 1987)

भारत और चीन में 1976 में सम्बन्धों को नये युग की शुरुआत हुई। विभिन्न बाध्यताओं और अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में आए बदलाव के कारण दोनों देशों ने फिर से राजनयिकों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया शुरु की। 1976 में माओ की म त्यु के बाद चीन ने बहुपक्षीय सम्बन्धों की प्रक्रिया को गति दी। अब चीन विश्व राजनीति में अपने अलग-अलग स्वरूप को छोड़कर विश्व के विभिन्न देशों से अति आधुनिकतक एवं उच्च दर्जे की तकनीक प्राप्त करने लगा। इस प्रक्रिया में उसने भारत के साथ सम्बन्ध सुधारने पर भी बल दिया। इधर भारत में भी जनता के पार्टी की सरकार बनने से भारत-चीन सम्बन्धों के नए युग की शुरुआत हुई। इस दौरान चीन विदेशों के साथ मित्रता-सम्बन्धी संगठन के अध्यक्ष वांग-पिंग-नान, जो एक वरिष्ठ राजनयिक भी थे, भारत आएं 1977 में ही भारत का एक गैर-सरकारी व्यापार मण्डल चीन में गा। करीब 15 वर्षों के बाद भारत और चीन में फिर से सीधा व्यापार शुरु हुआ। इसके बाद विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग की शुरुआत हुई। 1978 में चीन का एक व्यापार मण्डल भारत आया। उसके बाद 12 से 18 फरवरी, 1979 तक भारत के विदेश मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी जी भी चीन की यात्रा पर गए। वाजपेयी जी ने इस बात पर जोर दिया कि भारत-चीन सीमा प्रश्न का सन्तोषजनक समाधान पारस्परिक विश्वास की पुनर्स्थापना और सम्बन्धों को सामान्य बनाने के लिए बहुत आवश्यक है। 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत हस्तषेप के बाद भारत तथा सोवियत संघ के बीच उभरते मतभेदों तथा अमेरिका-चीन सम्बन्धों में आए बिगाड़ के कारण भी चीन भारत के निकट आया। यद्यपि वियतनाम में चीनी हस्तक्षेप का भारत ने स्पष्ट विरोध किया, परन्तु फिर भी भारत-चीनी सम्बन्ध सामान्य बने रहे। 1979 में नई दिल्ली में आयोजित भारत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मेले में चीन ने हिस्सा लिया। 1980 में यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो की अंत्येष्टि के समय भी बेलग्रेंड में प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने चीन के विदेश मन्त्री हुआ-कुआफेंग से मुलाकात की। दोनों नेताओं ने सम्बन्ध सुधारने की प्रक्रिया को गति

देने का निर्णय किया। चीन ने यह नीति अपनाई कि सीमा विवाद को अलग रखकर, दोनों देशों को राजनीतिक, आर्थिक, व्यापारिक व सांस्कृतिक सम्बन्धों को प्राथमिकता देनी चाहिये। भारत ने भी सीमा-विवाद को भुला देना ही श्रेयकर समझा। 1981 में चीन के विदेश मन्त्री भारत आए तथा भारत के विदेश मन्त्री नरसिम्हाराव से मुलाकात की। इससे भारत चीन सम्बन्धों में महत्वपूर्ण मोड़ आया। चीन के विदेश मन्त्री हुआंग-हुआ ने सौहार्द के प्रतीक के रूप में कैलाश-मानसरोवर यात्रा भारतीयों के लिए खोलने की घोषणा की। इस तरह बातचीत का सिलसिला जारी रहा। इस दौरान सीमा-विवाद की बातचीत जारी रही। अक्तूबर 1983 में भाारत इस बात से सहमत हो गया कि सीमा-विवाद अलग-अलग पहलुओं के द ष्टिगत हल करा ही ठीक रहेगा। परन्तु सीमा-विवाद पर सर्वमान्य हल नहीं हो सका।

इसके बाद 15 अगस्त, 1984 को बीजिंग में भारत-चीन व्यापार समझौता (Trade Agreement) हुआ तथा दिसम्बर 1984 में दोनों देश एक-दूसरे के यहां सांस्कृतिक मण्डलियां भेजने, प्रदशर्नियां लगाने तथा शिक्षाविदों तथा अध्येताओं के आदान-प्रदान पर सहमत हुए। दोनों देशों ने एक वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक विनिमय कार्यक्रम भी तैयार किया। 1984 में इन्दिरा गांधी की म त्यु के बाद चीन के उप-प्रधानमन्त्री चाओ-ची-लीन भारत आए और भारत चीन सम्बन्धों को मधुर बनाने का आश्वासन दिया। भारत के प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने भी कहा कि "भारत, चीन के साथ वैसे ही सम्बन्ध बनाने का प्रयास करेगा, जैसे 1950 में थे।" इसके बाद नवम्बर, 1985 में भारत-चीन वार्ता का छठा दौर दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इसमें पूर्वी क्षेत्र में सीमा निर्धारण में कुछ प्रगति हुई, लेकिन पश्चिमी क्षेत्र में ऐसा कुछ नहीं हुआ। अब चीन भारतीय दूतावास के लिए 3400 वर्गमीटर भूमि भारत को देने के लिए राजी हो गया। इसके बाद 23 नवम्बर, 1985 को दोनों देशों के बीच एक व्यापारिक समझौता हुआ। जून 1986 में चीन ने अरुणाचल प्रदेश के कुछ भागों में अपनी चौकियां स्थापित कर ली तो भारत चीन सम्बन्धों में कुछ तनाव उत्पन्न हो गया। भारत ने इस विवाद को जुलाई, 1986 में बीजिंग वार्ता में उठाया। इस वार्ता में चीन को भारत की चिन्ता से अवगत कराया गया। इसके बाद जब भारत ने अरुणाचल प्रदेश को राज्य का दर्जा दिया तो चीन ने कहा कि इससे चीन की प्रादेशिक अखण्डता और सम्प्रभुता का गम्भीर उल्लंघन हुआ है। भरत ने चीन की आलोचना को सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की दिशा में बाधक बताया। इसके बार भारत और चीन के बीच सीमा वार्ता का आठवां दौर 17 नवम्बर, 1987 को नई दिल्ली में समाप्त हुआ। इसमें दोनों देशों ने सीमा-विवाद शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने पर सहमति जताई। इस वार्ता द्वारा दोनों देशों के बीच मतभेदों को दूर करने तथा हर क्षेत्र में द्वि-पक्षीय सहयोग की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का उपयुक्त वातावरण तैयार हुआ। इस तरह 1976 से 1987 तक भारत पाक सम्बन्धों में तनाव व सौहार्द का मिश्रित वातावरण बना रहा। सीमा-विवाद को लेकर कुछ विशेष प्रगति नहीं हुई। परन्तु आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में कुछ ऐसे सम्बन्ध विकसित हुए कि उन्होंने सीमा-विवाद की कड़वाहट को कुछ कम कर दिया। इसके दौरान दोनों देशों में आपसी विश्वास तथा सद्भावना बढ़ी और मधुर सम्बन्धों का मार्ग तैयार हो गया।

(5) 1988 से 1998 तक भारत-चीन सम्बन्ध

(Indo-China Relations from1988 to 1998)

1988 का वर्ष भारत चीन सम्बन्धों में बदलाव लेकर आया। इसके बाद भारत-चीन सम्बन्धों की दरार कम होने लगी। प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने भारत-चीन सम्बन्ध सुधारने के लिए दिसम्बर 1988 में चीन की यात्रा की। इस यात्रा के अवसर पर दोनों देशों के शीर्ष नेताओं की बातचीत में स्वीकार किया गया कि सीमा-विवाद के अतीत के कटु अनुभव को भुलाकर भविष्य में दोनों देशों के बीच सहयोग के नये उपाय तलाशे जायें। राजीव गांधी ने वापिस भारत आकर कहा कि "हमने

चीन के साथ अपने सम्बन्धों को नये सिरे से शुरु करके मैत्री को सुद ढ़ करने का निश्चय किया है।" राजीव गांधी की चीन यात्रा की महान उपलब्धि आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी व सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाने के लिए संयुक्त आयोग (Joint Commission) का गठन रही। दोनों देशों ने एक संयुक्त समिति भी गठित करने का निर्णय किया जो विज्ञान, तकनीकी और आर्थिक क्षेत्रों में दोनों देशों के बीच सहयोग की सम्भावनाओं का पता लगायेगी। दोनों देशों में दिल्ली और बीजिंग के बीच सीधी विमान सेवाएं प्रारम्भ करने के मुद्दे पर भी सहमति हो गई। इसके बाद 23 दिसम्बर, 1988 को एक संयुक्त विज्ञप्ति निकाली गई जिसमें कहा गया कि दोनों देश पंचशील के सिद्धान्तों के आधार पर ही आपसी सम्बन्ध कायम करेंगे। राजीव गांधी की इस यात्रा से सीमा-विवाद सुलझाने तथा सहयोग के अन्य क्षेत्रों में प्रगति हुई। इस यात्रा ने पिछले दो दशकों से चले आ रहे गतिरोध का अन्त कर दिया। तास ने कहा कि "एशिया के दो बड़े देशों में अच्छे पड़ोसियों जैसे तथा मित्रतापूर्वक सम्बन्धों की स्थापना इस महाद्वीप में स्थिरता व शाति ला सकती है। इसकी भारत चीन सीमा विवाद भी हल किया जा सकता है।" वस्तुतः राजीव गांधी की चीन यात्रा भारत-चीन सम्बन्धों का नया अध्याय थी। इसलिए सभी देशों ने इस यात्रा को विश्व शांति के लिए महत्वपूर्ण बताया।

प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की म त्यु के बाद भी भारत-चीन सम्बन्धों की सुद ढ़ता जारी रही। जून 1991 में नरसिम्हाराव के प्रधानमन्त्री बनने के बाद भारत-चीन सम्बन्ध प्रगाढ़ हुए। दिसम्बर 1991 में चीन के प्रधानमन्त्री ली-फंग (Li Peng) भारत आए। किसी चीनी प्रधानमन्त्री का 31 वर्ष बाद यह प्रथम भारत यात्रा थी। इस यात्रा के समय भारत और चीन में शंघाई तथा मुम्बई में वाणिज्य दूतावास खोलने, सीमा व्यापार शुरु करने तथा अन्तर्राष्टथीय अनुसंधान विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग पर समझौते हुए। इस दौरान सीमा-विवाद को भी शीघ्र तथा पारस्परिक सहयोग के आधार पर हल करने की आवश्यकता महसूस की गई। चीन के प्रधानमन्त्री ने यह भी कहा कि वह तिब्बत के प्रश्न पर दलाई लामा के साथ तिब्बत की स्वतन्त्रता के अतिरिक्त अन्य हर बात पर विचार-विमर्श करने को तैयार है। इस यात्रा को भारत-चीन सम्बन्धों को सुधारने की दिशा में 'मील का पत्थर' कहा गया। उसके 1992 में दोनों देशों के प्रधानमन्त्रियों की संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की शिखर बैठक में मुलाकात हुई। भारत ने स्पष्ट तौर पर कहा कि वह चीन के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। यद्यवि वह तिब्बत को चीन का एक भाग मानता है, परन्तु फिर भी वह सीमा-विवाद का शांतिपूर्ण हल चाहता है। इसके बाद 1992 में ही भारत के राष्ट्रपति आर० वेंकटरमन 17 मई 1992 को चीन की 6 दिवसीय यात्रा पर गए। इससे भी दोनों देशों के सम्बन्धों में विश्वास की भावना बढ़ी। फिर प्रधानमन्त्री नरसिम्हाराव की फंग के निमन्त्रण पर 1993 में चीन की यात्रा पर गए। इससे भी दोनों देशों के सम्बन्धों में विश्वास की भावना बढ़ी। फिर प्रधानमन्त्री नरसिम्हा राव ली फंग के नियन्त्रण पर 1993 में चीन की यात्रा पर गए। इस समय यह निर्णय लिया गया कि सीमा-विवाद पर बातचीत लम्बित रखी जायेगी तथा अन्य क्षेत्रों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के विकास के लिए प्रयास किये जायेंगे। राव और ली-फंग ने यह भी निश्चय किया कि जब तक सीमा-विवाद का निर्णय नहीं हो जाता, तब तक दोनों पक्ष नियन्त्रण रेखा (Line of Control) पर पूर्ण शांति बनाये रखें। इस वाता में यह भी निश्चय किया गया कि दोनों देश अपने सैन्य अभ्यासों की सूचना एक दूसरे को देते रहेंगे। परन्तु सैनिकों की संख्या कम करने पर अब भी दोनों देशों में विवाद बना रहा। इसलिए सैन्य कटौती पर कोई समझौता नहीं हो सका। परन्तु नवीन सम्बन्धों की दिशा में यह महत्वपूर्ण यात्रा थी। 5 जनवरी, 1993 को भारत और चीन के बीच एक व्यापारिक समझौता हुआ। फिर 5 फरवरी, 1994 को वास्तविक नियन्त्रण रेखा पर सैन्य बलों की कटौती व्यवस्था पर भी एक समझौता हुआ। उसके बाद 21 अप्रैल 1994 को भारत-चीन रक्षा विशेषज्ञों की एक बैठक बीजिंग में हुई जिसमें सितम्बर 1993 के समझौते की क्रियान्विति करने तथा

सीमा क्षेत्रों में वास्तविक नियन्त्रण रेखा पर शांति बनाये रखने के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ। इस तरह भारत-चीन सम्बन्धों को सुधारने की दिशा में दोनों देशों की तरफ से कुछ प्रगति अवश्य हुई।

1994 में भारत-चीन सम्बन्ध सुधारने वाले नए कदमों की शुरुआत हुई। 9 मई, 1994 को भारत-चीन महोत्सव शुरु हुआ। इस अवसर पर भारत के मानव संसाधन मन्त्री अर्जुन सिंह ने चीन के प्रधानमन्त्री ली फेंग से भेंट की तथा दोनों नेताओं ने सीमा पर शान्ति की कामना की। इसके बाद जून 1994 में पंचशील समझौते पर हस्ताक्षर किए जाने का चालीस वर्ष का उत्सव पीकिंग तथा नई दिल्ली में मनाया गया। 16 जून, 1994 को भारत ओर चीन के बीच एक व्यापारिक समझौता भी हुआ। इसके बाद जब चीन के राष्ट्रपति जियांग जैमिन (Jaing Zemin) तथा साम्यवादी दल के प्रमुख नेता नवम्बर 1996 में भारत की राजकीय यात्रा पर जाए तो भारत और चीन के बीच नए समझौते हुए। इन समझौतों में हांगकांग पर चीन के आधिपत्य के बाद वहां स्थित भारतीय दूतावास कायम रखना, मादक पदार्थों के व्यापार को रोकने में आपसी सहयोग करना, जहाजरानी के क्षेत्र में सहयोग करना, सीमाओं पर आपसी विश्वास बढ़ाना और दोनों देशों के बीच सैनिक और हथियारों में कटौती करना, सीमाओं पर युद्धाभ्यास न करना या करने पर उसी पूर्व सूचना देना तथा सीमा के दस किलोमीटर क्षेत्र में लड़ाकू विमानों की उड़ान न भरना आदि शामिल हैं। इन समझौतों में सबसे महत्वपूर्ण समझौता था - भारत चीन सीमा पर वास्तविक नियन्त्रण रेखा के साथ-साथ सैनिक क्षेत्र में विश्वास उत्पन्न करने वाला समझौता। इस समझौते का उद्देश्य सीमा-विवाद के समाधान के लिए उचित तथा मान्य मार्ग तलाश करना था। इस समझौते को 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' की भावना को पुनर्जीवित करने वाला कहा गया। इस समझौते से यह आशा उत्पन्न हुई कि सीमा-विवाद का हल शीघ्र हो जायेगा। चीन ने आशा व्यक्त की कि "यह समझौता निश्चय ही पारस्परिक विश्वास उत्पन्न करने और सीमा पर पारदर्शिता स्थापित करने में दोनों देशों की मदद करेगा तथा इससे सीमा पर शांति तथा सद्भावना बनी रह सकेगी।"

यह काल भारत-चीन सम्बन्धों में बदलाव का महत्वपूर्ण काल था। सोवियत संघ के विघटन के बाद चीन को भारत-सोवियत मैत्री का कोई मलाल नहीं रहा। बढ़ती एकध्रुवीयता ने दोनों देशों को परस्पर सहयोग करने को बाध्य कर दिया। दोनों देश शोषणमुक्त नवीन विश्व व्यवस्था की दिशा में प्रयास करते नजर आने लगे। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने दोनों देशों को काफी निकट ला दिया। अब चीन अपने पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्धों को आर्थिक विकास की अनिवार्यता के रूप में देखने लगा। इस काल में सीमा-विवाद के स्थान पर आर्थिक सहयोग की प्रक्रिया को गतिशील बनाया गया। भारत-चीन सीमा विवाद के बारे में 'संयुक्त कार्यदल' का गठन करके आपसी विश्वास बढ़ाने जैसे कदमों की स्थापना भी की गई। इस काल में सहयोग के नये क्षेत्रों का मार्ग खुल गया। सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया ने दोनों देशों की जनता के बीच सौहार्द की भावना का विकास किया। परन्तु इस काल में मधुर सम्बन्धों के प्रयासों को उस समय करारा झटका लगा जब भारत ने 11 व 13 मई 1998 को पोकरण (राजस्थान में) परमाणु परीक्षण कर डाले। चीन ने भारत के रक्षा मन्त्री जॉर्ज फर्नांडिज की उस टिप्पणी को लेकर काफी विवाद किया जिसमें चीन को भारत का पहला शत्रु बताया गया था। भारत ने अपने परमाणु परीक्षणों के स्पष्टीकरण हेतु विशेष दूत सभी परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों के पास भेजे, परन्तु चीन के पास नहीं भेजकर सम्बन्धों को तनावपूर्ण बना लिया। चीन ने संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद द्वारा पारित प्रस्ताव संख्या 1174 का पूर्ण समर्थन किया जिसमें भारत द्वारा स्वयं को परमाणु-शस्त्र सम्पन्न राष्ट्र घोषित करने की निन्दा की गई थी। इस प्रकार भारत द्वारा परमाणु विस्फोट करने की बात को लेकर भारत और चीन में तनाव बढ़ गया।

(6) 1999 से वर्तमान तक भारत-चीन सम्बन्ध

(Indo-China Relations from 1999 to Present Day)

भारत ने परमाणु परीक्षणों के बाद उत्पन्न तनाव को कम करने के लिए चीन के साथ फिर से मैत्रीपूर्ण तथा सौहार्द भावना पर आधारित सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास शुरु किये। भारत की तरफ से की गई पहल का चीन ने भी सकारात्मक जवाब दिया। चीन के सहायक विदेश मन्त्री ने कहा-"दक्षिण एशिया में, हमारे पड़ोस में, भारत और पाकिस्तान दो महत्वपूर्ण देश हैं और हम उनके सम्बन्धों में कुछ सुधार की आशा करते हैं।" चीन ने दोनों देशों के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के पांच सिद्धान्तों के आधार पर सम्बन्ध स्थापित करने की बात कही। चीन के राजदूत ज्हाऊ गैंग ने 1999 के आरम्भ में कहा "हमारा बराबर विश्वास रहा है कि भारत-चीन सम्बन्धों में जो समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं, वे अस्थाई हैं और उन पर काबू पाया जा सकता है।" इस दौरान कारगिल युद्ध (मई 1999) में चीन ने पाकिस्तान पर नियन्त्रण रेखा के उस पर चले जाने का दबाव डालकर यह बात सिद्ध कर दी कि वह भारत के साथ अतीत को भुलाकर नवीन सांझेदारी का विकास करना चाहता है।

नए सम्बन्धों की शुरुआत करते हुए भारत के विदेश मन्त्री भी जून, 1999 में चीन की यात्रा पर गए। दिसम्बर 1999 में मकाओ, चीन को सौंपते समय भी समारोह में भारत के विदेश राज्य मन्त्री शामिल हुए। चीनी गणराज्य की 50वीं वर्षगांठ पर भारत के राष्ट्रपति मई 2000 में चीन की यात्रा पर गए। चीन की नेशनल पीपुल्स कांग्रेस की स्थायी समिति के अध्यक्ष भी जनवरी, 2001 में भारत आये। भारत की तरफ से विदेश मन्त्री जसवन्त सिंह 2002 में, राष्ट्रपति आर० के० नारायण 2002 में, जार्ज फर्नांडीज 2003 में, अटल बिहारी वाजपेयी जून 2003 में तथा भारतीय लोक सभा के अध्यक्ष मुरली मनोहर जोशी भी 2003 में ही चीन की यात्रा पर गए। उधर चीन की तरफ से 1999 में तांग जिकसुआन, 2001 में ली फैंग तथा 2002 मं ह्यू रोगजी भारत की यात्रा पर आये। चीन के प्रधानमन्त्री ह्यू रोंगजी ने इस बात पर बल दिया कि दोनों देश शीघ्र ही 'सहयोग की रचनात्मक भागीदरी' का विकास करेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि अतीत की समस्याओं को इस सहयोग के मार्ग में बाधक नहीं होने दिया जायेगा। ऐसे ही विचार पूर्व प्रधानमन्त्री ली फेंग ने भी दिये। चीन ने आशा व्यक्त की कि भविष्य मे भारत-चीन सम्बन्धों का नया युग शुरु होगा जिसमें आर्थिक सांझेदारी की अधिक महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। भारत की तरफ से अटल बिहारी वाजपेयी की यात्रा महत्वपूर्ण रही। वाजपेयी ने दोनों देशों के बीच नवीन सांझेदारी विकसित करने हेतु 23 जून, 2003 को 'सम्बन्धों के सिद्धान्त एवं व्यापक सहयोग' के दस्तावेज के अलावा कई अन्य सहयोग के समझौतों पर भी हसताक्षर किये। इसके बाद दोनों देशों में नाथुला दर्रे के रास्ते होते हुए एक नया व्यापारिक मार्ग खोलने पर भी सहमति हो गई। भारत ने तिब्बत को चीन का स्वायत्त क्षेत्र स्वीकार कर लिया। सीमा-विवाद पर भी तीव्र समाधान के लिए दोनों देशों ने अपने-अपने विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करने पर सहमति जताई। मई 2004 में चीन ने सिक्किम पर भारतीय प्रभुत्व को मान्यता देकर सहयोग की दिशा में नया अध्याय जोड़ दिया।

इस युग में भारत-चीन सम्बन्धों का संतोषजनक पहलु यह है कि दोनों देशों में व्यापार बढ़ रहा है। जहां 1999 में यह 27971 डालर, वह अब 2003 में 38667 के आंकड़े पर पहुंच गया। दोनों देश 'संयुक्त आर्थिक समूह' का महत्व स्वीकार करते हैं तथा व्यापार व अन्य आर्थिक सहयोग बढ़ाने के लिए एक 'संयुक्त अध्ययन दल' बनाने पर भी सहमत हैं। संचार प्रोद्यौगिकी के क्षेत्र में भी दोनों नवीन सांझेदारी का अनुभव करते हैं। यद्यपि आज भी कई आर्थिक मुद्दों पर दोनों देशों में सहमति का अभाव है, परमाणु परीक्षणों पर रोक तथा CTBT पर हस्ताक्षर

करने के मामलों पर भी दोनों देशों में मतभेद हैं तथा चीन द्वारा पाकिस्तान को शस्त्रों की आपूर्ति करना भी दोनों देशों के बीच पूर्ण विश्वास कायम करने में बाधा है। लेकिन फिर भी दोनों देश सीमा-विवाद पर नरम रुख अपनाए हुए हैं, दोनों परमाणु प्रसार के विरुद्ध हैं, दोनों संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका के बारे में एकमत हैं, दोनों निःशस्त्रीकरण व अन्तरिक्ष के शान्तिपूर्ण प्रयोग हेतु संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से बहुपक्षीर वार्ताओं पर बल देते हैं, दोनों शीतयुद्धोतर युग में बहु-ध्रुवीय विश्व-व्यवस्था के पक्षधर हैं, दोनों अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को खतरा मानते हैं और परस्पर सहयोग द्वारा इससे निपटना चाहते हैं। दोनों ASEAN के माध्यम से दक्षिण एशिया को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने पर सहमत हैं। इस तरह वर्तमान में भारत और चीन एक दूसरे के सहयोगी की द ष्टि से देख रहे हैं। आज दोनों देशों में जो गतिरोध है, वह अस्थायी है जिसको शीघ्र सुलझा लिया जाने की सम्भावना नजर आ रही है।

निष्कर्ष

(Conclusion)

भारत-चीन सम्बन्धों का व्यापक विश्लेषण करने के बाद यह तथ्य उभरता है कि सम्बन्धों का प्रारम्भिक काल 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई का युग' था। परन्तु यह युग शीघ्र ही नष्ट हो गया। भारत-चीन सम्बन्धों में कड़वाहट आने तथा सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों का अन्त होने के पीछे मूल कारण सीमा-विवाद और तिब्बत समस्या रहे हैं। इसी कड़वाहट के कारण चीन ने 1962 में भारत पर आक्रमण किया तथा 1965 तथा 1971 के भारत-पाक युद्ध में भारत के खिलाफ पाकिस्तान को हर सम्भव सहायता दी। इसी कारण भारत-चीन के बीच लगभग 15 वर्षों तक (1962-1976) सम्बन्ध रहितता का काल रहा। यह काल 1977 मं भारत में जनता दल की सरकार आने के बाद समाप्त हुआ तथा दोनों देशों के बीच सम्बन्धों के नए युग की शुरुआत हुई। आगे चलकर 1988 में भारत-चीन सम्बन्धों के स्वर्ण युग की शुरुआत हुई जिसमें दोनों देशों ने सीमा-विवाद तथा तिब्बत समस्या को अलग रखकर सहयोग के नए अध्याय की शुरुआत की। 1991 के बहुपक्षीय समझौते ने तो दोनों देशों के सम्बन्धों ने इतनी प्रगाढ़ता ला दी कि दोनों देश तिब्बत समस्या और सीमा-विवाद पर काफी नरम रुख अपनाने पर सहमत हो गये। इसके बाद भारत चीन में सांस्कृतिक व आर्थिक क्षेत्र में सहयोग की नई शुरुआत ने दोनों देशों को काफी करीब ला दिया। भारत ने तिब्बत को चीन का अभिन्न अंग स्वीकार करके इस समस्या को भी सुलझा लिया। यद्यपि 1998 मं भारत द्वारा परमाणु विस्फोटों को लेकर चीन ने भारत की आलोचना की तथा उसे आक्रमणकारी देश कहा, लेकिन 1999 में कारगिल युद्ध में उसने पाकिस्तान पर पीछे हटने का दबाव डालकर भारत की शंका को निर्मूल कर दिया। इसके साथ ही चीन ने मई, 2004 में सिक्किम को भारत का अभिन्न अंग मानकर आपसी मतभेदों को समाप्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। इसी तरह वर्तमान सरकार भी चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने के प्रति वचनबद्ध है। अब दोनों देश मानते हैं कि पड़ोसी देशों के साथ तनातनी किसी काम की नहीं। इसलिए वह सहयोग के नये क्षेत्र तलाश रहे हैं। त तीय विश्व के दो बड़े देश होने के नाते वे दक्षिण एशिया में शान्ति बनाए रखने का अपना उत्तरदायित्व समझने लगे हैं। इसलिए अब दोनों ही संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से बहुपक्षीय सहयोग की बात स्वीकार करते हैं। आज दोनों ही आतंकवाद को विश्वशांति का शत्रु मानते हैं। इसलिए दोनों ही आतंकवाद पर नियन्त्रण हेतु परस्पर सहयोग के इच्छुक हैं। यदि आज दोनों देशों में कुछ मतभेद हैं तो वे सीमा-विवाद को लेकर ही हैं। यदि दोनों देशों को परस्पर सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने हैं तो सीमा-विवाद को शीघ्र ही हल करना होगा। इस दिशा में अन्य प्रयासों में चीन द्वारा पाकिस्तान को सैन्य सहायता देना तथा हिन्द महासागर में सैन्य अभ्यास बन्द करना हो सकते हैं। हाल ही में चीन द्वारा सिक्किम को भारत का अभिन्न अंग मान लेने से दोनों देशों के बीच सौहार्दपूर्ण भावना का जो विकास हुआ है, उसको जारी रखने की महती आवश्यकता है ताकि दोनों देशों में मधुर व शांतिपूर्ण सम्बन्ध कायम रह सकें। वस्तुतः आज समय की मांग है कि भारत जितना ध्यान पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारने पर दे रहा है, यदि उसका आधा ध्यान भी चीन की ओर पहल के तौर पर दे तो यह दक्षिण एशिया में नए शान्ति युग की शुरुआत होगी और इसके परिणाम स्थायी फल देने वाले होंगे।

अध्याय-12

संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति भारत की विदेश नीति

(India's Foreign Policy Towards U.S.A.)

प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली के रूप में कुछ समानताएं रखने वाले तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद (Brithsh Colonialism) का शिकार रह चुके भारत और अमेरिका के सम्बन्ध अधिक मधुर नहीं रहे हैं। इसका प्रमुख कारण भारत की गुटनिरपेक्षता तथा सैनिक संगठन विरोधी द ष्टिकोण माना जाता है। प्रारम्भ से ही अमेरिका की विदेश नीति पाकिस्तान समर्थक तथा भारत विरोधी रही है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एक महान शक्ति के रूप में उभरने वाले अमेरिका का ध्येय भारत को अपने गुट में मिलाना था, लेकिन भारत ने स्पष्ट किया कि वह किसी गुट में शामिल न होकर स्वतन्त्र विदेश नीति अपनाएगा। गुटनिरपेक्षता की नीति का इसी का परिणाम थी। इस नीति के आधार पर भारत ने अमेरिका के साथ-साथ अन्य देशों से भी मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास किये। लेकिन अमेरिका ने कभी भारत के साथ मधुर सम्बन्धों को प्राथमिकता नहीं दी। अमेरिका ने प्रायः भारत की गुटनिरपेक्षता को सोवियत समर्थक नीति के रूप में देखा। इसी कारण दोनों देशों के सम्बन्ध उलझनमय बने रहे। स्टेनली हाफमैन ने लिखा है-"सभी प्रमुख देशों में से भारत ही एक ऐसा देश है जिसके साथ संयुक्त राज्य अमेरिका के सम्बन्ध उलझन पैदा करने वाले रहे हैं। कई विद्वानों ने तो भारत-अमेरिका सम्बन्धों को 'अमैत्रीपूर्ण मित्रों' के सम्बन्ध माना है। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि अमेरिका ने अपने राष्ट्रीय हितों को अधिक महत्व दिया और भारत को एक अधीनस्थ राष्ट्र के रूप में देखा। उसने कभी भी भारतीय द ष्टिकोण को समझने और उसके राष्ट्रीय हितों पर ध्यान देने की नहीं सोची। भारत-अमेरिका सम्बन्धों में NPT, CTBT, 1971 की भारत सोवियत मैत्री, भारत-पाक संघर्ष आदि को लेकर प्रायः तनाव ही रहा है। इस सन्दर्भ में अमेरिका ने पाकिस्तान का ही पक्ष लिया है। परन्तु शीत युद्ध के बाद भारत के प्रति अमेरिका द्वारा सकारात्मक रुख अपनाये जाने से मधुर सम्बन्धें का प्रथम अध्याय शुरु हुआ है। दोनों देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों की नई शुरुआत तथा 1990 की प्रत्यावर्तन सन्धि आतंकवाद का उन्मूलन करने में अमेरिका द्वारा भारत का सहयोग, शिक्षा व संस्कृति का आदान-प्रदान ऐसे तथ्य हैं जो भारत-अमेरिका सम्बन्धों में सुधार की आशा करते हैं। भारतं-अमेरिका सम्बन्धों का व्यापक अध्ययन निम्नलिखित तरह से किया जा सकता हैः-

(I) भारत-अमेरिका सम्बन्धों की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि

(Historical Background of Indo-US Relations)

भारत-अमेरिका के सम्बन्धों का पुराना इतिहास देखने पर पता चलता है कि दोनों देशों के बीच

200 वर्षों से भी अधिक समय से व्यापारिक सम्बन्ध चले आ रहे हैं। इन सम्बन्धों की प्राचीन घटना अठारहवीं सदी की है जब यैंकी जहाज बोस्टन से बर्फ लेकर कलकत्ता पहुंचे और वहां से मसाले और कपड़े लेकर वापिस अमेरिका गए। दोनों देशों के मध्य राजनयिक सम्बन्धों की शुरुआत उस समय हुई जब 1790 में राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने कलकत्ता में अपना एक वाणिज्य दूत नियुक्त किया। अमेरिका से भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के नेताओं और सेनानियों की मित्रता की भेंट प्राप्त होती रही। दोनों देशों के सदस्यों का, सरकारी आदान-प्रदान, धार्मिक अनुभवों तथा पर्यटन ने, निरन्तर विकास किया। परन्तु भारत और अमेरिका के आपसी सम्बन्ध ब्रिटिश नीतियों के कारण अधिक मधुर नहीं बन सके। स्वतन्त्रता से पूर्व अमेरिका के कुछ निवासी भारत आए तो उन्होंने केवल यहां के जीवन का निरीक्षण ही किया, जनता के साथ सम्बन्ध जोड़ने के विशेष प्रयास नहीं किए। बीसवीं सदी के आरम्भ में कुछ भारतीय भी अमेरिका गए। अंग्रेजों ने भारत को जानबूझकर दूसरे देशों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने से रोका। स्वयं अमेंरिका भी द्वितीय विश्व युद्ध तक 'अलगाववाद की नीति' (Policy of Isolation) का अनुसरण करता रहा। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत को आशा बंधी कि अमेरिका भारत की स्वतन्त्रता का समर्थन करेगा। इसी कारण भारत ने अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन के 'आत्म-निर्णय के सिद्धान्त' तथा 'चौदह सूत्री कार्यक्रम' का स्वागत किया। लेकिन अमेरिका ने भारत की स्वा धीनता के प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई। 1927 में अमेरिका में भारतीयों ने इंडिया लीग की स्थापना की ताकि भारतीय स्वतन्त्रता के पक्ष में अमेरिकी जनमत तैयार किया जा सके। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। अब भारत का भ्रम टूट गया। भारत ने 1927 के ब्रुसेल्स सम्मेलन में अमेरिका की साम्राज्यवादी नीति (Imperialist Policy) का विरोध किया। इस सम्मेलन में अमेरिका के प्रति भारत की जो धारणा बनी उसने निश्चित तौर पर स्वतन्त्र भारत और अमेरिका के सम्बन्धों को प्रभावित किया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय अमेरिका ने जब अलगाववाद की नीति का परित्याग किया तो उसकी भारतीय समस्या के प्रति एकाएक रुचि बढ़ गई। अब अमेरिका ने भारत की स्वतन्त्रता का समर्थन किया। अमेरिका ने 1942 में क्रिप्स वार्ता को सफल बनाने के लिए अपना एक प्रतिनिधि भारत भेजा। जब 1942 में ब्रिटेन ने भारतीय क्रान्ति को कुचलने के लिए अमेरिकी सेना की मदद ली तो भारत ने इसका विरोध नहीं किया। वस्तुतः अमेरिका का समर्थन भारत को सीमित स्वतन्त्रता देने की बात तक ही था। 1945 के सेन फ्रांसिसको सम्मेलन में भी अमेरिका ने भारत को स्वतन्त्रता दिये जाने के बारे में कुछ नहीं कहा। इसी कारण भारत की अमेरिका के प्रति गलत धारणा उत्पन्न हुई परन्तु कूटनीतिक सम्पर्क की द ष्टि से यह अच्छा समय था। 1946 में दोनो देशों के बीच कूटनीतिक राजदूतों का आदान-प्रदान हुआ। भारत ने 1946 में दोनों अन्तरिक सरकार के गठन के बाद कहा कि भारत अमेरिका के साथ सहयोग और मैत्री चाहता है। इसी के द ष्टिगत उसने 1946 में अपना प्रथम राजदूत अमेरिका में नियुक्त किया ताकि दोनों देशों के बीच सम्बन्धों को सौहार्दपूर्ण बनाया जा सकें

(II) भारत की स्वतन्त्रता से 1954 तक भारत-अमेरिका सम्बन्ध

(Indo-US Relations from India's Independence to 1954)

1946 में भारत-अमेरिकी कूटनीतिक सम्बन्धों का नया अध्याय शुरु होने से यह आशा प्रबल हुई कि स्वतन्त्रता के बाद भारत-अमेरिका सम्बन्ध काफी मधुर व सुद ढ़ होंगे। लेकिन यह आशा निर्मूल साबित हुई जब भारत ने अमेरिकी गुट में शामिल न होकर स्वतन्त्र विदेश नीति संचालित करने का संकल्प किया। अमेरिका ने भारत को विरोधी की द ष्टि से देखना शुरु कर दिया। इसलिए इस काल में भारत-अमेरिकी सम्बन्ध संदेहास्पद स्थिति में शुरु हुए। इसका **प्रमुख कारण** दोनों देशों में अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद और उपनिवेशवाद के प्रति पाया जाने वाला प थक् प थक् द ष्टिकोण था। भारत सोवियत संघ को भी नाराज नहीं करना चाहता था। उसकी विदेश नीति का ध्येय अमेरिका तथा सोवियत संघ दोनों देशों से मित्रता बनाए रखना था। जबकि अमेरिका सोवियत संघ द्वारा

प्रायोजित साम्यवाद को अपने लिए सबसे बड़ा खतरा मानता था। वह भारत की सोवियत संघ के प्रति अपनाई गई विदेश नीति को समर्थक के रूप में सहन नहीं कर सकता था। **दूसरा कारण** यह भी था कि भारत उपनिवेशवाद का प्रबल विरोधी था। इसके विपरीत अमेरिका नए रूप में साम्राज्यवाद का पोषण कर रहा था। इस बात को लेकर भी दोनों देशों में सम्बन्ध खराब हो गए जब भारत ने किसी भी गुट में शामिल होने सो मना कर दिया। अमेरिका ने भारत पर आरोप लगाया कि वह अर्द्ध-साम्यवादी है जो अपनी गुटनिरपेक्षता को धीरे-धीरे साम्यवाद की तरफ मोड़ रहा है। इस तरह 1947 में ही भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में दरार पैदा हो गई थी। भारत द्वारा सैनिक गुटों का विरोध तथा उपनिवेशवाद के अन्त के लिए त तीय विश्व को एक मंच पर लाने के लिए प्रयासरत् रहना ही इसके प्रमुख कारण थे।

स्वतन्त्रता के बाद भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में तनाव उस समय उत्पन्न हुआ जब भारत ने अमेरिका के नेत त्व में गठित NATA, SEATO तथा CENTO सैनिक संगठनों में शामिल होने से इंकार कर दिया। अमेरिका क साथ अपने प्रारम्भिक मतभेदों को हल करने के लिए अक्तूबर, 1949 में नेहरु जी अमेरिका भी गये, लेकिन इसके कोई सकारात्मक परिणाम नहीं निकले। भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में खराब शुरुआत में एक नया अध्याय उस समय जुड़ गया जब भारत ने शीघ्र ही 30 दिसम्बर 1949 को मान्यता प्रदान कर दी और संयुक्त राष्ट्र संघ में उनकी सदस्यता के लिए भी समर्थन किया। भारत के इस कदम को अमेरिका ने साम्यवाद समर्थक माना। इसी कारण अमेरिका ने हमेशा कश्मीर समस्या पर अपना पाकिस्तान समर्थक द ष्टिकोण ही अपनाया। उसने भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति (Policy of Non-Alignment) को बढ़ती लोकप्रियता के प्रति हमेशा ही सन्देह व्यक्त किया। इसी तरह जब चीन ने तिब्बत पर अधिकार किया तो भारत द्वारा इसका प्रबल विरोध न करने की नीति की भी अमेरिका ने आलोचना की। इसके बाद जब कोरिया संकट (Korean Crisis), 1950 के समय जब भारत ने अमेरिका द्वारा प्रस्तावित शान्ति प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया तथा चीन को आक्रामक घोषित करने वाले प्रस्ताव का विरोध किया तो भारत-अमेरिकी सम्बन्धों की खाई ओर अधिक चौड़ी हो गई। इसके बाद सितम्बर 1951 में भारत ने जापान-अमेरिकी शांति सन्धि का विरोध किया, क्योंकि इसमें चीन और सोवियत संघ को शामिल नहीं किया गया था। इससे भी भारत-अमेरिकी सम्बन्धों पर विपरीत प्रभाव पड़ा। ऐसा ही विवाद हिन्द-चीन की समस्या को लेकर उभरा। भारत इस समस्या का संतोषजनक हल चाहता था, लेकिन अमेरिका इसे युद्ध द्वारा सुलझाना चाहता था। इसी तरह 24 फरवरी, 1954 को अमेरिका और पाकिस्तान के बीच हुई सैन्य सन्धि के कारण भी भारत-अमेरिकी सम्बन्ध खराब हुए। इस सन्धि के अनुसार अमेरिका ने पाकिस्तान को सैनिक सहायता देना शुरु कर दिया। भारत ने इसे अपने राष्ट्रीय हितों के लिए खतरा समझा और पाकिस्तान को दी जाने वाली सैन्य सहायता की अमेरिकन नीति का प्रबल विरोध किया। इसी दौरान 1954 में ही अमेरिका ने पाकिस्तान को SEATO तथा CENTO का सदस्य बना लिया और भारत पर भी इसकी सदस्यता के लिए दबाव डाला। भारत द्वारा इनकी सदस्यता ग्रहण किये जाने से मना करने पर अमेरिका का भारत-विरोधी रुख ओर अधिक बढ़ गया।

लेकिन इसके बावजूद भी भारत-अमेरिकी सम्बन्धों के कुछ सकारात्मक पहलु भी विकसित होते रहे। इस दौरान दोनों देशों में आर्थिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में सम्बन्धों का विकास होता रहा। 1951 में दोनों देशों में 'तकनीकी सहयोग समझौता' हुआ जिसके अनुसार अमेरिका ने भारत को तकनीकी मदद दी थी। इस दौरान भारत को अमेरिका के कई निजी संस्थानों से भी सहायता मिली। अमेरिका ने भारत की पंचवर्षीय योजनाओं हेतु आर्थिक सहायता भी दी। इस प्रकार भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में तनाव के साथ-साथ सहयोग की प्रव त्ति का भी विकास होता रहा।

(III) 1955 से 1971 तक भारत-अमेरिका सम्बन्ध

(Indo-US Relations from 1955 to 1971)

इस युग में शुरुआती रूप में भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में सहयोग की प्रक्रिया आगे बढ़ी। इस युग में अमेरिका का भारत के प्रति द ष्टिकोण बदला। स्टालिन की म त्यु के बाद ख्रुश्चेव द्वारा त तीय विश्व के प्रति अपनाई गई शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति (Policy of Peaceful Co-existance) के सन्दर्भ में अमेरिका ने भी अपनी विदेश नीति में बदलाव लाना ही श्रेयकर समझा। इसलिए उसने अपनी विदेश नीति में बदलाव लाकर भारत को बहुत बड़ी मात्रा में आर्थिक सहायता प्रदान करना शुरु कर दिया ताकि साम्यवाद के बढ़ते वेग को रोका जा सके। इसमें राष्ट्रपति कैनेडी ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसने भारत-चीन युद्ध में भारत का ही पक्ष लिया और उसकी गुटनिरपेक्षता की नीति की सराहना की। अब अमेरिका दक्षिण एशिया में भारत का महत्व समझने लगा तथा उसे सैन्य व आर्थिक सहायता देने पर सहमत हो गया। उसने कश्मीर मुद्दे पर भी अपना रुख कुछ नरम किया।

1956 में स्वेज नहर संकट के समय भारत ने अमेरिका द्वारा युद्ध बन्द करवाने के प्रयासों का पूरा समर्थन किया। इसी वर्ष अमेरिकन राष्ट्रपति आइजनहावर की भारत यात्रा से भारत-अमेरिका सम्बन्धों में सुधार आया। 1957 में नेहरु जी अमेरिका की यात्रा पर गए और मधुर सम्बन्धों की स्थापना के प्रयासों को आगे बढ़ाया। परन्तु इस दौरान 1956 में हंगरी में हुए विद्रोह के प्रश्न पर अमेरिका ने भारत की नीति की आलोचना की। इस विद्रोह में सोवियत संघ ने खुलकर मौत का तांडव खेला। जब संयुक्त राष्ट्र महासभा में अमेरिका ने हंगरी में सोवियत हस्तक्षेप की निन्दा वाला एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो भारत ने इस प्रस्ताव के मतदान में भाग नहीं लिया। उसके बाद जब हंगरी में स्वतन्त्र चुनाव करवाने वाला प्रस्ताव लाया गया तो उसका भी भारत ने विरोध करके अपना सोवियत समर्थक द ष्टिकोण दर्शा दिया। इससे भारत-अमेरिकी सम्बन्ध अधिक कटु हो गये। लेकिन 1957 में नेहरु जी ने अमेरिका की यात्रा की और दोनों देशों के सम्बन्धों में कुछ सुधार आया। उसके बाद अमेरिका ने 'आइजनहावर सिद्धान्त' के तहत लेबनान व ईराक में हस्तक्षेप किया तो भारत द्वारा आलोचना किए जाने से दोनों देशों के सम्बन्ध फिर से बिगड़ गये। परन्तु दिसम्बर 1959 में राष्ट्रपति आइजनहावर की भारत यात्रा ने दोनों देशों के बीच दूरियां कुछ कम कर दी। इसके बाद 4 मई 1960 को भारत तथा अमेरिका के बीच वांशिगटन में एक खाद्य समझौता हुआ। इस समझौते का उद्देश्य विकासशील देशों को कृषि वस्तुएं, विशेष तौर पर खाद्यान्न, रियायती दरों पर देकर भूखमरी से बचाना था। इस समझौते को "P.L. 480" नाम दिया गया। इससे भारत को काफी लाभ हुआ। भारत में कई कृषि अनुसंधान संस्थायें स्थापित हुई तथा शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के क्षेत्र में भी आश्चर्यजनक प्रगति हुई। इस तरह इस समझौते ने भारत-अमेरिकी सम्बन्धों की खाई को पाट दिया।

लेकिन भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में फिर से नई दरार पैदा हो गई जब अमेरिका ने 1961 में गोआ को पुर्तगाली शासन से मुक्ति दिलाकर अपना अभिन्न अंग बना लिया। पुर्तगाल नाटो का सदस्य था। अमेरिका ने यह प्रचार किया कि गोवा की जनता पुर्तगाली शासन को ही पसन्द करती है, लेकिन भारत युद्ध की नीति अपना रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ में अमेरिका के एक प्रतिनिधि ने इसे आक्रमण की संज्ञा दी। परन्तु 1962 में चीनी आक्रमण के समय अमेरिका ने भारत के साथ अपने सम्बन्धों के नये द्वार खोल दिये। अमेरिका ने चीनी आक्रमण के समय भारत को बिना शर्त युद्ध सामग्री भेजी और भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति की प्रशंसा भी की। उसके बाद 1964 में भारत के विभिन्न भागों में भारत, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया ओर अमेरिका के वायु सैनिकों ने संयुक्त रूप से सैन्य अभ्यास किए। दिसम्बर 1964 में ही भारत और अमेरिका के बीच नई दिल्ली में एक समझौता हुआ जिसमे तहत अमेरिका ने भारत को तारापुर में परमाणु संयन्त्र स्थापित करने हेतु 8 करोड़ डालर

दिये। 1964 में नेहरु जी की म त्यु हो जाने के बाद लालबहादुर शास्त्री ने भारत की अमेरिका के प्रति नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। शास्त्री जी ने उत्तरी वियतनाम पर अमेरिका के हमले की निन्दा की। इसके कारण अमेरिका ने शास्त्री जी की प्रस्तावित अमेरिकी यात्रा को भी रद्द कर दिया। यह भारत के आत्म-सम्मान को करारा झटका था। इससे दोनों देशों में सम्बन्ध कटुतापूर्ण हो गये।

1965 के भारत-पाक युद्ध ने अमेरिका तथा भारत के बीच नए तनाव को जन्म दिया। इस युद्ध में अमेरिका ने पाकिस्तान का खुलकर समर्थन किया और अपने जंगी जहाज (Warships) भी भारतीय तट की तरफ भेजे। भारत ने अमेरिका को आहजनहावर सिद्धान्त की याद दिलाई जिसके अनुसार अमेरिका के मित्र राष्ट्र उससे प्राप्त सैनिक सहायता व सामग्री का प्रयोग केवल साम्यवाद को कुचलने के लिए ही कर सकते थे। लेकिन अमेरिका इस आक्रामक कार्यवाही को रोकने में नाकाम रहा और उसने पाकिस्तान समर्थक आचरण में कोई परिवर्तन नहीं किया। लेकिन जब युद्ध बन्द करनें की बात आई तो उसने भारत और पाकिस्तान दोनों को युद्ध बन्द करने की बात कही और बाद में दोनों देशों पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये। उस समय भारत पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगाना अन्यायपूर्ण था, क्योंकि भारत ने पहले आक्रमण नहीं किया था। लेकिन इस युद्ध में अमेरिका ने चीन को चेतावनी भी दी कि वह युद्ध को भड़काने में योगदान न दे, वरना उसे स्वयं भारत के पक्ष में आना पड़ेगा। इस तरह अमेरिका ने भारत पाक युद्ध में तटस्थता रखकर तथा चीन को पाकिस्तान की तरफ से युद्ध में प्रवेश करने से रोककर अपनी प्रारम्भिक भूल को सुधार लिया। इससे भारत अमेरिका सम्बन्धों को नई दिशा मिली। युद्ध के बाद दोनों देशों में मैत्रीपूर्ण यात्राओं का दौर शुरु हुआ। अमेरिका ने ताशकन्द समझौते में सोवियत संघ की भूमिका का भी विरोध नहीं किया। इस तरह दोनों देशों में मधर सम्बन्धों के आसार फिर से दिखाई देने लगे।

1966 में शास्त्री जी की म त्यु के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी भारत की प्रधानमन्त्री बनी। अमेरिका के राष्ट्रपति जॉनसन ने उन्हें अमेरिका की यात्रा पर आने के लिए विनती की। 28 मार्च, 1966 को इन्दिरा गांधी अमेरिका की यात्रा पर गई। लेकिन इस यात्रा के परिणाम सुखद नहीं रहे। अमेरिका ने भारत पर मुद्रा अवमूल्यन का दबाव डाला। इसके बाद ही भारत-पाक युद्ध के समय बन्द की गई आर्थिक सहायता चालू की गई। 1967 में अमेरिका ने विरोधी नागा नेता फीजो को अपने देश में पनाह देकर सम्बन्धों को खराब कर लिया। जून 1967 में ही भारत ने इजराइल के विरुद्ध अरब देशों का समर्थन करके अमेरिका को नाराज कर दिया। इसके बाद 1969-70 में भारत ने अमेरिका के वियतनाम में हंस्तक्षेप की भी निन्दा की और 1970 में उत्तरी वियतनाम के साथ अपने राजनयिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये। भारत के इस कार्य को अमेरिका ने नापसन्द किया। इसी दौरान भारत ने कम्बोडिया में अमेरिकी सैनिकों के प्रवेश का विरोध किया। इससे दोनों देशों में तनाव बढ़ता गया। 1970 में जब इन्दिरा गांधी संयुक्त राष्ट्र संघ की स्वर्ण जयन्ती में भाग लेने न्यूयार्क गई तब कोई भी अमेरिकन अधिकारी उनके स्वागत के लिए नहीं आया। इससे नाराज होकर इन्दिरा गांधी ने अमेरिका के राष्ट्रपति निकसन द्वारा आयोजित भोज में भाग नहीं लिया। उसी वर्ष अमेरिका द्वारा संयुक्त राष्ट्र एटलस के प्रकाशन ने जम्मू-कश्मीर को भारत का भाग नहीं दिखाया तो भारत ने इस पर तीव्र आपत्ति की। इस दौरान परमाणु अप्रसार सन्धि (NPT) पर भारत ने हस्ताक्षर न करके अमेरिका की नाराजगी मोल ले ली। भारत ने इस सन्धि को भेदभावपूर्ण बताया। इसके अतिरिक्त भारत व अमेरिका में पश्चिमी एवं दक्षिण-पूर्व एशिया के सन्दर्भ में विदेश नीतियों को लेकर भी मतभेद जारी रहे। जब भारत सरकार ने हनोई में भारतीय दूतावास के कार्यालय का दर्जा ऊँचा न करने का फैसला किया तो अमेरिका ने इसकी आलोचना की और भारत के पांच नगरों में अपने सूचना केन्द्रों को बन्द कर दिया। इससे भारत-अमेरिकी सम्बन्धों के खराब होने के स्पष्ट संकेत दिखाई देने लगे।

भारत-अमेरिकी सम्बन्धों का खराब होना 1971 के भारत-पाक युद्ध में अपनी अन्तिम चरम सीमा पर पहुंच गया। इस युद्ध के दौरान **भारत-सोवियत मैत्री सन्धि (1971)** ने तो सम्बन्धों की दरार को और अधिक बढ़ा दिया। वैसे तो पाकिस्तन भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में पहले से ही बाधक रहा है, लेकिन इस युद्ध में यह बाधा अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई। अमेरिका ने पूर्वी पाकिस्तान में ची रहे दमन चक्र की तरफ ध्यान न देते हुए पाकिस्तान को सैन्य सहायता देना जारी रखा। राजनयिक स्तर पर भी पाकिस्तान की पूरी मदद की। भारत ने इस युद्ध में अमेरिका की भूमिका की निन्दा की। लेकिन अमेरिका पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। अमेरिका ने पाकिस्तान की तानाशाही सरकार की आलोचना न करके उसको पूरा समर्थन देना जारी रखा और अपना सातवां समुद्री बेड़ा भी बंगाल की खाड़ी में भेजा। लेकिन सोवियत संघ द्वारा अमेरिका के हर कदम का विरोध करने तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के विरोध में लाए गए हर प्रस्ताव को वीटो करने से भारत के विरुद्ध संयुक्त सैन्य कार्यवाही नहीं हो सकी। इस तरह इस युद्ध में अमेरिका की कूटनीति की करारी हार हुई।

इससे स्पष्ट है कि 1956 में भारत-अमेरिकी सम्बन्धों को नया आयाम देने के जो प्रयास हुये थे, वे 1971 के भारत-पाक युद्ध में धुल गये। वस्तुतः इस काल में पाकिस्तान को अमरीकी शस्त्रास्त्रों की आपूर्ति, पश्चिमी एशिया संघर्ष, वियतनाम में अमेरिकी हस्तक्षेप, हिन्द महासागर में अमेरिका का बढ़ता दबावव, दक्षिण एशिया में भारत व अमेरिका की परस्पर विरोधी नीति आदि को लेकर भारत और अमेरिका के बीच तनावपूर्ण सम्बन्ध बने रहे। इसलिए इसे 'प्रबल विरोध' का युग कहा जाता है। इस युग में 'भारत-सोवियत मैत्री' (1971) ने भी भारत-अमेरिका सम्बन्धों को बिगाड़ की तरफ लाकर रख दिया।

(IV) 1972 से 1979 तक भारत-अमेरिका सम्बन्ध

(Indo-US Relations from 1972 to 1979)

1971 के भारत-पाक युद्ध के कारण भारत-अमेरिका सम्बन्धों को सुधारने के लिए अमेरिका ने पहल की। फरवरी 1972 में राष्ट्रपति निकलस ने कांग्रेस में बोलते हुए कहा कि "वह भारत से सम्बन्ध सुधारने का इच्छुक है। लेकिन यह इस बात पर निर्भर करता है कि दक्षिण एशिया का यह शक्तिशाली देश अपने पडोसियों के प्रति कैसा रुख अपनाता है।" लेकिन 1972 में जब अमेरिका ने पाकिस्तान को सैनिक सहायता देने की बात की तो भारत ने इसका प्रबल विरोध किया। इससे दोनों देशों में सम्बन्ध सुधार की आशा निर्मूल प्रतीत होने लगी। 1972 में अमेरिका के राष्ट्रपति चीन की यात्रा पर गए और वापिस आकर संयुक्त विज्ञप्ति में पाकिस्तान क्षेत्र से भारतीय सेना की वापसी तथा जम्मू-कश्मीर की जनता के आत्म-निर्णय के अधिकार (Right of Self Determination) की मांग की। इसके बाद मार्च 1973 में अमेरिका ने जब पाकिस्तान को आर्थिक और सैनिक मदद देना शुरु कर दिया तो भारत ने इसकी आलोचना की। अमेरिका द्वारा हिन्दमहासागर में ब्रिटिश अधिकृत डियोगो गार्सिया में अपना नौसैनिक अड्डा स्थापित करने के निर्णय से 1974 में भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में कटुता आ गई। उसके बाद जब भारत ने 1974 में पोकरण परमाणु विस्फोट किया तो अमेरिका ने इसकी काफी आलोचना की। इसके बाद फरवरी 1975 में अमेरिका ने पाकिस्तान को मिसाईल, बमवर्षक व अन्य शास्त्रास्त्र देने का निर्णय किया तो भारत ने इसे अमैत्रीपूर्ण कार्य बताया।

अपनी गलती को सुधारने के लिए अमेरिका ने जल्दी ही भारत के साथ वार्तायें शुरु कर दी। वह अच्छी तरह जानता था कि भारत का सोवियत संघ की तरफ बढ़ता रुझान दक्षिण एशिया में उसके हितों की प्राप्ति में अवश्य बाधक होगा। इसलिए उसने अपने विदेश सचिव हेनरी किसिंजर को नई दिल्ली भेजा। इस अवसर पर 'अतीत की भूलों' और 'परस्पर अविश्वास' के कारण उत्पन्न खराब सम्बन्धों की खाई को पाटने का प्रयास किया गया। भारत-अमेरिकी

संयुक्त आयोग की स्थापना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। इस आयोग का उद्देश्य आर्थिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, शैक्षिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में लाभप्रद सहयोग की सम्भावनाएं तलाशना था। लेकिन 1975 में भारत में आपातकाल लागू होने से मधुर सम्बन्धों की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। अमेरिका ने आपातकाल को भारत के सन्दर्भ में एक दुःखद घटना कहा तथा भारत में अमेरिकन लोकतन्त्र की प्रक्रियाओं की स्थापना की वकालत की। इसे भारत ने अपने आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप समझा और अमेरिका की कड़े शब्दों में निन्दा की। इसी वर्ष जब भारत के विदेश मन्त्री अमेरिका गए तो दोनों देशों में रचनात्मक सुधारों की प्रक्रिया आगे बढ़ी। 1977 में भारत में जनता दल की सरकार बनने के बाद अमरिका के राष्ट्रपति जिमी कार्टर ने आशा व्यक्त की कि अब भारत-अमेरिका सम्बन्धों का नया अध्याय शुरु होगौ। जिमी कार्टर जनवरी 1978 में भारत की यात्रा पर आए और भारत को दिया जाने वाला आर्थिक सहयोग बढ़ाने का आश्वासन दिया। इसी वर्ष जून 1978 में भारत के प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई, अमेरिका के राष्ट्रपति कार्टर के निमन्त्रण पर अमेरिका गये। इस अवसर पर अमेरिका ने भारत के तारापुर परमाणु बिजलीघर को ईंधन देने तथा परमाणु-क्षेत्र में सहयोग करने का वचन दिया। इससे दोनों देशों की बीच तनाव व शंका कुछ कम हुआ। लेकिन भारत के प्रधानमन्त्री देसाई जी ने इस अवसर पर भी NPT पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। इसके बाद विदेश मन्त्री के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी जी भी अमेरिका गए। वाजपेयी ने अमेरिका से 1980 की बजाय 1993 तक यूरेनियम आपूर्ति करने की बात कही। अमेरिका ने वाजपेयी को आश्वासन दिया कि वह पाकिस्तान के अणुशक्ति विस्फोट के कार्यक्रम को आगे बढ़ाने से रोकने की पूरी कोशिश करेगा। वाजपेयी जी ने अमेरिका को हिन्द महासागर को शांति का क्षेत्र (Zone of Peace) बनाये रखने की आवश्यकता भी महसूस कराई।

वस्तुतः इस युग में तारापुर परमाणु संयन्त्र के लिए अमेरिका द्वारा ईंधन उपलब्ध कराने तथा आर्थिक सहयोग बढ़ाने पर भारत और अमेरिका के बीच सहयोगपूर्ण सम्बन्धों की आशा दिखाई दी। लेकिन हिन्द महासागर में अमेरिका की उपस्थिति को लेकर दोनों देशों में मतभेद की स्थिति बनी रही। जब अमेरिका ने अफगानिस्तान संकट के समय 1979 में पाकिस्तान को सैनिक सहायता देना शुरु किया तो इससे भारत-अमेरिकी सम्बन धों में तनाव पैदा हो गया। जब अफगानिस्तान संकट (1979) के समय अमेरिका ने पाकिस्तान को अग्रिकम पंक्ति का राज्य मान लिया तो इसे भारत कैसे सहन कर सकता था। इस तरह यह युग अच्छे और खराब दोनों तरह के मिश्रित सम्बन्धों का काल रहा।

(V) 1980 से शीत-युद्ध की समाप्ति तक भारत-अमेरिका सम्बन्ध

(Indo-US Relations from 1980 to the End of Cold War)

1980 का वर्ष भारत-अमेरिका सम्बन्धों में बदलाव व सहयोग की उम्मीद लेकर आया। इस वर्ष इन्दिरा गांधी द्वारा भारत की सत्ता पुनः संभालने पर दोनों देशों में मधुर सम्बन्धों का नया अध्याय शुरु हुआ। अक्तूबर 1980 में भारत के विदेशमन्त्री नरसिम्हा राव संयुक्त राष्ट्र महासभा के सम्मेलन में अमेरिका के विदेश मन्त्री एडमण्ड मस्की से मिले और कई मसलों पर बातचीत की। उसके बाद अक्तूबर, 1981 के कानकुन सम्मेलन में (उत्तर-दक्षिण वार्ता) भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने अमेरिकन राष्ट्रपति रीगन से भेंट की। इस भेंट के बाद दोनों देशों के द ष्टिकोण में कुछ परिवर्तन दिखाई दिया और सम्बन्धों में सुधार की आशा दिखाई देने लगी। इस समय दोनों देशों में तारापुर परमाणु संयंत्र के लिए परिष्कृत यूरेनियम की आपूर्ति के बारे में एक समझौता हुआ। 1982 में भारत-अमेरिका सम्बन्धों में सुधार की द ष्टि से नवम्बर महीने में विदेश सचिव स्तर की वार्ता महत्वपूर्ण मानी गई। सितम्बर 1983 में भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने संयुक्त राष्ट्र संघ की यात्रा के दौरान अमेरिका के राष्ट्रपति रीगन से द्विपक्षीय

तथा बहुपक्षीय मामलों पर चर्चा की। 1983 में ही भारत-अमेरिका संयुक्त आयोग (Indo-US Joint Commission) की बैठक में भी पारस्परिक सहयोग पर काफी विचार-विमर्श हुआ। 15 मई, 1984 को अमेरिकी उप-राष्ट्रपति जार्ज बुश ने भारत की यात्रा की। इस यात्रा के दौरान बुश ने भारत को आश्वासन दिया कि उसने पाकिस्तान को जो शस्त्र दिये हैं, उनका प्रयोग भारत के विरुद्ध नहीं किया जायेगा। इसी वर्ष अमेरिकी अन्तरिक्ष शटल मिशन में एक भारतीय वैज्ञानिक को भेजे जाने पर भी सहमति हुई। इससे दोनों देशों में आपसी विश्वास बढ़ा। इसी वर्ष भारत के वाणिज्य मन्त्री विश्वनाथ प्रताप सिंह वाशिंगटन गए तथा 21 अक्तूबर, 1984 को अमेरिका के उप-विदेश मन्त्री रिचर्ड मर्फी भारत आए। इस तरह दोनों देशों में राजनयिक व कूटनीतिक स्तर की वार्ताओं का दौर जारी रहा।

इन्दिरा गांधी की म त्यु के बाद राजीव गांधी ने अमेरिका के साथ राजनीतिक स्तर पर सम्बन्ध मजबूत बनाने के प्रयास शुरु किये। उन्होंने 1985 में अमेरिका की यात्रा की। इसके बाद अमेरिका ने पी०एल० 480 समझौता पुनर्जीवित कर दिया। जब अमेरिका ने NPT पर हस्ताक्षर करने के लिए भारत पर दबाव डाला तो भारत ने इसे नामंजूर कर दिया। अपनी यात्रा के बाद राजीव गांधी ने कहा कि "हम ऐसा समझते हैं कि हम अपने मतभेद कम करने के लिए सहयोग कर सकते हैं तथा हम स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र के समान आदर्शों के लिए मिलकर कार्य कर सकते हैं।" परन्तु राजीव गांधी की क्यूबा व सोवियत संघ की यात्रा ने भारत-अमेरिका सम्बन्धों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ना शुरु हो गया। अमेरिका ने पाकिस्तान को ही अपना समर्थन देना जारी रखा। सम्बन्धों में सुधार के लिए राजीव गांधी अक्तूबर, 1985 में फिर से संयुक्त राष्ट्रसंघ की 40वीं वर्षगांठ के अवसर पर राष्ट्रपति रीगन से मिले और आग्रह किया कि उसे अपने प्रभाव का प्रयोग करके पाकिस्तान को परमाणु बम्ब बनाने से रोकना चाहिये। इसके बाद 1985 में ही अमेरिका ने विदेश सहायता कानून में सीनेटर प्रेसलर की सलाह से संशोधन करके पाकिस्तान को यह प्रमाणित करने को कहा कि उसके पास कोई परमाणु शस्त्र नहीं है। इससे भारत-अमेरिका सम्बन्धों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। राजीव गांधी की अमेरिका यात्राओं से सम्बन्धों का एक दौर शुरु हुआ। 17 मई, 1985 के समझौते द्वारा यह तय हुआ कि अमेरिका भारत को आधुनिकतम तकनीक प्रदान करेगा। इन यात्राओं के दौरान कृषि, वानिकी, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण तथा औद्योगिक अनुसंधान समझौते हुए। अमेरिका ने भारत को आतंकवाद से निपटने में मदद का भी आश्वासन दिया। इस अवसर पर अमेरिका ने भारत को नए शस्त्र देने का प्रस्ताव किया, परन्तु साथ में यह भी शर्त लगाई कि भारत इस तकनीक की जानकारी सोवियत संघ को नहीं देगा। भारत ने भी अमेरिका के पूंजीपतियों को भारत में पूंजी लगाने का आग्रह किया। इस वर्ष दोनों देशों के बीच उच्चस्तरीय शिष्टमण्डलों का भी आदान-प्रदान किया गया। अमेरिका के विदेश मन्त्री बालाड्रिज भारत आए और भारत के विदेश मन्त्री भी अमेरिका गए। वस्तुतः सम्बन्ध सुधारों की द ष्टि से 1985 का वर्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा। इस वर्ष भारत-अमेरिका सम्बन्धों की मजबूत नींव पड़ी जो आगे चलकर दोनों देशों के बीच तनाव कम करने में मददगार साबित हुई।

1986 में भी भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में सुधार के कुछ प्रयास हुए। अमेरिका के प्रतिरक्षा मन्त्री कैस्पर वाइनबर्गर 11 से 14 अक्तूबर, 1986 तक भारत यात्रा पर आए। इस यात्रा का उद्देश्य भारत को सोवियत सेघ पर निर्भरता को कम करके प्रतिरक्षा के क्षेत्र में अमेरिका का प्रभाव बढ़ाना था। अमेरिका ने भारत को सुपर कम्प्यूटर देने तथा हल्के लड़ाकू विमानों के लिए जी०ई० 404 ईंजन देने की बात भी कही और 11 दिसम्बर, 1986 को वाशिंगटन में सुपर कम्प्यूटर देने बारे एक समझौता भी हो गया। वर्ष 1987 में भारत के विदेश सचिव ए०पी० वेंकटेश्वर अमेरिका गए तथा दोनों देशों के बीच आपसी हित के मामलों पर विचार-विमर्श हुआ। 7 जनवरी, 1987 को भारत और अमेरिका ने शैक्षिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में सहयोग के लिए भारतीय मुद्रा कोष स्थापित किया। परन्तु अगस्त 1987 में जब अमेरिका ने पाकिस्तान को पांच अरब डालर के

अत्याधुनिक शस्त्र तथा अन्य आर्थिक सहायता देने का निर्णय लिया और भारत को मिलने वाली आर्थिक मदद घटाकर 6 करोड़ से 3.5 करोड़ डालर कर दी तो इससे भारत अमेरिकी सम्बन्धों में फिर से तनाव उत्पन्न हो गया। फिर भी 9 अक्तूबर 1987 को भारत तथा अमेरिका के बीच 'सुपर कम्प्यूटर समझौता' हो जाने से यह तनाव कुछ ढीला हुआ। राजीव गांधी राष्ट्रमण्डल सम्मेलन में भाग लेने 20 अक्तूबर, 1987 को वाशिंगटन गए। इस अवसर पर अमेरिका ने भारत-श्रीलंका समझौते का स्वागत किया और भारत की ग टनिरपेक्षता को सराहा। वर्ष 1988 के आरम्भ में फिर से भारत-अमेरिका सम्बन्धों को मजबूब बनाने के प्रयास शुरु किये गये। लेकिन 25 मई, 1989 को बुश प्रशासन ने भारत को उन राष्ट्रों की सूचि में रखने का फैसला किया, जिन पर यह आरोप था कि उनकी व्यापारिक पद्धतियां गलत हैं, तो दोनों देशों में फिर से तनाव उत्पन्न हो गा। खाड़ी युद्ध (1990) में भारत की अमेरिका विरोधी भूमिका ने भी दोनों देशों के बीच दूरियां बढ़ा दी।

वस्तुतः इस युग में अमेरिका ने महसूस किया कि भारत की उभरती क्षमताओं को अधिक देर तक नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता तो उसने भारत के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने के कई प्रयास किये। उसने दक्षिण एशिया में भारत के महत्व को समझा। 1982 में इन्दिरा गांधी की वाशिंगटन यात्रा के काफी सुखद परिणाम निकले और दोनों देशों के बीच सन्देह के बादल छटने लगे। अमेरिका ने भारत की आर्थिक सुधारों के लिए मदद भी दी। अमेरिका चाहता था कि भारत सोवियत संघ के प्रभाव से मुक्त होकर उसके पक्ष में आए। इसलिए उसने रक्षा क्षेत्र, तकनीकी व वैज्ञानिक क्षेत्र में भी भारत के साथ समझौते किये। इस युग में सहयोग के मुख्य क्षेत्र व्यापारिक, आर्थिक तथा राजनयिक रहे। इसके बावजूद भी कश्मीर समस्या पर अमेरिका का रुख पाकिस्तान के साथ ही रहा और उसकी तरफ से पाकिस्तान को पूरी मदद मिलती रही। इसके विपरीत भारत द्वारा अग्नि नामक प्रक्षेपास्त्र के परीक्षण पर भी अमेरिका ने विरोधी रुख अपनाया। आर्थिक सहायता की आड़ में अमेरिका ने भारत पर NPT पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव भी डाला, लेकिन भारत ने स्वतन्त्र विदेश नीति का ही पालन किया और वह अमेरिका के किसी दबाव में नहीं आया। इसके बावजूद भी दोनों देशों के बीच सम्बन्धों के नए इतिहास ने यह दर्शा दिया कि अब आने वाला समय भारत और अमेरिका के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण कायम करेगा। इससे दोनों देशों की विदेश नीतियां एक दूसरे की आवश्यकतानुसार परिवर्तित की जायेंगी तथा सकारात्मक सम्बन्धों की दिशा में काफी प्रगति होगी।

(VI) शीत युद्ध के बाद तथा गुजराल सिद्धांत तक भारत-अमेरिका सम्बन्ध

(Indo-US Relations from the End of Cold War to Gujral Doctrine)

शीतयुद्ध के समाप्ति के संकेत 1989 में ही दिखाई देने लगे थे। शीत युद्ध के अन्त तथा सोवियत संघ के विघटन ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में गुणात्मक परिवर्तन के संकेत दे दिये। इन घटनाओं का भारत-अमेरिकी सम्बन्धों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा अब दोनों देशों ने टकराव का मार्ग छोड़कर द्विपक्षीय सम्बन्धों को सुद ढ़ करने के प्रयास शुरु कर दिये। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के सदस्यों की शिखर बैठक में प्रधानमन्त्री नरसिम्हा राव ने न्यूयार्क में राष्ट्रपति बुश से भेंट की। भारतीय नौसेना प्रमुख भी अमेरिका गए और अमेरिका के नौ-सेना प्रमुख भी भारत आए। अगस्त 1991 में भारत के रक्षा मन्त्री शरद पवार भी अमेरिका गए और दोनों देशों में हिन्द महासागर में संयुक्त नौ-सेना अभ्यास पर सहमति हुई। इस दौरान दोनो देशों में व्यापारिक सांझेदारी में भी व द्धि हुई। भारत के पेटेन्टो, कापीराइट (Patents Copy Rights), ट्रेड मार्को जैसे बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से सम्बन्धित कानूनों को अमेरिका ने अपर्याप्त बताया। इस दौरान तकनीकी सहयोग की दिशा में

भी प्रगति हुई। भारत ने अमेरिका के साथ कई विनिवेश समझौते भी किए। लेकिन इस समय भी अमेरिका भारत पर परमाणु अप्रसार सन्धि (NPT) पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव डालता रहा।

1993 में जब बिल क्लिंटन अमेरिका के राष्ट्रपति बने तो उन्होंने भारत को परमाणु अप्रसार सन्धि (NPT) तथा CTBT पर हस्ताक्षर करने, अपने प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम को स्थगित करने तथा जम्मू-कश्मीर और पंजाब में कथित मानवाधिकारों को सुधारने की दिशा में दबाव बढ़ाना शुरु किया। लेकिन भारत ने इसकी कोई परवाह नहीं की। इससे दोनों देशों के सम्बन्ध तनावपूर्ण ही बने रहे। भारत का कहना था कि अमेरिका कश्मीर पर पक्षपातपूर्ण रवैया छोड़कर सौहार्दपूर्ण वातावरण के लिए तैयार हो तो दोनों देशों में सम्बन्ध मधुर बन सकते हैं। इसी कारण मई 1994 में प्रधानमन्त्री नरसिम्हाराव अमेरिका की यात्रा पर गए। इससे दोनों देशों के बीच सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार हुआ और व्यापार तथा वाणिजय के क्षेत्र में कई समझौते हुए। लेकिन इस दौरान भी आणविक अप्रसार सन्धि, हिन्द महासागर तथा प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के बारे में दोनों देशों के बीच मतभेद ही बने रहे। इस दौरान 12 नवम्बर, 1994 को भारत के उर्जामन्त्री साल्वे भी अमेरिका गए तथा उर्जा क्षेत्र में कई समझौते हुए। इससे सहयोग की प्रक्रिया आगे बढ़ी। 1996 में विदेश मन्त्री तथा बाद में प्रधानमन्त्री बनने के बाद इन्द्रकुमार गुजराल ने भी अमेरिका के साथ सम्बन्ध सुधारने की बात कही। लेकिन भारत ने इस समय भी NPT तथा CTBT (व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि) पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। इस दौरान भारत ने देश की सुरक्षा के मामले में कोई भी समझौता न करने की नीति अपनाई। इससे भारत का विदेशों में सम्मान बढ़ा। गुजराल सिद्धान्त (The Gujral Doctrine) की अमेरिका ने भी प्रशंसा की। अब अमेरिका ने स्वयं ही कश्मीर मुद्दे पर अपना रुख बदला और कहा कि इस समस्या को अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर न उठाकर द्विपक्षीय वार्ता द्वारा ही सुलझाया जाये। अमेरिका ने मान लिया कि कश्मीर मसला भारत और पाकिस्तान की पारस्परिक बातचीत का विषय है। इस तरह गुजराल युग में भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में मधुरता आई।

वस्तुतः भारत-अमेरिका सम्बन्धों का यह दौर सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। इस दौरान भारत ने आर्थिक सुधारों की नीति अपनाई और विदेशी निवेश को बढ़ावा दिया। सोवियत संघ के विघटन के बाद गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के प्रभाव में कमी तथा अमेरिका-पाक सम्बन्धों का अध्याय बदलने लगा। अमेरिका ने अपने राष्ट्रीय हितों के द ष्टिगत भारत से दूरियां कम करनी शुरु कर दी। कश्मीर पर भी अमेरिका का रुख बदला। लेकिन परमाणु अप्रसार के मुद्दे पर भारत-अमेरिका में अब भी मतभेद बने रहे। अमेरिका ने भारत द्वारा अग्नि प्रक्षेपास्त्र छोड़ने पर बार-बार विरोध किया। आतंकवाद के मामलों में भी अमेरिका ने दोहरा मानदण्ड अपनाकर अपनी रूढ़िवादिता का ही परिचय दिया। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत-अमेरिका सम्बन्ध खराब थे। इस युग में दोनों देश एक दूसरे के समीप आने के लिए संघर्षरत रहे। 1996 में पी०के० पाणिग्रही का सकहना है कि "इस बात के स्पष्ट संकेत धीरे-धीरे प्राप्त हो रहे हैं कि वाशिंगटन भारत के अधिक निकट आना चाहता है।" इस समय दोनों देशों में लगभग 4 अरब डालर के व्यापारिक समझौते हुए। अमेरिका ने भारत को विश्व के 10 प्रमुख बाजारों में से एक माना। अमेरिका ने विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) से भारत के लिए सहायता की जोरदार वकालत की। अमेरिका की तरफ से भारत के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने के प्रयास इस दौर में काफी हद तक सफलता की राज पर चले और इस युग में भारत-अमेरिका सम्बन्धों में सुधार की आशा प्रबल हुई।

(VII) 1998 से 2004 तक भारत-अमेरिका सम्बन्ध

Indo-US Relations from 1998 to 2004)

भारत-अमेरिका सम्बन्धों में उस समय दरार उत्पन्न हो गई जब भारत ने मई, 1998 में 5 परमाणु परीक्षण किए। इससे भारत-अमेरिका सम्बन्धों को करारा झटका लगा। अमेरिका ने G-8 की बैठकों

में भारत की आलोचना की और भारत पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये। इन प्रतिबन्धों को कड़ा करने के लिए अमेरिका के व्यापार विभाग के निर्यात ब्यूरो ने 13 नवम्बर 1988 को एक सूची जारी करके भारत को 40 प्रमुख संस्थाओं तथा उनकी 200 सहायक संस्थाओं को व्यापारिक सम्बन्ध जोड़ने को प्रतिबधित कर दिया। इससे द्वि-पक्षीय सम्बन्धों को हानि हुई। बाद में अमेरिकन सीनेट ने भोजन, दवाओं व खाद्य उत्पादों पर से प्रतिबन्ध हटा लिये। लेकिन भारत ने आर्थिक दबावों के बावजूद भी CTBT (1993) पर हस्ताक्षर नहीं किये तो अमेरिका को अपना रुख बदलना पड़ा। मई, 1999 में कारगिल युद्ध के समय अमेरिका ने भारत का ही समर्थन किया और पाकिस्तान पर इस समस्या को हल करने के लिए दबाव डाला। इसके बाद 27 अक्तूबर 1999 को अमेरिका ने भारत पर लगे कुछ आर्थिक प्रतिबन्धों में ढील दी। उसने सभी तरह के आतंकवाद का सफाया करने के लिए आतंकवाद विरोधी भारत-अमेरिका संयुक्त कार्यदल बनाने की भी घोषणा की। इस कार्यदल की प्रथम बैठक फरवरी 2000 में वाशिंगटन में हुई। उसके बाद मार्च 2000 में राष्ट्रपति बिल क्लिंटन भारत की यात्रा पर आये और भारत के साथ स्थायी सहयोग का रिश्ता कायम करने का वचन दिया। यद्यपि इस बार भी भारत CTBT पर हस्ताक्षर न करने पर अड़ा रहा और राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ कोई भी समझौता नहीं किया। लेकिन इस यात्रा से भारत-अमेरिका सम्बन्धों में पोकरण विस्फोटों के बाद आया गतिरोध समाप्त हुआ। सम्बन्धों में सुधार के मार्ग को आगे बढ़ाते हुए भारत के प्रधानमन्त्री वाजपेयी जी भी सितम्बर 2000 में अमेरिका की यात्रा पर गए। इस यात्रा के दौरान सहयोग के विशिष्ट क्षेत्रों, परमाणु अप्रसार तथा आर्थिक मुद्दों पर चर्चा हुई और आतंकवाद तथा कश्मीर की समस्या पर एकरूपता बनाने के प्रयास किए गए। इसके बाद जनवरी 2001 में अमेरिका की कांग्रेस के दल ने भारत भ्रमण बिकया। उसके बाद 26 जनवरी 2001 को गुजरात में आए भूकम्प के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए अमेरिका ने सहायता व सहयोग की अपील भारत से की। उसके बाद 3 अप्रैल 2001 से 9 अप्रैल 2001 तक पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन भारत आए। इसी दौरान भारत के विदेश मन्त्री भी अमेरिका की यात्रा पर गए। इससे भारत-अमेरिका सम्बन्धों को नई दिशा मिली।

11 सितम्बर, 2001 को अमेरिका पर हुए आतंकवादी हमलों की भारत ने तीव्र आलोचना की और आतंकवाद को विश्व से नष्ट करने में अमेरिका से सहयोग की अपील की। भारत ने अफगानिस्तान में (2001) अमेरिका द्वारा चलाए गए युद्ध का भी समर्थन किया। इसके बाद 13 दिसम्बर 2001 में भारतीय संसद पर हुए हमले की अमेरिका ने आलोचना की और भारत को आतंकवाद को कुचलने में सहयोग का आश्वासन दिया। इसके बाद जुलाई 2003 में भारत ने अमेरिका द्वारा ईराक में युद्ध के समय भी शान्ति सेना भेजने का विचार किया, परन्तु विरोधी दलों के दबाव के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो सका। इस दौरान भारत-अमेरिका के बीच आर्थिक सहयोग के क्षेत्र में व द्धि हुई और दोनों देशों के बीच व्यापार, 1994-95 में 8 बिलियन डालर से, 2002-2003 में 14 बिलियन डालर हो गया। इस समय अमेरिका ने CTBT पर भारत द्वारा हस्ताक्षर करने पर दबाव नहीं डाला। यद्यपि कश्मीर मुद्दा अभी भी भारत-अमेरिकी सम्बन्धों में महत्वपूर्ण स्थान पर था। वर्तमान मनमोहन सरकार (मई 2004) ने भी अमेरिका के साथ मधुर सम्बन्ध कायम करने की वचनबद्धता को दोहराया है। जुलाई, 2004 में दोनों देशों के बीच खुला आकाश समझौता करने पर बातचीत हुई। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि दोनों देशों में मतभेद समाप्ति के कगार पर हैं। सत्य तो यह है कि परमाणु अप्रसार सन्धि, CTBT, कश्मीर समस्या व आतंकवाद, नई अन्तराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, अमेरिका-पाक सम्बन्ध, ईराक में शान्ति स्थापना, संयुक्त राष्ट्र में भूमिका, आतंकवाद के बारे में दोहरा मापदण्ड आदि के सन्दर्भ में दोनों देशों में मतभेद द ष्टिगोचर होते हैं। परन्तु आज भारत-अमेरिका सम्बन्ध सुधार की राह पर है और भविष्य में उनमें सुधार की प्रबल आशा है। वस्तुतः यह सुधार आतंकवाद, परमाणु अप्रसार तथा कश्मीर समस्या पर अमेरिका द्वारा अपनाए जाने वाले द ष्टिकोण पर ही निर्भर है।

निष्कर्ष

(Conclusion)

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि 1947 से लेकर आज तक भारत-अमेरिका सम्बन्धों में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। प्रारम्भ से लेकर आज तक भारत-अमेरिका सम्बन्धों में तनाव का प्रमुख कारण भारत-पाक सम्बन्ध रहे हैं। यद्यपि कई बार भारत-अमेरिका सम्बन्धों में सहयोग भी दिखाई दिया, लेकिन वह शीघ्र ही लुप्त हो गया। प्रारम्भ से लेकर आज तक भारत तथा अमेरिका में कश्मीर समस्या तथा परमाणु अप्रसार कार्यक्रम पर परस्पर विरोधी द ष्टिकोण के कारण ही टक्राव रहा है। अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को सैन्य सहायता दिया जाना भारत के लिए अमेरिका के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में बाधक रहा है। 1965 तथा 1971 के भारत-पाक युद्ध में अमेरिका ने भारत के हितों की अनदेखी करके पाकिस्तान का ही साथ दिया। 1971 की भारत-सोवियत मैत्री ने भारत-अमेरिका सम्बन्धों में दरार उत्पन्न की। ऐसा ही टकराव NPT तथा CTBT को लेकर भी हुआ। यद्यपि चीनी आक्रमण (1962) तथा कारगिल युद्ध के समय अमेरिका का द ष्टिकोण भारत-समर्थक रहा। परन्तु व्यवहार में हमेशा अमेरिका ने पाकिस्तान की ही मदद की है। गुजराल सिद्धान्त के बाद भारत के प्रति आए बदलाव से अमेरिका के साथ भारत के सम्बन्ध प्रगति की राह पर है। अमेरिका ने भारत को आतंकवाद को कुचलने में भी भरपूर मदद देने का आश्वासन दिया है। परन्तु अमेरिका द्वारा ईराक व अफगानिस्तान में की गई सैनिक कार्यवाहियों से ऐसा प्रतीत होता है कि अमेरिका भारत के आतंकवाद के प्रति अधिक गम्भीर नहीं है। फिर भी आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनयिक सहयोग की द ष्टि से भारत-अमेरिका सम्बन्ध प्रायः सामान्य ही रहे हैं। यदि भारत और अमेरिका पारस्परिक मतभेदों को अतीत के साये से दूर रखकर हल करने का प्रयास करें तो दोनों देशों के मध्य मधुर व सौहादपूर्ण सम्बन्धों का युग शुरु किया जा सकता है।

अध्याय-13

रूस के प्रति भारत की विदेश नीति

(India's Foreign Policy Towards Russia)

अन्य देशों की तुलना में सोवियत संघ के साथ भारत के विदेशी सम्बन्ध काफी सौहार्दपूर्ण रहे हैं। शीतयुद्ध के वातावरण में भी भारत के सोवियत संघ के साथ अच्छे सम्बन्ध थे और सोवियत संघ के विघटन के पश्चात सोवियत संघ के वास्तविक उत्तराधिकारी रूस व अन्य गणराज्यों के साथ भी ये सम्बन्ध काफी अच्छे बने रहे। यद्यपि स्टालिन युग में भारत -सोवियत सम्बन्धों में कुछ तनाव अवश्य था, लेकिन स्टालिन की म त्यु के बाद खुश्चैव युग में ये सम्बन्ध सौहादपूर्ण बनने लगे और शीत युद्ध के अन्त व सोवियत संघ के विघटन का भी इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। साम्यवादी राष्ट्र होने के बावजूद भी सोवियत संघ ने हमेशा ही भारतीय लोकतन्त्र को विकसित होने में हर सम्भव मदद दी और अपने को भारत का सच्चा हितैषी साबित किया। स्टालिन के अलावा अन्य सभी रूसी नेताओं ने भारत की गुटनिरपेक्षता को कभी शक की द ष्टि से नहीं देखा। भारत की स्वाधीनता का संघर्ष भी सोवियत संघ द्वारा ही समर्थित था और बाद में साम्राज्यवादी और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष में सोवियत संघ का भारत को पूर्ण सहयोग रहा। अमेरिका ने भारत-रूस सहयोग को हमेशा ही शक की द ष्टि से देखा, लेकिन रूस ने कभी इस बात पर एतराज नहीं किया कि भारत के अमेरिका के साथ सम्बन्ध क्यों हैं। वस्तुतः भारत-सोवियत संघ के बीच सम्बन्ध मैत्री की अनूठी मिसाल है। दोनों देशों के सम्बन्ध आधिपत्य पर आधारित न होकर सद्भावना व सहयोग पर ही आधारित रहे हैं। कश्मीर समस्या पर सोवियत संघ का रूख हमेशा ही भारत समर्थक रहा है। अन्य मुसीबतों में भी सोवियत संघ ने भारत की पूरी मदद की है, चाहे वह 1965 व 1971 के युद्ध हों या कारगिल की लड़ाई। इसी कारण एम०सी० चावला ने ठीक ही कहा है कि "सोवियत संघ संकट के दिनों में हमारा मित्र सिद्ध हुआ है, और जो संकट के दिनों में हमारा मित्र सिद्ध होता है, वही वास्तविक मित्र होता है।" अपने विघटन के बावजूद सोवियत संघ अपने उत्तराधिकारी रूस के माध्यम से आज भी भारत को हर दिशा में मदद दे रहा है। भारत-सोवियत संघ या रूस के सम्बन्धों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

(I) भारत-सोवियत संघ सम्बन्धों की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि

(Historical Background of Indo-USSR Relations)

भारत के सोवियत संघ के सांस्कृतिक और आर्थिक सम्बन्ध काफी प्राचीन रहे हैं। 17वीं सदी में भारत के बहुत सारे व्यापारी रूस गये और वोल्गा नदी क्षेत्र में बस गए। 1917 को रूसी क्रान्ति का भारत के स्वाधीनता संघर्ष पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। 1927 में जवाहर लाल नेहरु ने सोवियत

संघ की यात्रा की। सोवियत संघ को मित्र के रूप में देखने का द ष्टिकोण नेहरु ने ही दिया। नेहरु जी सोवियत संघ की विदेश नीति से काफी प्रभावित हुए। 1939 के सोवियत जर्मन समझौते, सोवियत सेना द्वारा पोलैण्ड तथा फिनलैण्ड पर आक्रमण की नेहरु जी ने काफी आलोचना की। परन्तु इससे सोवियत संघ का भारत के प्रति लगाव कम नहीं हुआ। सोवियत संघ ने निरन्तर भारत की स्वतन्त्रता का जोरदार समर्थन करना जारी रखा। 1945 के सेनफ्रांसिसको सम्मेलन में भारत की स्वतन्त्रता की आवाज बुलन्द करने वाला सोवियत संघ ही था।

(II) 1947 से स्टालिन की म त्यु (1953) तक भारत-रूस सम्बन्ध

(Indo-USSR Relations from 1947 to 1953)

1947 में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद भारत ने शीत-युद्ध से स्वयं को दूर रखते हुए स्वतन्त्र विदेश नीति को अपनाया। भारत की विदेश नीति का प्रमुख ध्येय था कि गुटनिरपेक्ष रहकर सोवियत संघ तथा अमेरिका के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये जायें। स्वतन्त्रता विदेश नीति के रूप में भारत ने एशियाई व अफ्रीकी देशों की स्वतन्त्रता का समर्थन किया। उधर सेवियत संघ भी साम्राज्यवाद विरोधी नीति पर चल रहा था। इस द ष्टि से दोनों देशों में निकटता अपना स्वाभाविक था। भारत ने रूस के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व पर आधारित गुटनिरपेक्ष नीति अपनाई तो अमेरिका ने भारत को साम्यवाद समर्थक और गुटनिरपेषता की नीति को ढकोसला करार दिया। ऐसी ही कुछ शंकाएं सोवियत संघ के मन में भी थी। इसलिए भारत-सोवियत मैत्री की जो आशा की गई, वह स्टालिन की तानाशाही की भेंट चढ़ गई। भारत के सकारात्मक प्रयासों के बावजूद भी सोवियत संघ के पूर्वाग्रहों के कारण दोनों देशों में प्रारम्भ में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम नहीं हो सके।

स्टालिन युग में कई उतार-चढ़ाव देखने को मिले। इसी कारण इस युग में उपनिवेशवाद, प्रजातीय विभेद, निःशस्त्रीकरण आदि बातों पर तो दोनों देशों में समान सोच देखने को मिली। लेकिन कुछ मामलों में दोनों देशों की सोच भिन्न-भिन्न होने के कारण भारत रूस सम्बन्ध वांछित परिणाम तक नहीं पहुंच सके। भारत ने यूनान और कोरिया के मामलों में पश्चिमी गुट का ही समर्थन किया और 1949 में नेहरु जी ने सोवियत संघ के विश्व साम्यवाद के विस्तारवादी रूप की एशियाई देशों की शान्ति व स्वतन्त्रता के लिए सबसे बड़ा खतरा बताया। इसी तरह सोवियत नेता स्टालिन ने साम्यवाद विरो धी और तटस्थ देशों को अपना सबसे बड़ा शत्रु माना। इसलिए सेवियत संघ ने भारत की गुटनिरपेक्षता को भी शंका की द ष्टि से देखा। परन्तु 1949 में भारत-रूस सम्बन्धों को उस समय नई दिशा मिली जब दोनों देशों के बीच पहला व्यापारिक समझौता हुआ। इस दौरान भारत-रूस सम्बन्धों में सुधार का प्रमुख कारण था-नेहरु द्वारा रचनात्मक व सक्रिय ढंग से गुटनिरपेक्षता की नीति का संचालन करना। नेहरु जी ने ब्रिटेन और अमेरिका के साथ मैत्री सम्बन्धों का निर्वहन करते हुए स्वतन्त्र विदेश नीति का परित्याग नहीं किया तो इससे सोवियत संघ के मन में उत्पन्न सभी भ्रान्तियां खत्म हो गई। भारत द्वारा साम्यवादी चीन को मान्यता देने से भी सोवियत संघ का द ष्टिकोण बदला। इसी युग में डा० राधाकृष्ण मास्को में भारत के राजदूत नियुक्त किये गये और उनके प्रयासों से ही दोनों देशों के बीच सौहार्दपुर्ण सम्बन्ध विकसित होने लगे।

1950 में कोरिया संकट (Korean Crisis) के उत्पन्न होते ही भारत-सोवियत संघ सम्बन्धों को करारा झटका लगा। इस युद्ध में भारत ने अमेरिका का पक्ष लिया। इससे सोवियत संघ के मन में भारत के प्रति रोष पनपना स्वाभाविक ही था। इससे सोवियत संघ के मन में भारत के प्रति रोष पनपना स्वाभाविक ही था। परन्तु जब भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ की सेनाओं को 38वीं अक्षांश रेखा को न पार करने और चीन को संघ द्वारा आक्रमणकारी घोषित न करने का आग्रह किया तो स्टालिन का भारत विरोधी द ष्टिकोण बदला। इसी दौरान **जापान शांति संधि (1951)** पर भी भारत ने सोवियत संघ का ही समर्थन किया और हस्ताक्षर नहीं किए। इससे बाद अप्रैल 1952 में भारत के राजदूत डा० राधाकृष्ण ने स्टालिन से भेंट की तो दोनों देशों में सम्बन्ध सुधार का दौर शुरु हुआ।

इस समय कश्मीर समस्या पर सोवियत संघ का द ष्टिकोण भारत समर्थक ही रहा। यद्यपि कोरिया-युद्ध बन्दियों तथा मालय में घटने वाली घटनाओं पर दोनों देशों में मतभेद ही रहे, परन्तु विश्व शांति की स्थापना, संयुक्त रारष्ट्र व्यवस्था को मजबूत बनाना, निःशस्त्रीकरण का समर्थन, रंगभेद की नीति व उपनिवेशवाद का विरोध आदि मामलों में भारत और सोवियत संघ में सहमति बनी रही। 1953 में स्टालिन की म त्यु के बाद दोनों देशों में सम्बन्धों के नए युग की शुरुआत हुई जिसने अनूठी मिसाल कायम की।

(III) 1954 से 1963 तक भारत-सोवियत संघ सम्बन्ध

(Indo-USSR Relations from 1954 to 1963)

स्टालिन के बाद भारत सोवियत संघ सम्बन्धों का खुश्चेव युग शुरु हुआ। इस युग को सक्रिय सहयोग का युग कहा जाता है। इस युग में सोवियत संघ ने अपनी विदेश नीति में बदलाव लाया और भारत के प्रति सहानुभूति की भावना प्रकट की। स्टालिन की म त्यु के बाद खुश्चेव ने सोवियत साम्यवादी दल का महासचिव बनते ही स्टालिन की नीतियों की कठोरता में सीमित उदारीकरण करना आरम्भ किया। इस युग में कश्मीर की समस्या पर सोवियत संघ ने प्रत्यक्ष रूप से भारत का ही पक्ष लिया। 1954 में अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को दी गई सैनिक सहायता के विरोध का सोवियत संघ ने पूरा समर्थन किया। इसके साथ ही हिन्द चीन-समस्या (1954) के समाधान के लिए भारत द्वारा रखे गए **छः सूत्री प्रस्ताव** का अमेरिका विरोधी होना भी सोवियत संघ को भारत के करीब लाया। इसी वर्ष भारत और चीन के बीच हुए पंचशील समझौते (Panchsheel Agreement) को भी सोवियत संघ ने साम्यवादी खेमे के हितों के अनुकूल पाया। सोवियत संघ ने इस पंचशील सिद्धान्त का अनुमोदन कर दिया। इसी दौरान अमेरिका द्वारा साम्यवाद को कुचलने के लिए अपने सैनिक संगठनों दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन (SEATO) तथा बगदाद पैक्ट (CENTO) का जो जाल बिछाया, उसकी भारत ने निन्दा की। इससे भारत-सोवियत सम्बन्धों में निकटता आई और दोनों के आपसी सम्बन्ध प्रगाढ़ होने लगे। इसी कड़ी में दोनों देशों के बीच मित्रता उस समय गहरी हो गई, जब भारत के प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरु 1955 में सोवियत संघ की यात्रा पर गए। इस दौरान दोनों देशों की तरफ से एक संयुक्त विज्ञाप्ति निकाली गई जिसमें नेहरु जी ने कहा "रूस-भारत मैत्री सम्बन्ध पंचशील द्वारा निर्धारित होते रहेंगे तथा दोनों देश पारस्परिक लाभ और कल्याण के लिए एक दूसरे के साथ सहयोग करते रहेंगे।" इसके बाद 1955 में रूसी प्रधानमन्त्री बुलगानिन तथा बाद में साम्यवादी दल के महासचिव निकिता खुश्चेव भारत यात्रा पर आए। इससे भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का सम्मान बढ़ा। बुलगानिन ने भारतीय संसद के सामने कहा कि "हम अपने आर्थिक तथा वैज्ञानिक अनुभव को आपके साथ बांटने को तैयार हैं।" खुश्चेव ने कहा कि "हम अपनी रोटी का अन्तिम टुकड़ा भी आपके साथ बांटकर खायेंगे।" कश्मीर के बारे में बोलते हुए खुश्चेव ने कहा कि "कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है। आप हमें पहाड़ की चोटियों पर खड़ा होकर पुकार लीजिएगा, हम आपकी मदद के लिए तुरन्त आ जायेंगे।" इस तरह के वकतव्य उस समय सत्य सिद्ध हुए जब भारत की हर कदम पर सोवियत संघ ने पूरी मदद की। सोवियत संघ ने भारत को तकनीकी और आर्थिक मदद भी की जिससे भारत में भिलाई इस्पात कारखाना स्थापित हुआ।

1955 में सोवियत संघ ने गोवा को भारत का ही अभिन्न अंग बताया और पुर्तगाल को गोवा से चले जाने को कहा। इसी वर्ष दोनों देशों का उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के बारे में भी समान द ष्टिकोण रहा। यद्यपि हंगरी समस्या पर भारत और सोवियत संघ में आपस में कुछ मतभेद अवश्य पैदा हुए, लेकिन यह तनाव जल्दी ही खत्म हो गया। 1956 में **स्वेज नहर संकट** के समय तो दोनों देशों का द ष्टिकोण समान ही रहा था, परन्तु **हंगरी विवाद** ने कुछ तनाव अवश्य उत्पन्न किया। इसके बावजूद भी सोवियत संघ कश्मीर विवाद पर भारत का समर्थक बना रहा और सुरक्षा परिषद

में भारत विरोधी प्रस्तावों पर वीटो का प्रयोग करता रहा। भारत ने भी हंगरी विवाद पर अपनी भूल सुधारते हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा में प्रस्तावित विचार हो सोवियत संघ के विरुद्ध था, उसके मतदान में भाग नहीं लिया। इस युग में निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी विचारों में भी दोनों देशों के द ष्टिकोण समान रहे। भारत ने सोवियत संघ द्वारा परमाणु परीक्षण बन्द करने की कार्यवाही का पूरा समर्थन किया। उसी तरह 1959 तथा 1960 में महासभा के अधिवेशनों में भारत द्वारा लागू किए गए निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी प्रस्तावों को सोवियत संघ ने भी पूरा समर्थन किया। 1961 में जब भारत ने गोवा को मुक्त कराया तो इस कार्यवाही का सोवियत संघ ने पूरा समर्थन किया। इसी पर 1962 में जब सैनिक कार्यवाही (Military Action) का मामला सुरक्षा परिषद में आया तो सोवियत संघ ने भारत की निन्दा के प्रस्ताव पर वीटो कर दिया। उसके बाद 1962 में जब भारत पर चीन ने आक्रमण किया तो सोवियत संघ ने चीन को बाध्य किया कि वह अपनी आक्रमणकारी प्रव ति पर रोक लगाये। इस युद्ध के दौरान सोवियत-चीनी भाईचारे को बनाये रखने के लिए पहले तो सोवियत संघ ने भारत को दिये जाने वाले मिग-21 विमानों की आपूर्ति रोक दी, परन्तु बाद में उसने यह सहायता भारत को उपलब्ध करा दी। इससे शीघ्र ही दोनों देशों के बीच व्याप्त अविश्वास का निवारण हो गया। 1963 में भी भारत को सेवियत संघ की तरफ से प्रचूर मात्रा में सामरिक और आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। सोवियत संघ ने मिग विमानों के निर्माण के लिए भारत में ही कारखाना स्थापित करने में सहयोग दिया। इसके साथ ही नवम्बर 1963 में दोनों देशों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार भारत में तेल और गैस का पता लगाने तथा उन्हें विकसित करने के लिये सोवियत संघ से तकनीकी सहायता प्राप्त हुई। सोवियत संघ ने बोकारो इस्पात कारखाने के निर्माण में भी सहयोग देने का वचन दिया। इस तरह भारत-सोवियत सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आई और दोनों देशों के बीच आर्थिक व राजनीतिक सम्बन्धों में प्रगति भी हुई।

(IV) 1964 से 1970 तक भारत-सोवियत संघ सम्बन्ध

(Indo-USSR Relations from 1964 to 1970)

1964 में नेहरु जी की म त्यु और ख्रुश्चेव के पतन के बाद सोवियत संघ की विदेश नीति में कुछ बदलाव आा। ख्रुश्चेव के बाद सोवियत संघ में 26 अक्तूबर, 1964 को ब्रेजनेव और कोसीगिन के नेत त्व का जन्म हुआ। दोनों सोवियत नेताओं ने घोषणा की कि हम भारत के साथ सम्बन्धों में कोई दरार नहीं आने देंगे और हमारी विदेश नीति पहले वाली ही रहेगी। 1965 में जब पाकिस्तान ने पहले कच्छ के रण पर तथा फिर कश्मीर पर हमला किया तो सोवियत संघ ने भारत का ही पक्ष लिया। 1965 के भारत-पाक युद्ध में पश्चिमी गुट भारत को ही आक्रमणकारी घोषित करने की ताक में था। परन्तु सोवियत संघ की वीटो शक्ति ने उसकी सम्पूर्ण आशाओं पर पानी फेर दिया। भारत-पाक युद्ध बन्द कराने में सोवियत संघ की ही महत्वपूर्ण भूमिका रही। इस युद्ध के दौरान जब चीन ने भारत को अल्टीमेटन दिया तब भी सोवियत संघ ने चीन को ऐसा न करने की चेतावनी देकर युद्ध को भयावह होने से बचा लिया। इस युद्ध को बन्द करवाने के बारे में अमेरिकी गुट द्वारा कश्मीर में संयुक्त राष्ट्र सेना भेजे जाने के प्रस्ताव को भी सोवियत संघ ने वीटो कर दिया। सोवियत संघ ने युद्ध-विराम के लिए भारत तथा पाकिस्तान पर दबाव डाला और इस बारे में संयम बरतने का सुझाव दिया। सोवियत संघ ने स्वयं मध्यस्थता के द्वारा इस युद्ध को बन्द करवाने तथा बाद में दोनों देशों कें बीच शांतिपूर्ण सम्बन्ध कायम करने के लिए जनवरी 1966 में ताशकन्द समझौता करवाने में अहम् भूमिका अदा की। वास्तव में ताशकंद सम्मेलन ही भारत-सोवियत मैत्री की नींव सुद ढ़ करने में सफल रहा।

1968 में सोवियत संघ द्वारा पाकिस्तान को शस्त्र सहायता देना शुरु करने से भारत-सोवियत सम्बन्धों में फिर से तनाव उत्पन्न हो गया। इस घटना का भारत की विदेश नीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारत ने सोवियत संघ के इस फैसले की निन्दा की तो उसने इसके उत्तर में कहा कि इस

सहायता का प्रयोग भारत के विरुद्ध नहीं किया जायेगा। इसके बाद दोनों देशों में यह तनाव उस समय कम हुआ जब 3 मई, 1969 को सोवियत प्रधानमन्त्री कोसिजिन स्वयं भारत आये। इस यात्रा का उद्देश्य उन भ्रान्तियों का निवारण करना था जो भारत के मन में रूस द्वारा पाकिंस्तान को सैन्य सहायता देने के बाद उत्पन्न हो गई थी। कोसिजिन ने स्पष्ट किया कि पाक-सोवियत सम्बन्धों का भारत-सोवियत मैत्री पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। सोवियत संघ के विदेश मन्त्री आंद्रे ग्रोमिको ने सुप्रीम सोवियत के छठे अधिवेशन में कहा कि "दोनों देशों की मित्रता की बड़ी पुख्ता कड़ियां हैं जो हमेशा मजबूत रहेंगी।" इसी दौरान मार्च, 1969 में ही सोवियत संघ ने चीन के साथ सीमा विवाद में भारत ने सोवियत संघ का ही समर्थन किया परन्तु जब सोवियत विश्वकोष (1970) में नेफा (अरुणाचल प्रदेश) तथा अक्षय चीन को चीन का हिस्सा बतलाया गया तो भारत सरकार ने विश्व कोष के नक्शे की तीव्र आलोचना की। परन्तु इसका दोनों देशों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सितम्बर 1970 में दोनों देशों के बीच होने वाले व्यापार समझौते ने दोनों देशों के बीच सम्बन्धों को फिर सामान्य बना दिया।

(V) बंगला देश संकट तथा भारत-सोवियत मैत्री सन्धि

(Bangla Desh Crisis and Indo-USSR Friendship Treaty)

1971 में पूर्वी-पाकिस्तान जिसे आज बंगलादेश के नाम से जाना जाता है, में व्यापक जन आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इस विद्रोह को कुलचने के लिए पाकिस्तान ने अपना दमन चक्र चलाया तो लाखों लोग शरणार्थी के रूप में भारत में प्रवेश कर गये। इससे भारत की अर्थव्यवस्था को खतरा उत्पन्न हो गया तो प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने अमेरिका से प्रार्थना की कि वह पाकिस्तान पर दबाव डाले ताकि स्थिति को सामान्य बनाया जा सके और ये शरणार्थी वापिस अपने घरों को जा सके। इसकी बजाय अमेरिका ने पाकिस्तान को उकसाना शुरु कर दिया और भारत को कहा कि यदि युद्ध हुआ तो वह पाकिस्तान की मदद करेगा। इस हालात में भारत के सामने सिवाय इसके कोई चारा नहीं था कि वह सोवियत संघ की मदद ले ले। इसी कारण दोनों देशों ने **9 अगस्त, 1971 को एक शांति, मैत्री और सहयोग की सन्धि** (Treaty of Friendship and Co-operation) पर हस्ताक्षर किए। इस सन्धि से भारतीय उपमहाद्वीप में स्थिरता व शान्ति स्थापित होने में बड़ी मदद मिली। इससे भारत-सोवियत संघ सम्बन्धों में एक नए युग का शुभारम्भ हुआ। अमेरिका के विदेश मन्त्री ग्रेमिको ने सन्धि के प्रारूप पर हस्ताक्षर करने के बाद कहा कि "दो देशों के सम्बन्धों के बीच कभी-कभी ऐतिहासिक घटनाएं घटती हैं। शांति, मित्रता और सहयोग की सन्धि, जिस पर अभी हस्ताक्षर हुए हैं, इसी प्रकार की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है।" इस सन्धि से भारत को एक ढाल मिल गई और अमेरिका ने 1971 के भारत-पाक युद्ध में हस्तक्षेप नहीं किया।

1971 की भारत-सोवियत सन्धि का सार यह था कि भारत और सोवियत संघ एक दूसरे की विदेश नीति का सम्मान करेंगे और विश्व शान्ति के लिए कार्य करेंगे। दोनों देश समय-समय पर एक दूसरे से परामर्श करेंगे तथा एक-दूसरे के विरुद्ध किसी तीसरे देश के साथ कोई सन्धि नहीं करेंगे। यदि भारत या सोवियत संघ पर हमला होता है तो दोनों देश परस्पर विचार-विमर्श करेंगे ताकि ऐसे खतरे को समाप्त किया जाये और दोनों देशों की शान्ति तथा सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए प्रभावकारी कदम उठाये जायें। इस सन्धि में 12 धारायें थी। इनका संक्षिप्त सार निम्नलिखित तरह से है :-

(1) दोनों देशों तथा उनकी जनता के बीच स्थायी शान्ति एवं मित्रता रहेगी। दोनों एक दूसरे की स्वतन्त्रता, सम्प्रभुता और प्रादेशिक अखंडता की रक्षा करेंगे तथा आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

(2) दोनों देश विश्व शान्ति के लिए शस्त्रास्त्रों की दौड़ रोककर निःशस्त्रीकरण में सहयोग देंगे।

(3) दोनों देश उपनिवेशवाद एवं प्रजातिवाद का विरोध करेंगे।

(4) भारत, सोवियत संघ की शांतिप्रियता का आदर करेंगे तथा सोवियत संघ, भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का आदर करेगा।

(5) विश्व शांति और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए दोनों देश एक दूसरे से सम्पर्क तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में सहयोग करेंगे।

(6) दोनों देश आर्थिक, वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक सहयोग को महत्व देते हुए, समानता और पारस्परिक हित के उद्देश्य से वाणिज्य, यातायात और संचार साधनों का विस्तार करेंगे।

(7) दोनों देश कला, विज्ञान, साहित्य, जन स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रेस, रेडियो, दूरदर्शन, खेलकूद एवं पर्यटन के क्षेत्रों में भी सहयोग करेंगे।

(8) दोनों देश एक दूसरे के विरुद्ध किसी अन्य देश के साथ कोई सैनिक सन्धि नहीं करेगे और न ही वे एक दूसरे के विरुद्ध कोई आक्रमण करेंगे तथा न ही अपनी भूमि पर किसी अन्य देश को आक्रमण करने देंगे।

(9) दोनों देश किसी तीसरे देश के सशस्त्र संघर्ष में मदद नहीं देंगे और आक्रमण होने की स्थिति में उस समस्या के समाधान के लिए तुरन्त पारस्परिक परामर्श करेंगे।

(10) दोनों देश 1971 की भारत-सोवियत मैत्री जैसी सन्धि अन्य किसी देश से नहीं करेंगे।

(11) इस सन्धि का कार्यकाल 20 वर्ष होगा जिसे पांच-पांच वर्ष की अवधि के लिए बढ़ाया जा सकेगा। इस सन्धि को समाप्त करने के लिए एक वर्ष का नोटिस देना होगा।

(12) सन्धि की किसी धारा की व्याख्या के सम्बन्ध में उत्पन्न किसी भी विवाद को दोनों पक्ष पारस्परिक बातचीत द्वारा शांतिपूर्ण तरीके से हल करेंगे।

वास्तव में यह सन्धि कोई सैनिक सन्धि न होकर मैत्री सन्धि थी। इस सन्धि से भारत को पाकिस्तान के सम्भावित आक्रमण से अमेरिका के विरुद्ध एक ढाल मिल गई। अब अमेरिका तथा चीन यह जान गए कि यदि उन्होंने पाकिस्तान के पक्ष में युद्ध किया तो सोवियत संघ चुप नहीं बैठेगा। इस सन्धि से भारत-सोवियत सम्बन्धों का नया अध्याय शुरु हुआ। कश्मीर समस्या पर हर समय सोवियत संघ का द ष्टिकोण भारत समर्थक ही बना रहा। इसके बाद भारत को सोवियत संघ की तरफ से काफी बड़ी मात्रा में शस्त्रास्त्रों की सहायता के साथ-साथ आर्थिक सहायता भी मिलने लगी। परन्तु इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि चीन और अमेरिका के साथ भारत की दूरियां बढ़ गई। इस सन्धि को कुछ आलोचकों ने सैनिक सन्धि का नाम दिया और भारत की गुटनिरपेक्षता के समाप्त होने की चर्चा भी चली। वास्तव में इस सन्धि ने गुटनिरपेक्षता को समाप्त न करके एक नया आयाम दिया। भारत ने स्पष्ट किया कि इस सन्धि के बाद भी भारत की गुटनिरेक्षता की नीति का काम करती रहेगी। वस्तुतः भारत ने देश हित के नाम पर अपनी गुटनिरपेक्षता का अर्थ ही बदल डाला। इस सन्धि के बाद भारत में सोवियत संघ का प्रभाव बढ़ गया और सोवियत संघ ने भारत को स्वतन्त्र विदेश के संचालन के लिए पूरी मदद दी। इस सन्धि के बाद दिसम्बर 1971 के भारत-पाक युद्ध में न तो अमेरिका ने हस्तक्षेप किया और न ही चीन ने। सोवियत संघ ने सुरक्षा परिषद के बाहर और अन्दर भारत का ही समर्थन किया। सुरक्षा परिक्षद् में सोयियत संघ ने अमेरिका के उस प्रस्ताव को वीटो कर दिया जिसमें युद्ध विराम और सेनाओं की वापसी की मांग की गई थी। जब सुरक्षा परिषद में भारत विरोधी दूसरा प्रस्ताव लाया गया तो सोवियत संघ ने उसको वीटो कर दिया। इस तरह 1971 की भारत-सोवियत सन्धि ने ही अमेरिमा तथा चीन को इस युद्ध से दूर रखा और कश्मीर पर भारत का दावा पहले की तुलना में कहीं अधिक मजबूत हुआ। अतः 1971 की भारत-सोवियत मैत्री सन्धि दोनों देशों में सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों का आधार मजबूत करने में सफल रही।

(VI) 1972 से शीत युद्ध के अन्त तक भारत-सोवियत संघ सम्बन्ध
(Indo-USSR Relations from 1976 to the End of Cold War)

1971 के भारत-पाक युद्ध के बाद दोनों देशों में शांतिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सोवियत संघ ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। सोवियत संघ ने शिमला समझौते का पूरा समर्थन किया। 1972 में सुरक्षा परिषद में भारत और सोवियत संघ ने एक आवाज में बंगला देश को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनाये जाने का समर्थन किया। इसी वर्ष दोनों देशों ने एक संयुक्त आयोग स्थापित करने पर भी विचार किया ताकि आर्थिक क्षेत्रों में आपसी सहयोग को और अधिक संगठित किया जा सके। सोवियत संघ ने भारत की इस मांग का भी समर्थन किया कि हिन्द महासागर को 'शान्ति का क्षेत्र (Zone of Peace) घोषित किया जाये। 2 अक्तूबर 1972 को दोनों देशों के मध्य 'विज्ञान और तकनीकी सहयोग' का समझौता हुआ। इस समझौता पर हस्ताक्षर करते समय सोवियत उप-प्रधानमन्त्री ने कहा कि यह समझौता 1971 की मैत्री सन्धि का अगला कदम है। इस समझौते के कई सुखद परिणाम निकले। भारत ने सोवियत संघ की मदद से अनेक औद्योगिक परियोजनाओं का विकास किया। 29 नवम्बर 1973 में सोवियत राष्ट्रपति ब्रेजनेव की भारत यात्रा ने भारत-सोवियत मैत्री को नई शक्ति प्रदान की। इस समय भारत और सोवियत संघ के बीच एक आर्थिक एवं व्यापार समझौता हुआ, जिसके अनुसार 1980 तक भारत-सोवियत व्यापर में 150 से 200 प्रतिशत तक व द्धि करने और अनेक क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने का प्रावधान किया गया। दोनों देशों द्वारा जारी संयुक्त विज्ञप्ति में एशियाई देशों की स्वतन्त्रता और सुरक्षा पर भी बल दिया गया। वस्तुतः इस समय एक सथ तीन समझौते हुए। आर्थिक एवं व्यापार समझौते के साथ-साथ दोनों ने योजना आयोगों के घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने तथा एक-दूसरे के सरकारी प्रतिनिधियों को विशेष सुविधायें सुगम करने करने की व्यवस्था भी की। सोवियत संघ के राष्ट्रपति ब्रेजनेव की इस यात्रा से भारत को उद्योगों तथा कृषि के विकास के लिए काफी सहयोग प्राप्त हुआ और भारत की आत्मनिर्भरता में व द्धि हुई। इस तरह भारत-सोवियत सम्बन्धों की प्रगति का मार्ग आगे बढ़ने लगा।

1974 में भारत द्वारा परमाणु परीक्षण (Nuclear Test) करने का सोवियत संघ ने स्वागत किया। इसी वर्ष अक्तूबर 1974 में भारत-सोवियत व्यापार प्रतिनिधिमण्डल वार्ता मास्को में हुई। 1976 में फिर दोनों देशों में एक व्यापारिक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार सोवियत संघ ने भारत को खनिज तेल खोदने की मशीन, उर्वरक, गन्धक तथा अखबारी कागज निर्यात करने तथा चाय, काफी, मसाले, खालें, जूते, पटसन का सामान आदि वस्तुएं आयात करने का वायदा किया। इससे पहले भी 1975 में भारत का पहला कृत्रिम उपग्रह भी सोवियत संघ से ही छोड़ा गया था तथा दूसरा वैज्ञानिक उपग्रह छोड़ने पर सहमति हो चुकी थी। जून 1976 में भारतीय प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी की सोवियत यात्रा से दोनों देशों के बीच घनिष्ठ मित्रता की शुरुआत हुई। 1975 में हुए समझौतों के क्रियान्वयन का यह अच्छा समय था। यद्यपि इस दौरान भारत और सोवियत संघ में गेहूं की वापसी व रुपया-रुबल की विनिमय कीमतों को लेकर कुछ विवाद भी हुआ, परन्तु दोनों देशों में सहयोग की मात्रा पहले ही इतनी ज्यादा थी कि इससे भारत-सोवियत मैत्री में कोई बाधा नहीं आई। 1977 में भारत में जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई ने घोषणा की कि भारत-सोवियत मैत्री का बनाए रखने पर जोर दिया जायेगा। फिर 31 मार्च 1977 में दोनों देशों के मध्य जहाजों के आवागमन पर एक समझौता हुआ। उसके बाद अप्रैल 1977 में सोवियत विदेश मन्त्री ग्रोमिको भारत यात्रा पर आए। इस समय भारत और सोवियत संघ के बीच तीन समझौते हुए। सोवियत संघ ने भारत को 25 करोड़ रुबल का ऋण उदार शर्तों पर देना स्वीकार किया। दोनों देशों के बीच सीधी

संचार व्यवस्था स्थापित की गई। अक्तूबर 1977 में भारत के प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई तथा विदेश मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी एक साथ सोवियत संघ की यात्रा पर गए। दोनों देशों ने कई महत्वपूर्ण आर्थिक सम्बन्धों पर हस्ताक्षर किए और यह भी स्वीकार किया कि भारत-रूस शांति मैत्री और सहयोग की सन्धि जारी रहेगी। यह यात्रा भारत-सोवियत सम्बन्धों में गतिशीलता लाने में सफल रही। इस दौरान दोनों देशों की तरफ से जारी घोषणा-पत्र में हिन्द महासागर को 'शांति का क्षेत्र' (Zone of Peace) बनाए रखने की बात का समर्थन किया गया तथा हिन्द महासागर में स्थित सभी सैनिक अड्डों को समाप्त करने तथा नये अड्डों की स्थापना पर प्रतिबन्ध लगाने का भी आह्वान किया गया। दिसम्बर 1978 में दोनों देशों के बीच आर्थिक, व्यापार विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई। इस दौरान भारत के रक्षा मन्त्री व विदेश मन्त्री की रूस यात्राएं हुई जिससे भारत-सोवियत सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आई।

मार्च 1979 में सोवियत प्रधानमन्त्री कोसिजिन की भारत यात्रा से दोनों दशों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की नींव सुद ढ़ हुई। इस यात्रा के दौरान आर्थिक सहयोग के क्षेत्र में भी कुछ प्रगति हुई। भारत और रूस के बीच यह समझौता भी हुआ कि रूस भारत को चावल के बदले 6 लाख टन कच्चा तेल देगा। इस समय सार्वजनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा विज्ञान से सम्बन्धित समझौता भी हुआ। इस यात्रा के बाद जारी संयुक्त विज्ञप्ति में इस बात की पुष्टि की गई कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के आधार पर भारत-सोवियत सम्बन्धों को सुद ढ़ करना दोनों देशों की विदेश नीति का मूलाधार है। इसके बाद 28 मई से 2 जून 1979 तक भारत के पैट्रोलियम और रसायन मन्त्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा सोवियत संघ गए ओर दोनों देशों में तेल अनुसंधान और उत्पादन के क्षेत्र में भावी सहयोग के विषय पर व्यापक विचार विमर्श हुआ। उसके बाद जून के महीने में ही भारत के प्रधानमन्त्री देसाई जी और विदेश मन्त्री वाजपेयी सोवियत संघ की दूसरी यात्रा पर गए। इस समय जारी संयुक्त विज्ञप्ति में कहा गया कि "शांति और आन्तरिक सुरक्षा बनाये रखने और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के आधार पर दोनों देशों के बीच सहयोग पर बल दिया जायेगा क्योंकि इससे न केवल दोनों देशों के हितों की रक्षा होती है बल्कि इससे विश्वशांति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में भी व द्धि होती है।" इसके बाद जून महीने में ही भारत सोवियत संयुक्त आयोग की मास्को बैठक में सोवियत संघ की मदद से विशाखापट्टनम में एक इस्पात कारखाना लगाने के बारे में भी समझौता हुआ। इस तरह भारत-सोवियत सम्बन्धों की मित्रता का अध्याय आगे बढ़ा।

अफगानिस्तान संकट (1979) के समय भारत ने अफगानिस्तान में सोंवियत सेनाओं के हस्तक्षेप को उचित ठहराया। अब यह मामला सुरक्षा परिषद में आया तो भारत ने सोवियत संघ का ही पक्ष लिया। भारत ने अमेरिका के उस प्रस्ताव कसे समर्थन नहीं दिया जिसमें सोंवियत सेनाओं की वापसी की मांग की गई थी। यद्यपि इस समय भारत अफगानिस्तान में विदेशी हस्तक्षेप को अनुचित तो मानता रहा, लेकिन उसने खुलकर सोवियत संघ की निन्दा नहीं की। अफगानिस्तान के प्रति अपने द ष्टिकोण को स्पष्ट करने के उद्देश्य से सोवियत राष्ट्रपति ब्रेजनेव दिसम्बर 1980 में भारत की यात्रा पर आये। इस समय कई मुद्दों पर बातचीत हुई। इस अवसर पर तीन मुद्दों पर सहमति हुई-(i) आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग (ii) 1981-85 के लिए व्यापारिक समझौता तथा (iii) 1981-82 के लिए सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और शैक्षणिक आदान प्रदान। 1980 में ही सोवियत संघ ने 1300 करोड़ रुपये की सैनिक सामग्री भारत को देने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। सोवियत राष्ट्रपति ब्रेजनेव की भारत यात्रा से भारत-सोवियत सम्बन्धों में मधुरता आई और अफगानिस्तान को लेकर जो अविश्वास की भावना उत्पन्न हो गई थी, वह दूर हो गई। उसके बाद 1981-82 में भी भारत और सोवियत संघ के बीच व्यापार तथा आर्थिक सम्बन्धों का विकास हुआ। नवम्बर 1981 में सोवियत तेल उद्योग मन्त्री भारत आए और इस क्षेत्र में सहयोग के लिए एक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार सोवियत संघ ने भारत को समुद्र से तेल निकालने में मदद का आश्वासन दिया। 20 दिसम्बर, 1982 को श्रीमती इन्दिरा गांधी सेवियत संघ की यात्रा पर गई। सोवियत संघ

ने भारत को न केवल विज्ञान, प्रौद्योगिकी, संस्कृति और कृषि जैसे क्षेत्रों में निरन्तर विकास का आश्वासन दिया बल्कि हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बनाने तथा आपसी मतभेदों को वार्ता द्वारा हल करने पर भी जोर दिया। सोवियत संघ के इस कदम को दोनों देशों के बीच मित्रता और सहयोग को मजबूत करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर कहा गया।

1983 में सोवियत राष्ट्रपति ब्रेजनेव की म त्यु के बाद सोवियत साम्यवादी दल के नये महासचिव यूरी आन्द्रोपोव ने भारत को आश्वासन दिया कि ब्रेजनेव द्वारा शुरु की गई भारत के निकट सहयोग की नीति कायम रखी जायेगी। इस दौरान दोनों देशों ने आर्थिक, औद्योगिक तथा विज्ञान व तकनीकी क्षेत्र में आपसी सहयोग में और अधिक विस्तार करने पर सहमति प्रकट की और रूस ने भारत को खनिज तेल की खुदाई, कोयला खानों के विकास, परमाणु तथा ताप बिजली घरों के निर्माण तथा उड़ीसा में नये इस्पात कारखाने के निर्माण में सहयोग का आश्वासन दिया। इस समय सोवियत संघ ने भारत को T-72 टैंक भी दिया। 9 दिसम्बर 1983 को नई दिल्ली में दोनों देशों के संयुक्त आयोग की बैठक हुई जिसमें दोनों देशों ने आपसी व्यापार तथा आर्थिक सहयोग में विस्तार करने का निर्णय लिया। अगस्त-सितम्बर 1984 में मास्को में भारत के व्यापार मेला प्राधिकरण द्वारा प्रदर्शनी लगाई गई। इसी वर्ष भारत और सोवियत संघ के बीच 3 वर्ष के लिए विज्ञान तथा तकनीकी क्षेत्र में सहयोग के लिए एक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार सोवियत संघ ने भारत को ताप नाभिकीय उर्जा के क्षेत्र में व विज्ञान, तकनीकी और विद्युत क्षेत्र में सहयोग की बात कही। मार्च 1984 में ही सोवियत रक्षा मन्त्री मार्शल उस्तिनोव भारत आये। इससे भी भारत-सोवियत मैत्री प्रगाढ हुई। इसी दौरान अक्तूबर 1984 में भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी की म त्यु के बाद प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने भी सोवियत संघ के सथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को प्राथमिकता दी और 21 मई, 1985 को सोवियत संघ गये। 22 मई, 1985 को भारत के प्रधानमन्त्री राजीव गांधी तथा सोवियत संघ के साम्यवादी दल के महासचिव मिखाइल गोर्बाच्योव के बीच 1986 से 1990 के लिए एक व्यापार समझौता हुआ जिससे 25 नवम्बर, 1985 को मिखाइल गोर्बाच्योव का भारत आगमन हुआ और दोनों देशों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों और द्विपक्षीय सम्बन्धों पर बातचीत हुई। इस दौरान 1986 में भारत और सोवियत नेताओं ने दिल्ली घोषणापत्र पर हंस्ताक्षर किये गये। इस घोषणा पत्र में यह आशा की गई कि इससे न केवल एशिया बल्कि सम्पूर्ण विश्व जाति के लिए भी निःशस्त्रीकरण के माध्यम से अच्छा वातावरण तैयार होगा। इसमें निश्चय किया गया कि संसार को परमाणु शस्त्रास्त्रों से मुक्त तथा अहिंसा पर चलने वाला बनाने के लिए व्यापक निःशस्त्रीकरण के लिए ठोस उपाय किए जायेंगे ताकि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का पिकास हो। इस महत्वपूर्ण राजनीतिक घोषणा के साथ-साथ दोनों देशों में एक आर्थिक सम्रझौता भी हुआ। सोवियत संघ ने भारत को 2882 करोड़ रुपये का दीर्घकालीन ऋण भी देने का वचन दिया। इस दौरान दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान से भी सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों का विकास हुआ।

जून 1987 में भारत के विदेश मन्त्री सोवियत संघ की यात्रा पर गए और कई समझौतों पर हस्ताक्षर किये। सोवियत संघ ने भारत को एक भू-भौतिकी कम्प्यूटर दिया। इसके बाद जुलाई, 1987 को राजीव गांधी सोवियत संघ में आयोजित भारत महोत्सव में भाग लेने मास्को गये। यहां पर दोनों देशों में चीन और पाकिस्तान के बारे में बातचीत हुई। इस समय दोनों देशों के बीच विज्ञान और प्रौद्योगिकी समझौता हुआ। उसके बाद 14 जुलाई 1987 को बच्चों और महिलाओं पर भारत-रूस आयोग की बैठक हुई। उसके बाद भारत-सोवियत मैत्री को नया अयाम देने वाले सोवियत महोत्सव की शुरुआत 21 नवम्बर, 1987 को भारत में हुई। इस समय सोवियत प्रधानमन्त्री एन०आई० रिझकोव भारत अरये और दोनों देशों के बीच 6 समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। इस महोत्सव के बारे में प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने कहार कि "यह दो विशाल ह्रदय वाले राष्ट्रों की जनता के बीच संस्कृतियो की भागीदारी का प्रतीक है।" इस समय दोनों देशों के बीच आर्थिक,

तकनीकी, पर्यटन, व्यापार आदि को बढ़ाने पर विचार विमर्श हुआ। अपनी यात्रा के अन्त में सोवियत प्रधानमन्त्री ने कहा कि "भारत ओर सोवियत संघ के बीच आर्थिक और व्यापारिक सम्बन्धों के नये आयाम जुड़े हैं। इन क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने के लिए कुछ नये फैसले किये गये हैं, जिससे दोनों देशों के बीच आर्थिक, व्यापारिक कार्यकलापों में गुणात्मक परिवर्तन होगा।" इससे स्पष्ट संकेत मिल गया था कि अब भारत-सोवियत मैत्री का नय अध्याय शुरु होगा। इसके बाद 10 जनवरी, 1988 को सेवियत संघ ने परमाणु शक्ति से चालित पनडुब्बी भारत को सौंपी। उसके बाद 14 मार्च, 1988 को दूसरी पनडुब्बी भी भारत को दी। 18 से 20 नवम्बर 1988 को सोवियत संघ के राष्ट्रपति गोर्बाच्योव भारत आये। इससे दोनों देशों के बीच मित्रता प्रगाढ़ हुई। इस दौरान कई महत्वपूर्ण समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। सोवियत संघ ने भारत को परमाणु बिजली घर लगाने के लिए 35 अरब का ऋण देने की बात स्वीकार की। इसके साथ ही दोनों देशों में जहाजरानी, हवाई यात्रा, शिक्षा, विज्ञान, संचार-व्यवस्था, निर्यात, तकनीकी आदि क्षेत्रों में द्वि-पक्षीय समझौते हुए। इसी दौरान 1989 में भारत में सत्ता परिवर्तन के बाद दोनों देशों के बीच सम्बन्ध कुछ शिथिल हो गये। जुलाई 1990 में प्रधानमन्त्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने सोवियत संघ की यात्रा करके सम्बन्धों के बीच की खाई को भर दिया। दोनों देशों ने 1971 की भारत-सोवियत मैत्री का नवीनीकरण करने का निश्चय किया तथा दोनों देशों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को प्राथमिकता दी। इस समय भारत-सोवियत मैत्री सन्धि का नवीनीकरण किया जाना दोनों देशों के बीच स्थायी मैत्री सम्बन्धों की स्पष्ट अभिव्यक्ति था। परन्तु 1990 में खाड़ी संकट के समय भी भारत ने सोवियत संघ के द ष्टिकोण का ही समर्थन किया। 1991 में सोवियत संघ का विघटन तथा शीत युद्ध का अन्त ऐसी घटनाएं घटीं जिनसे भारत-सोवियत सम्बन्धों में ठहराव सा उत्पन्न हो गया।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस युग में भी भारत-सोवियत संघ के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का विकास होता रहा। दोनों देशों के बीच सहयोग का क्षेत्र इतना सुद ढ़ रहा कि अफगानिस्तान संकट तथा पोकरण विस्फोट जैसी घटनाओं का भी कोई नकारात्मक प्रभाव दोनों देशों के सम्बन्धों पर देखने को नहीं मिला। सोवियत संघ ने भारत को आर्थिक सहयोग देकर लगातार सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने के प्रयास किये और भारत ने भी सोवियत संघ का हर कदम पर साथ दिया।

(VII) 1991 से वर्तमान समय तक भारत-रूस सम्बन्ध

(Indo-Russian Relations from 1991 to Present Day)

1991 में सोवियत संघ के विघटन के बाद भारत ने सोवियत संघ के उत्तराधिकारी रूस के साथ मधुर सम्बन्ध कायम करने पर जोर दिया। परन्तु राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन ने अपनी प्रारम्भिक घोषणा में ही पाकिस्तान को हथियार देने का फैसला करके तथा कश्मीर समस्या पर विपरीत आचरण करके सम्बन्धों को खराब कर दिया। परन्तु 1993 में येल्तसीन की भारत यात्रा ने आपसी शंकाओं का अन्त कर दिया। इस दौरान भारत तथा रूस के बीच एक नई मैत्री सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। इससे दोनों देशों के बीच सहयोग व मैत्री की शुरुआत हुई। रूस ने अब कश्मीर मुद्दे पर भारत को समर्थन तथा पाकिस्तान को सैन्य सहायता देने से साफ इन्कार कर दिया तो भारत को पक्का विश्वास हो गया कि रूस भी सोवियत संघ की तरह ही भारत के साथ मित्रता के सम्बन्ध कायम रखने का इच्छुक है। उसके बाद 1994 में भारत के प्रधानमन्त्री नरसिम्हा राव रूस की यात्रा पर गये। इस समय दोनों देशों के बीच रक्षा, व्यापार, पारस्परिक सैनिक हितों और तकनीकी आदान-प्रदान सहित कई समझौते हुए। इस दौरान रूस के राष्ट्रपति बोरिश येल्तसिन ने स्पष्ट कर दिया कि 1993 की भारत-रूस मैत्री सन्धि भी 1971 की सन्धि की तरह ही महत्वपूर्ण मानी जायेगी और इससे दोनों देशों के बीच पहले से अधिक अच्छे व सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की प्राप्ति होगी। इस यात्रा से भारत-रूस सम्बन्धों को नई दिशा मिली।

1994 के बाद भारत-रूस सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आती रही। 1994 से 1996 के बीच भारत और रूस में विभिन्न सांस्कृतिक आदान-प्रदान व समझौते हुए। 1997 में प्रधानमन्त्री देवगौडा की रूस यात्रा से सम्बन्धों में मधुरता आई। इस दौरान दोहरे करों को रोकने का समझौता, सीमा शुल्क समझौता, सांस्कृतिक आदान-प्रदान समझौता महत्वपूर्ण कदम थे जिससे दोनों देशों के बीच आर्थिक व व्यापारिक सहयोग में व द्धि हुई। इन समझौतों के अतिरिक्त रूस ने भारत को परमाणु क्षमता के विस्तार में भी सहायता देने का आश्वासन दिया। इस वार्ता के दौरान रूस के राष्ट्रपति येल्तसिन ने भारत को विश्वास दिलाया कि रूस, भारत के सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता प्रदान करने के प्रयासों का समर्थन करेगा। इस वार्ता का सबसे महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि रूस भारत के काफी समीप आ गया। 1998 में भारत द्वारा किए गए परमाणु परीक्षणों की घटना को रूस ने चिन्ताजनक बताया। परन्तु अमेरिका द्वारा भारत पर लगाये गये आर्थिक प्रतिबन्धों की निन्दा भी की। 14 मई, 1998 को तकनीकी एवं वैज्ञानिक सहयोग से सम्बन्धित भारत-रूस संयुक्त परिषद के सम्मेलन का मास्को में उद्घाटन हुआ तो भारत-रूस सम्बन्धों का नया अध्याय शुरु हो गया। 1998 में रूस के प्रधानमन्त्री की भारत यात्रा ने भी दोनों देशों के सम्बन्धों को और अधिक सुद ढ़ बना दिया। इस यात्रा के दौरान भारत और रूस में वाणिज्य, सैन्य तकनीक, व्यापार, औद्योगिक, संचार तथा प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित कई समझौते हुए। दोनों देशों ने बहु-ध्रुवीय विश्व व्यवस्था का निर्माण करने में भी रुचि दिखाई। इसके बाद 1999 में कारगिल युद्ध के समय भी रूस ने भारत का ही समर्थन किया और पाकिस्तानी घुसपैठ की निन्दा करते हुए उसे आक्रमणकारी कहा। रूस ने कहा कि भारत और पाकिस्तान को अपने सभी विवादों का समाधान शिमला समझौते व लाहौर घोषणापत्र के अनुसार ही करना चाहिये। इस तरह दोनों देशों के सम्बन्धों में और अधिक द ढ़ता व मधुरता आती गई।

सितम्बर 2000 में रूस के राष्ट्रपति बनने के बाद प्रथम बार पुतिन भारत आये। दोनों देशों ने सामरिक सहयोग के समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस समझौते में दोनों देशों ने वचन दिया कि वे किसी सैनिक-राजनीतिक संगठन में शामिल नहीं होंगे तथा न ही किसी सशस्त्र संघर्ष में शामिल होंगे। कोई भी देश किसी ऐसी सन्धि व समझौते पर हस्ताक्षर नहीं करेगा जिससे दूसरे पक्ष की स्वतन्त्रता, सम्प्रभुता, प्रादेशिक अखण्डता अथवा उसके राष्ट्रीय हितों पर आघात होता हो। दोनों देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध भी संघर्ष करने की प्रतिज्ञा की। उसके बाद 1 नवम्बर 2001 को भारत की सुरक्षा परिषद के लिए रूस ने स्थायी सदस्यता का समर्थन करके भारत समर्थक द ष्टिकोण व्यक्त किया। 8 फरवरी 2002 को रूस के उप-प्रधानमन्त्री इल्या कलेबानोव के भारत आगमन पर भी चार प्रमुख रक्षा समझौतों पर हस्ताक्षर हुए। इसी वर्ष रूस के राष्ट्रपति पुतिन की भारत यात्रा से भी भारत-रूस सम्बन्धों को नई दिशा मिली। वाजपेयी जी भी 2003 में रूस गये। इस दौरान भारत और रूस के मध्य राजनीतिक सहयोग, आर्थिक सहयोग, रक्षा सहयोग, विज्ञान व तकनीकी हस्ताक्षर हुए। इससे दोनों देशों के बीच मधुर व सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों का विकास होता रहा। वर्तमान सरकार ने भी रूस के साथ मधुर व मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम रखने को ही अपनी प्राथमिकता दी है। इस सन्दर्भ में जून, 2004 में दोनों देशों ने आपसी सहयोग को आगे बढ़ाने का संकल्प लेते हुए संयुक्त प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम बनाने की घोषणा की तथा एजेटी प्रक्षेपास्त्र बनाने पर सहमति प्रकट की।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि भारत और रूस के बीच शुरु से लेकर आज काफी मधुर व सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध रहे हैं। रूस ने हमेशा ही कश्मीर समस्या पर भरत का साथ दिया है। यदि रूस कश्मीर मुद्दे पर भारत के साथ न होता तो कश्मीर पाकिस्तान के हाथ में होता। प्रारम्भ से ही भारत और रूस में आर्थिक व व्यापारिक सहयोग की प्रक्रिया सुद ढ़ रही है। रूस ने भारत को हर कदम पर हर सम्भव मदद दी है। भारत ने भी अधिकांश पर रूस का ही पक्ष लिया है। 1971 की भारत-सोवियत मैत्री सन्धि ने दोनों देशों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की जो नीवं डाली

थी, वह आज एक मजबूत भवन बनकर विश्व राजनीति में अहम् भूमिका निभा रही है। रूस ने 1965, 1971 तथा 1999 के भारत-पाक संघर्ष में भारत का साथ देकर यह सिद्ध कर दिया है कि भारत-रूस मैत्री की अटूट मिसाल अन्य नहीं हो सकती। आज दोनों देशों में विभिन्न क्षेत्रों में आदान-प्रदान के बहुआयामी मार्ग खुले हुए हैं। रूस आज भी भारत को कश्मीर मुद्दे पर समर्थन देने को तैयार है। इसका ताजा उदाहरण राष्ट्रपति प्युटिन का यह वक्तव्य है कि "भारत उसी प्रकार कश्मीर में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का शिकार है जिस तरह रूस चेचेन्या में।" वस्तुतः भारत और रूस के आपसी सम्बन्ध अन्य देशों की तुलना में आज भी काफी मधुर हैं। यदि भारत और रूस इस मार्ग पर आगे बढ़ते रहे तो कभी-न-कभी यह मैत्री अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का नया इतिहास रचेगी।

इकाई-IV

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions)

Q. 1 1950 से लेकर शिमला समझौते तक भारत-पाक सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

Q. 2 शिमला समझौते से लेकर आज तक भारत-पाक सम्बन्धों की व्याख्या करो।

Q. 3 भारत-पाक सम्बन्धों को सौहार्दपूर्ण बनाने में समझौता राजनय (Agreement Diplomacy) की क्या भूमिका रही है ?

Q. 4 'कश्मीर समस्या' भारत-पाक सम्बन्धों के तनाव का प्रमुख कारण रही है - व्याख्या कीजिए।

Q. 5 भारत-पाक सम्बन्धों के मैत्रीपूर्ण एवं शांतिमय बनने में आ रही प्रमुख बाधाओं की विवेचना करो।

Q. 6 तिब्बत विवाद तथा सीमा विवाद के सन्दर्भ में भारत-चीन सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।

Q. 7 पंचशील का सिद्धान्त क्या है ? इस सिद्धान्त को अपनाकर भारत ने चीन से कैसे धोखा खाया ?

Q. 8 शीत युद्धोत्तर काल में भारत-अमेरिका सम्बन्धों की व्याख्या करो।

Q. 9 सोवियत संघ के विघटन तथा शीतयुद्ध के अन्त का भारत-अमेरिका सम्बन्धों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

Q.10 "रूस भारत के राष्ट्रीय हितों का सच्चा हितैषी रहा है" इस कथन के सन्दर्भ में भारत-रूस सम्बन्धों का परीक्षण कीजिए।

Q.11 "1971 की भारत-सोवियत मैत्री सन्धि एक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटना थी" - व्याख्या कीजिए।

इकाई-V

अध्याय-14

बदलता अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश और उसका भारतीय विदेश नीति पर प्रभाव

(Changing International Environment and its impact on Indian Foreign Policy)

विदेश नीति का सम्बन्ध दूसरे राष्ट्रों से सम्बन्ध बनाये रखने की नीति से होता है। ये सम्बन्ध इस बात से महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित होते हैं कि उस राष्ट्र में बनाये जा रहे सम्बन्धों अथवा की जा रही सन्धियों या समझौतों के प्रति राष्ट्रों में उन सम्बन्धों के बारे में कैसा पर्यावरण है। इसका सीधा अर्थ यह निकलता है कि किसी भी राष्ट्र की विदेश नीति उस राष्ट्र के तथा दूसरे राष्ट्रों के पर्यावरण या परिवेश से प्रभावित होती है। भारत की विदेश नीति भी इसका अपवाद नहीं है। भारत की विदेश नीति भी घरेलु तथा बाह्य परिवेश से प्रभावित होते हुए अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरी है। कई बार तो बाह्य पर्यावरण ने घरेलु पर्यावरण को भी प्रभावित करके भारतीय विदेश नीति पर प्रभाव डाला है। इस सन्दर्भ में सीमा-विवाद, नदी जल विवाद, सुरक्षा व्यवस्था, हिन्द महासागर की समस्या, तिब्बत का प्रश्न, क्षेत्रीय सहयोग संगठन, शीत युद्ध, रंगभेद की नीति, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन, संयुक्त राष्ट्र संघ, सोवियत सघ का विघटन, आर्थिक उदारीकरण, WTO का जन्म आदि का प्रभाव भारत की विदेश नीति पर स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद शीत युद्ध के वातावरण ने जहां भारत की विदेश नीति को गुटनिरपेक्षता का आधार प्रदान किया, वहीं शीतयुद्ध के अन्त ने उसे विदेश नीति निर्माताओं को बाध्य किया कि वे गुटनिरपेक्षता की मूल संकल्पना में परिवर्तन करें, आर्थिक उदारीकरण की नीति अपनाए तथा अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा की द ष्टि से परमाणु नीति में भी परिवर्तन करे। इसी कारण सोवियत संघ के विघटन तथा शीत युद्ध के अन्त के बाद भारत की विदेश नीति में बदलाव देखने को मिला। अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में आए परिवर्तनों का भारतीय विदेश नीति पर जो प्रभाव पड़ा, उसका आकलन निम्न प्रकर से किया जा सकता हैः-

(1) स्वतन्त्रता से पहले भारतीय विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश

(Indian Foreign Policy and International Environment Before Independence)

य़द्यपि भारत को अपनी आन्तरिक एवं बाह्य नीति के निर्धारण का अधिकार 1947 में स्वतन्त्रता के बाद ही मिला। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ब्रिटिश युग में भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

में कोई भाग नहीं लिया। सत्य तो यह है कि ब्रिटिश शासन काल में भी भारत के कई देशों से सम्बन्ध थे। ब्रिटिश सरकार अपना उपनिवेश होने के बावजूद भी कांग्रेस प्रतिनिधियों से नीति-निर्धारण करते समय विचार-विमर्श करती थी। 1917 के औपनिवेशिक सम्मेलन से पहले भारत को यह अधिकार नहीं था। 1917 में ही औपनिवेशिक सम्मेलन का नामकरण 'इम्पीरियल कांफ्रेंस' रख दिया गया जो बाद में 'ब्रिटिश कॉमनवेल्थ' कहलाया। इस अधिकार के कारण ही भारत को 1919 के पेरिस शान्ति सम्मेलन में भी भाग लेने का अवसर मिला। इस सम्मेलन में भारत ने राष्ट्र संघ के विधान तथा शान्ति सन्धियों पर हस्ताक्षर किये और राष्ट्र संघ की प्रारम्भिक सदस्यता भी प्राप्त की। इसके बाद कांग्रेस ने एशियाई देशों के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए एक 'विदेशी विभाग' की स्थापना की और उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध भी स्थापित किये। भारत ने राष्ट्र संघ की सफलता में पूरा सहयोग दिया। उसने निःशस्त्रीकरण का समर्थन किया, विश्वशान्ति की कामना की, पड़ौसी देशों के साथ, विशेष रूप से चीन के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा रंगभेद की नीति का विरोध करने में राष्ट्रसंघ को पूरा समर्थन दिया। इन सभी तत्वों को स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति में स्थान प्राप्त हो गया।

(2) स्वतन्त्रता से लेकर चीनी आक्रमण (1962) तक भारत की विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश

(Indian Foreign Policy and International Environment from Independence to Chinese Attack, 1962)

द्वितीय विश्व युद्ध के भारत अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में काफी बदलाव आये। भारत तथा कई अन्य देशों को इसके बाद ही स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व की ध्रुवीयकरण अथवा अमेरिकी तथा सोवियत शक्ति गुट के रूप में विभाजन एक प्रमुख घटना थी। इनमें से अमेरिका पूंजीवादी गुट तथा सोवियत संघ साम्यवादी गुट का प्रतिनिधित्व करते थे। यूरोप तथा एशिया के अधिकांश देश इस गुटबन्दी का शिकार हुए। इससे शीत युद्ध का क्षेत्र विस्त त होने लगा। सैनिक संगठनों व भयानक हथियारों का निर्माण होने लगा। सोवियत संघ ने भी परमाणु शक्ति प्राप्त कर ली। उधर अमेरिका जब साम्यवाद के प्रसार को रोकने के प्रयास कर रहा था, उसी दौरान चीन में भी साम्यवाद का उदय हुआ। इस परिवेश में भारत जहां साम्यवाद के निकट था, वहीं वह अमेरिका की भी उपेक्षा नहीं कर सकता था। इसी कारण उसने गुटों से दूर रहकर दोनों महाशक्तियों से सम्बन्ध बनाये रखने को ही उचित समझा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अधिकांश देशों की अर्थव्यवस्था भी चरमरा गई थी जिसमें भारत भी एक था। इसलिये अपने आर्थिक विकास के लिये भारत ने दोनों महाशक्तियों से समान सम्बन्धों को प्राथमिकता दी ताकि राजनय के माध्यम से इन देशों से अधिक-से-अधिक आर्थिक मदद प्राप्त की जाये। इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ के उदय ने भी भारत की विदेश नीति को विश्वशान्ति की दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित किया। भारत चाहता था कि शीत युद्ध की राजनीति से दूर रहकर ही विश्व शान्ति के लिए प्रयास किये जायें तो बेहतर है। इसी कारण उसने दोनों देशों से दूरी बनाकर अपनी स्वतन्त्र विदेश नीति अपनाई जिसे गुटनिरपेक्षता का नाम दिया गया। इस नीति के तहत ही उसने साम्यवादी चीन को मान्यता दी और पूंजीवादी ताकतों के साथ भी अपने सम्बन्ध जोड़े रखे। उसने 1950 के कोरिया युद्ध के समय दोनों गुटों से तटस्थता की नीति अपनाई। उसने अपने आर्थिक विकास के लिये दोनों देशों से सहायता प्राप्त करने के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया ताकि वह अपनी विदेश व्यापार नीति में दोनों प्रणालियों से लाभ प्राप्त कर सके।

भारत ने शीत युद्ध के तनाव व बढ़ती शस्त्र दौड़ को देखते हुए अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए गुटनिरपेक्षता की नीति को ही अपनाना श्रेयकर समझा। उसने संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों पर

चलते हुए विश्व शान्ति के लिए निःशस्त्रीकरण का सबसे पहले समर्थन किया। उसने अपने पड़ोसी देशों के साथ पंचशील पर आधारित शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति (Policy of Peaceful Co-existance) अपनाकर यह सिद्ध कर दिया कि भारत विश्व शांति का प्रबल समर्थक है। भारत यह जानता था कि आक्रामक सुरक्षा नीति उसके लिये असम्भव है, इसलिये उसने अपनी सुरक्षा के लिये गुटनिरपेक्षता व शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति ही अपनाई। भारत जानता था कि नवोदित देशों (Newly Independence States) की स्वतन्त्रता की रक्षा गुटबन्दी की बजाय एकजुट होने में है। इसलिए उसने नवोदित एशिया व अफ्रीका के सभी राष्ट्रों को एकमंच पर लाने के लिए अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति को आन्दोलन का रूप दिया। इस आन्दोलन के मंच से भारत ने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व रंगभेद की नीति का विरोध किया और संयुक्त राष्ट्र संघ पर इन बुराईयों को दूर करने के लिए दबाव भी बनाया।

इस काल में अमेरिका का पाकिस्तान समर्थक द ष्टिकोण और दोनों देशों के बीच सैनिक सन्धि का होना भारत की विदेश नीति को भयंकर चुनौती थी। इसी तरह अमेरिका ने गोवा को लेकर भी भारत विरोधी द ष्टिकोण अपनाया। इससे स्वाभाविक ही था कि भारत सोवियत संघ के प्रति झुकने वाली नीति का अनुसरण करे। इसी कारण 1954 में नेहरु जी सोवियत संघ गए और दोनों देशों में राजनीतिक व व्यापारिक सम्बन्धों में बदलाव आया। इस दौरान 1956 में **स्वेज नहर संकट** का प्रभाव भी भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति पर पड़ा। भारत ने अपने मित्र राष्ट्र मिस्त्र पर पश्चिमी देशों के आक्रमण की निन्दा की और सोवियत संघ के साथ इस मसले में पूरा सहयोग किया। परन्तु 1956 में **हंगरी संकट** के समय घरेलु नीति में आए बदलाव के कारण भारत ने अमेरिका की तरफ झुकने वाली नीति अपनानी शुरु कर दी। भारत ने हंगरी समस्या पर पहले तो सोवियत समर्थक नीति अपनाई, लेकिन बाद में उसने अमेरिका का साथ दिया। इस तरह इस काल में इन दो अन्तर्राट्रीय घटनाओं ने भारत की विदेश नीति को भी प्रभावित किया। वस्तुतः इस परिवेश ने भारत की वियतनाम संकट, पश्चिमी एशिया और पूर्व एशिया के सन्दर्भ में अस्पष्ट नीति को ही जन्म दिया। लेकिन इसके बावजूद भी भारत अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति पर अडिग रहा। उसने अपने पड़ोसी देशों के साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्धों को प्राथमिकता दी तथा संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों में विश्वास व्यक्त करते हुए उपनिवेशवाद, साम्राज्चवाद व रंगभेद की नीति का विरोध करना जारी रखा।

इस दौरान शीत युद्ध के वातावरण तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों का भी भारत की विदेश नीति पर निम्नलिखित प्रभाव द ष्टिगोचर होता है :-

(1) भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई।

(2) भरत ने अमेरिका तथा सोवियत संघ दोनों से समान सम्बन्ध कायम करने की नीति पर जोर दिया।

(3) भारत ने एशियाई-अफ्रीकी एकता पर बल दिया।

(4) भारत ने आक्रामक सुरक्षा नीति की बजाय शांन्तिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति अपनाई।

(5) भारत ने अपने पड़ोसी देशों के साथ पंचशील पर आधारित शांतिपूर्ण सम्बन्ध कायम किये।

(6) भारत ने अपने आर्थिक विकास के लिये दोनों महाशक्तियों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने की नीति अपनाई।

(7) भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों में विश्वास करते हुए विश्व शान्ति, नवोदित राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की रक्षा, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद व रंगभेद की नीति का विरोध करने के लिए त तीय विश्व के देशों को एकमंच पर लाने के लिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को जन्म दिया।

(8) भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान शांतिपूर्ण व परस्पर सहयोग की नीति के आधार पर करने की नीति का विकास किया।

(9) भारत ने परमाणु निःशस्त्रीरण का सबसे पहले समर्थन किया।

(10) भारत ने राजनय के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का संचालन किया।

(11) इस दौरान भारत की विदेश नीति संयुक्त राष्ट्र संघ की समर्थक रही। उसने कश्मीर समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ के आदर्शों पर ही रखा।

(12) 1950 से 1957 तक तो भारत ने सोवियत संघ की समर्थक तथा 1957 से 1962 तक अमेरिका समर्थक नीति अपनाई।

(13) इस दौरान वियतनाम, पश्चिमी एशिया तथा पूर्ण एशिया के सन्दर्भ में भारत की विदेश नीत अस्पष्ट रही।

(3) चीनी आक्रमण (1962) से द्वितीय भारत-पाक युद्ध (1971) तक भारत की विदेश नीति व अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण

(Indian Foreign Policy and International Environment from 1962 to Indo-Pak War of 1971)

1962 में चीनी आक्रमण ने भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा नीति को गहरा आघात पहुंचाया। इसने हमारी विदेश नीति एवं सुरक्षा नीति दोनों को ही निष्क्रिय कर दिया। एक तरफ तो पाकिस्तान के साथ भारत के सम्बन्ध पहले ही तनावपूर्ण चल रहे थे। उधर चीनी आक्रमण ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत विशेष तौर पर एशिया में भारत की विदेश नीति को कमजोर कर दिया। 1962 के चीनी आक्रमण के बाद चीन-पाक दोस्ती की शुरुआत ने भारत की चिन्ताएं बढ़ा दी। इस आक्रमण के समय स्वयं गुटनिरपेक्ष देशों ने भी भारत का साथ नहीं दिया। इससे भारत की गुटनिरपेक्षता व शान्ति की नीति खोखली तथा निरर्थक साबित हुई। अब पाकिस्तान को चीन की तरफ से मिलने वाली सैन्य सामग्री के कारण भारत की सामरिक सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया। इसी दौरान हिन्द महासागर में बढ़ती सैन्य प्रतिस्पर्धा ने भी डियागो गार्शिया द्वीप पर परमाणु अड्डे का विकास करके अपनी अन्तर्राष्ट्रीय पुलिसमैन की भूमिका निभानी शुरु कर दी। उधर सोवियत संघ ने इस क्षेत्र में प्रवेश करके स्थिति को और अधिक गम्भीर बना दिया। इससे भारत सहित सभी तटीय देशों की चिन्ताएं बढ़ी और हिन्द महसासागर 'अशान्ति का क्षेत्र' बन गया। हिन्द महासागर का प्रमुख तटीय देश होने के नाते इसका भारत की विदेश नीति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

1964 में चीन द्वारा परमाणु विस्फोट व 1965 व 1965 तथा 1971 के भारत-पाक युद्धों ने भी अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश को बदल दिया। इन युद्धों में अमेरिका ने पाकिस्तान का ही पक्ष लिया और भारत को केवल सोवियत संघ का ही समर्थन मिला। SEATO तथा CENTO के सदस्य पाकिस्तान को भारत ने इन युद्धों में करारी मात तो दे दी, परन्तु 1962 में खोई हुई अपनी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा वह प्राप्त नहीं कर सका। अमेरिका-पाकिस्तान व चीन-पाक सम्बन्धों के नए अध्याय ने भारत के साथ-साथ कई देशों की विदेश नीति को भी प्रभावित किया। यद्यपि सोवियत संघ ने मध्यस्थता करके भारत-पाक युद्धों को बन्द तो करा दिया, लेकिन वह भी दोनों देशों के बीच पैदा हुई अविश्वास की भावना को नहीं मिटा सका। 1971 में जब दूसरा भारत-पाक युद्ध हुआ तो दोनों देशों के बीच अविश्वास की जो भावना पैदा हुई, वह कभी समाप्त नहीं हो सकी। परन्तु 1971 के भारत-पाक युद्ध की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि भारत ने बंगला देश क रूप में नए राज्य का जन्म करा दिया और भारत दक्षिण एशिया में एक शक्ति के रूप में उभरा।

1962 के चीनी आक्रमण के बाद भारत ने चीन के साथ अपने सम्बन्ध तोड़ लियें अब चीन विरोधी ताकतें भारत के निकट आने लगी और भारत-चीन संघर्ष शुरु हो गया। पाकिंस्तान द्वारा अकसाई चीन से लगता पाक अधिकृत कश्मीर का कुछ भाग चीन को देकर इस स्थिति को और अधिक

गम्भीर बना दिया। इसके बाद भारत ने सामरिक द ष्टि से अपनी सुरक्षा नीति में कुछ बदलाव किये और चीन व पाकिस्तान के साथ विदेश नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। अब दक्षिण एशिया अशान्ति का अखाड़ा बन गया। अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में आये परिवर्तनों ने भारत को इस बात के लिए बाध्य किया कि वह गुटनिरपेक्षता के आदर्शवादी स्वरूप की बजाय यथार्थवादी स्वरूप पर ध्यान दे। अब भारत ने विश्व समस्याओं पर ध्यान देने की बजाय अपने पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध कायम करने पर विचार करना शुरु कर दिया। इसके साथ ही भारत अपनी सुरक्षा नीति के प्रति गम्भीर हो गया और उसने गुटनिरपेक्षता को व्यावहारिक बनाने के साथ-साथ अपनी परमाणु नीति में भी परिवर्तन किया। अब भारत अमेरिका तथा पश्चिमी देशों से भी सैन्य व आर्थिक सहायता लेने लगा। उसने अपनी सुरक्षा हेतु अमेरिकी तथा सोवियत दोनों गुटों से सैन्य सामग्री लेनी शुरु कर दी।

अब गुटनिरपेक्षता की नीति में परिवर्तन करते हुए भारत ने अपनी सुरक्षा व विदेश नीति को नया रूप देने की कोशिश शुरु कर दी। उसने हिन्द महासागर को 'शान्ति का क्षेत्र' (Zone of Peace) घोषित करवाने की कवायद प्रारम्भ की और इस उद्देश्य में वह 16 दिसम्बर 1971 को सफल हुआ जब संयुक्त राष्ट्र महासभा ने हिन्द महासागर को 'शान्ति का क्षेत्र' घोषित कर दिया। इस दौरान अमेरिका-पाक-चीन तथा अमेरिका-चीन-जापान सम्बन्धों के नए अध्याय ने भारत की सुरक्षा व्यवस्था के लिए चुनौती पेश कर दी। इस द ष्टि से राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर भारत चिन्तित हुआ और उसने सोवियत संघ के साथ 8 अगस्त, 1971 को 'मैत्री एवं सहयोग की सन्धि' की। यद्यपि कई देशों ने इसे सोवियत गुटबन्दी का नाम दिया और भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति की आलोचना भी की। परन्तु इस सन्धि का भारत की सुरक्षा नीति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। अब अमेरिका तथा चीन पाकिस्तान को मोहरा बनाकर भारत पर कोई दबाव डालने की स्थिति में नहीं रहे। इससे अमेरिका का चिन्तित होना स्वाभाविक ही था।

1971 के भारत-पाक युद्ध के दौरान होने वाली सोवियत-भारत मैत्री सन्धि के बाद दक्षिण एशिया में भारत की स्थिति मजबूत हुई और भारत एक महान ताकत के रूप में उभरा। इसके बाद भारत क्षेत्रीय शक्ति के रूप में अपनी छवि सुधारने में सफल रहा। अब चीन का रुख भी भारत के प्रति बदलने लगा और अमेरिका ने भी भारत के हितों की तरफ ध्यान देना शुरु कर दिया। इस वातावरण में चीन के साथ भारत के नए सम्बन्धों की शुरुआत हुई और पाकिस्तान के साथ भी तनाव शैथिल्य का दौर शुरु हुआ। अब भारत सोवियत संघ का घनिष्ठ मित्र बन गया। बंगला देश के साथ भी भारत के मधुर सम्बन्ध स्थापित हुए तथा दक्षिण-एशिया में सहयोग का एक नया दौर शुरु हुआ।

1962 से 1971 तक बनने वाले अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश का भारतीय विदेश नीति पर निम्नलिखित प्रभाव द ष्टिगोचर होता है :-

(1) इस युग में भारत-चीन सम्बन्धों में कडवाहट बनी रही।

(2) भारत ने दक्षिण एशिया में अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए पड़ोसी देशों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास जारी रखे।

(3) भारत ने अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति को यथार्थवादी धरातल पर प्रतिष्ठित किया।

(4) भारत ने अपनी सुरक्षा नीति में बदलाव किया। इसके लिए उसने अमेरिका तथा पश्चिमी दूशों से भी सैन्य सामग्री प्राप्त की।

(5) भारत ने हिन्द महासागर को 'शान्ति का क्षेत्र' घोषित करवाने के प्रयास जारी रखे और अन्त में उसे इस बारे में कुछ सफलता हाथ लगी। परन्तु इस घोषणा को कभी भी

व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सका।

(6) इस दौरान भारत-पाक सम्बन्ध भी कटुतापूर्ण बने रहे जिसकी पुष्टि 1965 तथा 1971 के भारत-पाक युद्धों से हो जाती है।

(7) 1971 में भारत-सोवियत मैत्री सन्धि इस युग की महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटना थी जिसने भारत की विदेश नीति व सुरक्षा नीति दोनों को ही सुद ढ़ किया।

(8) इस युग मे अन्त में भारत-अमेरिका सम्बन्ध सुधार की दिशा में अग्रसर हुए।

(9) इस युग में भी भारत नए देशों से सम्बन्ध स्थापित करने में असफल रही।

(4) शिमला समझौते (1972) से शीत युद्ध के अंत व सोवियत संघ के विघटन (1990) तक भारत की विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश

(Indian Foreign Policy and International Environment from Shimla Agreement, 1972 to End of Cold War and Dissolution of Soviet Union, 1990)

1972 का वर्ष भारत की विदेश नीति के लिए अच्छा साबित हुआ। इस वर्ष 2 जुलाई को भारत-पाक सम्बन्धों की कडवाहट कम करने वाला 'शिमला समझौता' हुआ। इससे भारत को यह आशा बंधी कि अब पाकिस्तान के साथ मधुर सम्बन्धों की शुरुआत होगी। उधर दोनों महाशक्तियों के बीच भी तनाव शैथिल्य का दौर आरम्भ हुआ। इसके साथ ही दोनों महाशक्तियों ने निःशस्त्रीकरण के प्रयास शुरु कर दिये। वास्तव में तनाव शैथिल्य व निःशस्त्रीकरण के प्रयासों का उद्देश्य दोनों महाशक्तियों का उद्देश्य एशिया सहित विश्व के सभी भागों में अपना वर्चस्व कायम करना तथा तीसरी दुनिया के देशों को परमाणु शक्ति बनने से रोकना था। इसी कारण 1963 की 'आंशिक परमाणु परीक्षण सन्धि' (Partial Test Ban Treaty) अपने लक्ष्य में कामयाब नहीं हो सकी। अब 'परमाणु अप्रसार सन्धि' (Nuclear Non-Protiferation Treaty) लागू की गई जो भेदभावपूर्ण कार्यक्रम पर आधारित थी और गैर-परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों का अहित करने वाली थी। भारत जानता था कि 'परमाणु अप्रसार सन्धि' का उद्देश्य परमाणु शक्ति बनने की दहलीज पर खड़े विकासशील देशों को रोकना था। इसलिए भारत ने इस परिवेश में अपने राष्ट्रीय हितों को समझते हुए परमाणु अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किये और अपनी परमाणु नीति में भी परिवर्तन किया।

'परमाणु अप्रसार सन्धि' के भेदभावपूर्ण रवैये के कारण भारत ने अपनी परमाणु नीति को व्यावहारिक रूप देने के लिए 18 मई, 1974 को पोकरण में प्रथम परमाणु परीक्षण किया। भारत ने घोषणा की कि यह विस्फोट शांतिपूर्ण कार्यक्रम का एक हिस्सा था। इसके साथ ही भारत ने सीमाओं पर चौकसी बढ़ा दी और सेनाओं को आधुनिक हथियारों से लैस किया। इससे स्पष्ट हो गया कि अब भारत दक्षिण एशिया में ही नहीं, बल्कि विश्व में एक महान परमाणु ताकत बन चुका है। इस दौरान दक्षिण एशिया के देशों का रुख भी भारत के प्रति अधिक निराशाजनक नहीं रहा। केवल पाकिस्तान ने भारत द्वारा किए गए परमाणु विस्फोट पर चिन्ता व्यक्त की। अब भारत-चीन सम्बन्ध मित्रता की तरफ अग्रसर हुए। इन्डोनेशिया, ईरान तथा कुवैत के साथ भी भारत के सम्बन्ध जुड़ गए। भारत तथा नेपाल व भारत तथा बंगलादेश के बीच भी कई समझौते हुए। भारत-सोवियत मैत्री प्रगाढ़ होती रही। अमेरिका भी भारत के करीब आने को बाध्य हुआ। परन्तु 1979 में अफगान संकट (Afgan Crisis) ने अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश को फिर से बदल दिया। इसके साथ ही पाकिस्तान ने भी परमाणु बम्ब बनाने की घोषणा कर दी। पाक

प्रधानमन्त्री जुल्फीकार अली भुट्टो ने घोषणा की कि "हम घास खायेंगे लेकिन बम्ब बनायेंगे।" इस परिवेश में भारत-पाक सम्बन्धों का बिगड़ना स्वाभाविक ही था।

1985 में सार्क (SAARC) का गठन एक ऐसी महत्वपूर्ण घटना थी जिससे अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश को बदल डाला। अब महाशक्तियां अच्छी तरह यह बात समझने लगी कि दक्षिण एशिया में भारत की मजबूत स्थिति से पंगा लेना अच्छी बात नहीं है। इसलिए वे भारत के करीब आने के प्रयास करने लगी। इस घटना का भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति पर भी प्रभाव पड़ा। अब भारत दक्षिण एशिया में अपनी पकड़ मजबूत बनाने के लिए पड़ोसी देशो के साथ अधिक प्रगाढ़ सम्बन्धों की दिशा में पहल करते देखा गया। अमेरिका ने भी भारत के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाने के प्रयास तेज कर दिये। SAARC के गठन के बाद गुटनिरपेक्ष देशों ने भारत की गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में भूमिका की सराहना की। इससे भारत त तीय विश्व के देशों के हित के लिए 'नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था' (NIEO) की मांग तेजी से उठाने लगा। अब भारत उत्तर-दक्षिण सहयोग की बजाय दक्षिण-दक्षिण सहयोग के प्रयास करने लगां

भारत की विदेश नीति के बारे में एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि वह 1974 के पोकरण विस्फोट के बाद से ही भारत अपनी रक्षा नीति को आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास करने लग गया था। उसने विकसित देशों से रक्षा उत्पादन से जुड़ी तकनीकों की जानकारी ही नहीं हासिल की बल्कि उसके उत्पादन के अधिकार प्राप्त किये। इसके साथ-साथ उसने अपनी स्वदेशी तकनीक में भी परिवर्तन करके रक्षा सामग्री के मामले मैं महत्वपूर्ण सफलताएं हासिल की। उसने अग्नि, प थ्वी, त्रिशुल, नाग, आकाश आदि प्रक्षेपास्त्रों का विकास करके अपनी रक्षा व्यवस्था को बदल दिया। इसके पीछे उसे अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश से मदद मिलना ही प्रमुख कारण रहा। अब भारत ने सोवियत संघ के साथ-साथ फ्रांस, ब्रिटेन तथा जर्मनी से भी हथियार खरीदने शुरु कर दिये। अफगानिस्तान की घटना ने भारत तथा अमेरिका को एक दूसरे के करीब ला दिया। परन्तु परमाणु अप्रसार सन्धि को लेकर दोनों देशों में तनाव बरकरार रहा। 1990 के अन्त में सोवियत संघ के विघटन के बढ़ते आसारों ने भी भारत को पश्चिमी देशों की तरफ झुकने को मजबूर कर दिया। खाड़ी संकट ने भी भारत को अमेरिका के करीब ला दिया। भारत ने इस संकट में अमेरिका के विमानों को ईंधन की आपूर्ति करने का निर्णय लिया, परन्तु बाद में किसी कारणवश इसे स्थगित भी कर दिया। इसी समय सोवियत संघ के विघटन तथा शीत युद्ध के अन्त की प्रक्रिया ने भी भारत की विदेश नीति को इस हद तक प्रभावित किया कि वह पश्चिमी देशों की तरफ झुकने लगी।

इस युग में अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश का भारत की विदेश नीति पर निम्नलिखित प्रभाव परिलक्षित होता है :-

(1) भारत ने अपनी सुरक्षा नीति को मजबूत बनाने के लिए पोकरण परमाणु विस्फोट (1974) किया।

(2) भारत ने चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने पर विशेष बल दिया।

(3) इस युग में भारत दक्षिण एशिया की एक महान शक्ति बनकर उभरा।

(4) भारत ने परमाणु अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किये।

(5) भारत ने विभिन्न प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम चलाकर अपनी रक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन किये।

(6) अफगान संकट के बाद भारत ने सोवियत संघ के साथ-साथ अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन तथा जर्मनी से भी हथियार खरीदने शुरु कर दिये।

(7) भारत ने अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति को और अधिक व्यावहारिक व प्रासांगिक बनाया।

(8) भारत ने नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग उठाई तथा दक्षिण-दक्षिण सहयोग पर बल दिया।

(9) भारत ने पाकिस्तान तथा अन्य पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्धों को कायम करने की नीति अपनाई।

(10) इस युग में भारत ने ईरान, कुवैत तथा इंडोनेशिया जैसे नए देशों से भी सम्बन्ध स्थापित किया।

(5) सोवियत संघ के विघटन से लेकर वर्तमान समय तक भारत की विदेश नीति और अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश

(Indian Foreign Policy and International Environment from Dissolution of Soviet Union to Present Day)

1991 में शीत युद्ध के समाप्त होने तथा सोवियत संघ के विघटन के बाद जो नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था उभरी, उससे अमेरिका व पूंजीवादी ताकतों का बोलबाला हो गया। इस वातावरण ने भारत की विदेश नीति पर भी प्रभाव डाला। अब भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति अप्रासांगिक नजर आने लगी। सोवियत संघ के विघटन से शीत युद्ध की परम्परा का अन्त हो गया। इससे सैनिक गुटबन्दी का भी अन्त हो गया। इस घअना को जर्मनी के एकीकरण व पश्चिमी एशिया में शान्ति स्थापना में अहम भूमिका निभाई। अब राजनीतिक मुद्दों की बजाय आर्थिक मुद्दे महत्वपूर्ण हो गये तथा क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग संगठनों को महत्व दिया जाने लगा। इस नई व्यवस्था में विश्व-व्यापार संगठन का जन्म लेना भी एक महत्वपूर्ण घटना थी। इस घटना ने वैश्वीकरण व आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया को तेज कर दिया। इससे भारत का बचना कठिन था। इसलिए भारत ने भी सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था के बिखराव या उदारीकरण को देखते हुए अपने देश में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया शुरु कर दी।

अब समाजवादी व्यवस्थाओं का स्थान पूंजीवादी व्यवस्थाओं ने ले लिया। अब क्षेत्रीय स्तर पर नए संगठन ASEAN, यूरोपीयन संघ, साफता (SAFTA) तथा नाफता (NAFTA) उभरे। नई व्यवस्था ने गुटनिरपेक्षता की सार्थकता पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया। धीरे-धीरे यह आन्दोलन अपना महत्व खोता गया। इसके पीछे मूल कारण - सदस्यों में सैद्धान्तिक मतभेद, विवादों को हल करने में सहमति का अभाव, दक्षिण-दक्षिण सहयोग का अभाव, गुटबन्दी की तरफ सदस्य देशों का झुकाव, आर्थिक पिछड़ापन व संगठन की विशाल सदस्य संख्या रहे। इस आन्दोलन की असफलता ने भारत को अपनी गुटनिरपेक्षता की नीति में परिवर्तन करने को बाध्य कर दिया।

इस दौरान परमाणु अप्रसार कार्यक्रम की भेदभावपूर्ण नीति जारी रही। विकसित देशों ने CTBT अर्थात् 'व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (1993) लागू करके गैर-परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों के सुरक्षा विकल्पों को सीमित कर दिया। इस सन्धि का भारत ने विरोध किया और इस पर हस्ताक्षर नहीं किये। यह सन्धि विकासशील देशों को तो परमाणु शक्ति सम्पन्न बनने से रोकती है जबकि परमाणु शक्ति सम्पन्न देशों को परमाणु कार्यक्रमों पर कोई रोक लगाने में असमर्थ है। इसी कारण इसके भेदभावपूर्ण होने तथा इसके निःशस्त्रीकरण के साथ जुड़ा न होने के कारण इस सन्धि का विरोध करता रहा है। बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने आज अमेरिका तथा उसके पिछलग्गू देशों को इस स्थिति में पहुंचा दिया है कि वे परमाणु निःशस्त्रीकरण के किसी भी भेदभावपूर्ण कार्यक्रम को विकासशील देशों पर थोपने में सफल हो जाते हैं। इस परिवेश में अमेरिका जैसे देश अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को भी मनमाने तरीके से प्रभावित करने लगे हैं। इस बदलते परिवेश का भारत की विदेश नीति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है।

सोवियत संघ के विघटन के बाद भारत का हर मामले में साथ देने वाला एक शक्तिशाली मित्र नहीं रहने से भारत के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह अमेरिका के साथ अपने सम्बन्ध सुधारे। इसी तरह भारत, चीन के साथ भी परिवर्तित अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश को ध्यान में रखकर सम्बन्ध सुधार की अपेक्षा रखता है। इसी कारण 1993 में भारत ने मैकमोहन रेखा को भी वास्तविक सीमा रेखा मानना स्वीकार किया। दक्षिण एशिया के महत्वपूर्ण देश होने के नाते दोनों देशों में मित्रता की आशा करना बुरी बात नहीं है। यद्यपि इन दोनों देशों में कुछ मतभेद के बिन्दु हो सकते हैं, लेकिन उनका अधिक महत्व नहीं है। आज भारत व चीन में व्यापारिक सम्बन्ध प्रगति पर हैं और आर्थिक उदारीकरण के लाभ उठाने के लिए दोनों देश एक दूसरे के साथ सहयोग कर रहे हैं। दोनों देश क्षेत्रीय आर्थिक संगठनों के माध्यम से अपने आर्थिक सम्बन्धों का विकास कर रहे हैं और दोनों ही देश दक्षिण एशिया को 'मुक्त व्यापार क्षेत्र' बनाने की दिशा में सकारात्मक रवैया रखते हैं।

बदले हुए परिवेश में ही भारत अपनी आर्थिक नीति व सुरक्षा नीति को मजबूत करने के प्रयास कर रहा है। अपनी आर्थिक नीति को मजबूत बनाने के लिए भारत ने "पूर्व की देखो" की नीति का अनुसरण करत हुए पूर्वी एशिया तथा विशेषकर दक्षिण पूर्व एशिया में 'ASEAN' देशों के साथ अपने आर्थिक सम्बन्धों को मजबूत बनाया है। बदले हुए परिवेश में भारत ने आर्थिक उदारीकरण, विश्वीकरण तथा बाजारी पूंजीकरण से भारत की अर्थव्यवस्था को जोड़ने के लिए आर्थिक सुधारों की क्रान्ति का मार्ग अपनाया है। इसी के तहत भारत में भारी मात्रा में पूंजी निवेश बढ़ा है और पटरी से उतरी हुई अर्थव्यवस्था सुद ढ़ हुई है। इन व्यापक परिवर्तनों का प्रभाव भारत की सुरक्षा नीति पर भी पड़ा है। इसलिए भारत ने अमेरिका के साथ सैन्य सम्बन्ध जोड़े हैं। दोनों देशों के मध्य संयुक्त सैन्य अभ्यास, हिन्द महासागर में संयुक्त नौ-सैनिक अभ्यास व कमांडो प्रशिक्षण के माध्यम से नये सामरिक सम्बन्धों का विकास हुआ है। अब जून 2004 में भारत के सैन्य दल को अमेरिका में सैन्य प्रशिक्षण पर भेजा गया है। इससे सामरिक सम्बन्धों में आैर अधिक मजबूती की आशा की जा सकती है। परन्तु CTBT को लेकर आज भी अमेरिका के साथ भारत के मतभेद बने रहने की सम्भावना नजर आती है।

1998 के पोकरण परमाणु विस्फोटों के पीछे भारत का यही ध्येय रहा है कि अपनी सुरक्षा नीति के मामले में कोई लापरवाही न बरती जाये। 1991 के बाद बदले अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में भारत की सुरक्षा को पाकिस्तान व चीन की तरफ से मिलने वाली चुनौती के मध्येनजर यह अत्यन्त आवश्यक हो गया था। इसके बाद चीन तथा पाकिस्तान भारत की सुरक्षा नीति के प्रति गम्भीर दिखाई पड़ते हैं। इसी कारण चीन 'ASEAN' में भारत के साथ सकारात्मक भूमिका अदा करता हुआ प्रतीत होता है। अब भारत राष्ट्रीय सुरक्षा नीति के मामले में आत्मनिर्भर बन गया है। लेकिन पाकिस्तान की तरफ से जारी आतंकवादी गतिविधियां भारत की सुरक्षा नीति को लगातार चुनौती दे रही है। ईराक तथा अफगानिस्तान के घटनाक्रम तथा विश्व में बढ़ते आतंकवाद के प्रति भी भारत का चिन्तित होना स्वाभावित ही है। यद्यपि भारत, चीन तथा पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधार के बराबर प्रयास करता रहा है, लेकिन पाकिस्तान की ओर से कोई सकारात्मक प्रयास दिखाई नहीं पड़ता। वस्तुतः भारत-पाक सम्बन्धों का बदलाव ही दोनों देशों की विदेश नीतियों का निर्धारण करता है।

भारत का मानना है कि नई विश्व व्यवस्था के गठन के लिए यह आवश्यक है कि नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना कह जाये, संयुक्त राष्ट्र संघ का लोकतांत्रिकरण किया जाये, तथा विश्व से आतंकवाद को समूल नष्ट किया जाये। इसी कारण भारत दक्षिण एशिया में 'ASEAN' के माध्यम से सहयोग करके आर्थिक सम्बन्धों को न्यायपूर्ण व लाभकारी बनाना चाहता है। भारत की विदेश नीति क्षेत्रीय सहयोग पर अधिक बल देती है। परन्तु वह इस मामले में असफल रही है कि उसे संयुक्त राष्ट्र संघ की अस्थायी सदस्यता के मामले में भी हार का समाना करना पड़ा। अमेरिका

ईराक तथा कश्मीर के आतंकवाद में भेद करता है। इसका सीधा प्रभाव भारत-अमेरिका सम्बन्धों पर पड़ता है। वास्तव में आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश भारत की विदेश नीति को कई चुनौतियां पेश कर रहा है। इसके बावजूद भी भारत अपने पड़ोसी देशों तथा अन्य देशों के साथ भी मधुर व सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम करने की दिशा में अग्रसर है।

इस दौरान अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश का भारत की विदेश नीति पर निम्नलिखित प्रभाव द ष्टिगोचर होता है :-

(1) भारत की विदेश नीति का झुकाव अमेरिका की तरफ रहा है। भारत ने अमेरिका के सैन्य सम्बन्ध स्थापित किये हैं।

(2) चीन के साथ भारत के सम्बन्धों में सुधार आया है।

(3) भारत ने पाकिस्तान के साथ भी सम्बन्ध सुधारने के कई प्रयास किये हैं, लेकिन उनका प्रभाव शून्य ही रहा।

(4) भारत आर्थिक उदारीकाण की नीति अपना रहा है। वह WTO, विश्व की शर्तों के अनुसार अपनी व्यापार नीति का निर्माण कर चुका है।

(5) भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति अप्रासांगिकता की दिशा में अग्रसर हुई है।

(6) भारत ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए परमाणु नीति में परिवर्तन कर लिया है। 1998 के पोकरण विस्फोटों के बाद भारत की सुरक्षा नीति सुद ढ़ हो चुकी है।

(7) भारत CTBT पर हस्ताक्षर करने का आज भी विरोध करता है।

(8) भारत क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग की नीति अपनाए हुए है।

(9) भारत ने 'पूर्व की ओर' नीति का अनुसरण करते हुए पूर्वी एशिया तथा विशेष रूप से दक्षिण एशिया में 'ASEAN' देशों के साथ आर्थिक सम्बन्धों को सुद ढ़ किया है।

(10) भारत की विदेश नीति नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था व संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रजातांत्रिकरण की दिशा में प्रयासरत है।

(11) भारत अपने पड़ोसी देशों के साथ पंचशील व शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व पर आधारित नीति अपना रहा है।

(12) भारत ने ईजराइल, फ्रांस, ब्रिटेन, अफगानिस्तान, सिंगापुर तथा पूर्वी एशिया के देशों से अपने नये सम्बन्ध कायम किये हैं।

(13) इस युग में भारत की विदेश नीति का प्रमुख जोर आर्थिक राजनय पर रहा है।

(14) नई सदी में भारत ने रूस के साथ भी सहयोग पर आधारित सम्बन्धों का विकास किया है। रूस द्वारा भारत को सुपरसोनिक क्रुज प्रक्षेपास्त्र बहमोस बनाने में सहयोग देना इसकी पुष्टि करता है। हाल ही में रूस ने भारत को 'एजेटी' प्रक्षेपास्त्र बनाने में भी सहयोग का आश्वासन दिया है।

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश से प्रभावित हुई कई उतार-चढ़ावों से गुजरी है। 1962 के चीनी आक्रमण ने भारत की गुटनिरपेक्षता को बदलने का वातारण तैयार किया और कोरिया, स्वेज, हंगरी, वियतनाम, कांगो व पश्चिमी एशिया के अन्तर्राष्ट्रीय संकटों ने इसके लिए परीक्षण भूमि तैयार की। इसी कारण भारत की विदेश नीति को बदलकर अधिक यथार्थवादी बनाया गया। पाकिस्तान तथा चीन से अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सुरक्षा नीति को भी भारत ने सुद ढ़ किया और 1974 तथा 1998 में परमाणु विस्फोट करके अपनी परमाणु नीति भी निर्धारित की। इसके साथ-साथ भारत अपनी शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की

नीति के सन्दर्भ में पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध कायम करने की बराबर कवायद भी करता रहा। भारत ने हमेशा ही संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों में विश्वास व्यक्त किया और परमाणु अप्रसार के किसी भी न्यायपूर्ण कार्यक्रम का स्वागत किया। परन्तु भारत ने NPT तथा CTBT पर कभी हस्ताक्षर नहीं किये, क्योंकि ये दोनों सन्धियां भेदभावपूर्ण प्रकृति की रही हैं। 1971 की भारत-रूस सन्धि ने भारत की विदेश नीति को नया आयाम दिया था जो 1991 में शीत युद्ध के अन्त व सोवियत संघ के विघटन के बाद बिखर गया। आज भारत आर्थिक उदारीकरण के मार्ग पर चलते हुए 'पूर्व की ओर' की नीति अपना रहा है। आज भारत के अमेरिका के साथ सैन्य सम्बन्ध खराब हैं। दक्षिण एशिया में भी अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए वह 'ASEAN' में चीन के साथ सहयोग कर रहा है। हाल ही में उसने पाक के साथ शांतिवार्ता की नई पहल की है जिसके सकारात्मक परिणाम निकलने की आशा की जाती है। वस्तुतः भारत अपनी आर्थिक नीति व सुरक्षा नीति दोनों को आज इतना मजबूत बना चुका है कि उसकी विदेश नीति किसी भी देश के साथ सुद ढ़ व लाभकारी सम्बन्ध कायम करने में सक्षम है। अब उसकी विदेश नीति अमेरिका, चीन तथा पाकिस्तान के बारे में अपना स्पष्ट द ष्टिकोण प्रस्तुत करती है और अपने सामने प्रस्तुत हर चुनौती का सामना करने में समर्थ दिखाई पड़ती है।

अध्याय-15

भारतीय विदेश नीति : उपलब्धियां एवं चुनौतियां

(Indian Foreign Policy : Achievements and Challenges)

भारत की विदेश नीति की स्थापना में जवाहरलाल नेहरु की देन सबसे महत्वपूर्ण मानी गई है। नेहरु द्वारा प्रतिपादित गुटनिरपेक्षता की नीति, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिद्धान्त विश्व शान्ति का सिद्धान्त, संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों में विश्वास आदि अनेक महत्वपूर्ण बातें आज भी भारत की विदेश नीति के महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। नेहरु जी की गुटनिरपेक्षता की नीति के कारण ही भारत की विदेश नीति को गुटनिरपेक्षता की नीति माना जाता रहा है। भारत को उसकी गुटनिरपेक्षता ने ही विशेष अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा दिलाई है। गुटनिरपेक्षता की नीति के रूप में भारत की विदेश नीति कई उतार-चढ़ावों के दौर से गुजरी है। अन्य देशों की विदेश नीतियों की तरह भारत की विदेश नीति भी राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने तथा आर्थिक विकास के लिए विदेशी धन जुटाने के प्रयासों में कहीं सफल तो कहीं असफल रही है। यद्यपि 1962 के चीनी आक्रमण ने भारत की शान्तिवादी नीति को गहरा आघात पहुंचाया, लेकिन फिर भी भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति काम करती रही और आज भी कर रही है। भारत की विदेश नीति की सफलताओं व असफलताओं का व्यापक विश्लेषण करने के बाद ही इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि उसकी प्रमुख उपलब्धियां व चुनौतियां कौन-कौन सी हैं ?

(1) नेहरु युग में भारत की विदेश नीति (1947 से 1964)

(Indian Foreign Policy in the Nehru Period, 1947 to 1964)

भारत की विदेश नीति को विशेष पहचान दिलाने में नेहरु जी का ही विशेष योगदान रहा है। नेहरु जी ने शीतयुद्ध के वातावरण में गुटनिरपेक्षता बे माध्यम से भारत के राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। नेहरु जी ने गुटनिरपेक्षता के द्वारा ही विदेशों के साथ मधुर सम्बन्ध कायम करने के प्रयास किये। उन्होंने कोरिया संकट, हिन्द-चीन संघर्ष तथा स्वेज नहर विवाद को हल करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने गुटनरिपेक्ष आन्दोलन के मंच पर एशिया व अफ्रीका के देशों को एकत्रित करने में सफलता प्राप्त की। नेहरु ने भारत की विदेश नीति को अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान दिलाया और अमेरिका तथा रूस दोनों से ही आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सफलता पाई। उन्होंने चीन के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति अपनाकर मधुर सम्बन्ध कायम करने की पहल की, परन्तु 1962 में चीनी आक्रमण ने भारत की शान्तिवादी नीति को धूल चटा दी। इससे

भारत की विदेश नीति निष्क्रिय प्रतीत होने लगी। इससे भारत की कूटनीति असफल हो गई। इस आक्रमण ने भारत की विदेश नीति की आदर्शवादिता नष्ट हो गई। अब भारत इस बात को अच्छी तरह समझ गया कि विदेश नीति आदर्शवाद की बजाय यथार्थवाद पर ही आधारित होनी चाहिये।

नेहरु युग में भारत की विदेश नीति पर तरह-तरह के आरोप लगाये जाते हैं। विदेश नीति के विश्लेषकों का मानना है कि नेहरु जी ने भारत की सुरक्षा के प्रति उदासीनता दिखाई और यथार्थवादिता की बजाय आदर्शवाद पर ही विदेश नीति को प्रतिष्ठित किया, जिसका सबूत 1962 के चीनी आक्रमण ने दे दिया। नेहरु जी ने विदेश नीति को शक्ति के आधार से दूर रखकर भारत की सुरक्षा के साथ घोर अन्याय किया। इसी कारण 1962 के चीनी आक्रमण का मुकाबला करने में भारत असफल रहा। इसी तरह नेहरु ने तिब्बत के प्रश्न पर भी कायरता दिखाई और आसानी से चीन की तिब्बत पर सम्प्रभुता स्वीकार कर ली। भारत की विदेश नीति कभी भी चीन की महत्वाकांक्षा तथा कूटनीतिक चालों को नहीं समझ सकी और भारत की सैंकड़ों मील भूमि चीन के कब्जे में चली गई। इसी तरह भारत ने पाकिस्तान के प्रति भी संतुष्टीकरण की नीति अपनाकर घोर गलती की। कश्मीर समस्या इसी का परिणाम है। यदि भारत कश्मीर के मामले पर कमजोर रुख अपना लेता तो यह समस्या जन्म ही नहीं लेती। यदि भारत कश्मीर समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ में नहीं ले जाता तो भी कुछ बात ठीक होती। इसी तरह भारत ने शीत युद्ध के वातावरण में गुटनिरपेक्षता की नीति का प्रतिपादन तो कर दिया, परन्तु उसकी विदेश नीति का झुकाव सोवियत संघ के पक्ष में ही रहा और अरब-इजराईल संघर्ष में भी भारत का रवैया पक्षपातपूर्ण रहा। नेहरु युग में भारत की विदेश नीति की आलोचना करते हुए विदेशी मामलों के विशेषज्ञ जे० डी० सेठी ने कहा है -

(i) नेहरु जी ने प्रथम गलती यह की कि उन्होंने भारत की गुटनिरपेक्षता को अधिक व्यापक दायरे में विश्व समस्याओं के साथ उलझा लिया, जबकि इन समस्याओं से निपटने के लिए भारत के पास पर्याप्त क्षमता नहीं थी।

(ii) नेहरु जी ने सार्वभौमिक सक्रियता के उत्साह में क्षेत्रीय हितों को नजर-अन्दाज कर दिया।

(iii) उन्होंने क्षेत्रीय वास्तविकताओं को नजर-अन्दाज करने के कारण देश की प्रतिरक्षा क्षमता बढ़ाने के प्रति उदासीनता दिखाई तथा

(iv) इसी तरह उन्होंने आर्थिक विकास तथा प्रतिरक्षा विकास के बीच उचित तालमेल कायम नहीं किया।

परन्तु नेहरु युग में भारत की विदेश नीति की संतोषजनक विशेषता यह रही कि भारत किसी महाशक्ति का पिछलग्गू देश नहीं बना और भारत ने स्वतन्त्र विदेश नीति का संचालन करते हुए अपने आर्थिक विकास का मार्ग चुना।

(2) शास्त्री युग में भारत की विदेश नीति (1964 से 1966)

(Indian Foreign Policy in the Shastri Period,1964 to 1966)

नेहरु की म त्यु के बाद भारत की विदेश नीति का संचालन लालबहादुर शास्त्री ने किया। उन्होंने नेहरु जी की आदर्शवादी नीति और यथार्थवाद में सुन्दर समन्वय किया। उन्होंने विदेश नीति के संचालन के लिए एक सचिवालय की स्थापना की और एक स्वतन्त्र विदेश मन्त्री को नियुक्त किया। उन्होंने विदेश नीति सम्बन्धी अधिकतर निर्णय विदेश मन्त्री, विदेश मन्त्रालय और प्रधानमन्त्रीय सचिवालय के माध्यम से ही लिये। उन्होंने पाकिस्तान, इन्डोनेशिया तथा चीन की भारत विरोधी मैत्री को ध्यान में रखकर ही विदेश नीति एवं रक्षा नीति का निर्धारण किया। उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा को विशेष महत्व देकर भारत की विदेश नीति को यथार्थवादी बना दिया। उन्होंने महाशक्तियों के साथ

सम्बन्ध सुधारने तथा गुटनिरपेक्षता की बजाय, दक्षिण एशिया के तथा अन्य पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध सुधारने पर बल दिया। उन्होंने 1965 में भारत-पाक युद्ध में रक्षा विभाग व सेना को स्वतन्त्र नीति निर्धारण करने का अधिकार देकर विजयश्री को सम्भव बनाया। इस युद्ध में भारत की विजय ने भारत की विदेश नीति का खोया हुआ अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय सम्मान वापिस दिलाया। इस युग में भारत की विदेश नीति की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि अमेरिका ने पाक को दी जाने वाली आर्थिक एवं सैनिक सहायता बन्द करनी पड़ी और ताशकन्द समझौते (1966) के बाद UNO में रूस ने भारत का ही पक्ष लिया। परन्तु कुछ विद्वानों ने शास्त्री जी द्वारा किये गये ताशकन्द समझौते (Tashkent Agreement) को भारत के राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध तथा कश्मीर समस्या को सोवियत संघ के समर्थन पर आधारित बताकर भारत की विदेश नीति की आलोचना भी की। वास्तव में शास्त्री जी ने जो कुछ किया, वह भारत के राष्ट्रीय हितों में व द्धि करने वाला ही रहा और भारत की विदेश नीति भी आदर्शवादिता की बजाय यथार्थवादिता के अधिक निकट रही।

(3) प्रथम इन्दिरा गांधी युग में भारत की विदेश नीति (1966 से 1977)

(Indian Foreign Policy in the First Indira Gandhi Period, 1966 to 1977)

शास्त्री जी के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी ने प्रधानमन्त्री के रूप में भारत की विदेश नीति का संचालन किया। इन्दिरा गांधी ने विदेश नीति सम्बन्धी अधिकतर निर्णय स्वयं लिये। उन्होंने नेहरु काल की विदेश नीति को मजबूत करने एवं कूटनीति का विदेश नीति में प्रयोग करके व्यावहारिक कदम उठाये। उन्होंने 1971 में गुटनिरपेक्षता की अवधारणा की सीमाओं की चिन्ता किए बिना सोवियत संघ से एक मैत्री सन्धि की और 1971 के भारत-पाक युद्ध में बंगला देश को स्वतन्त्र देश के रूप उभारने में कूटनीतिक सफलता प्राप्त की। इस युग में इन्दिरा गांधी ने बंगलादेश के मुक्ति आन्दोलन, बंगलादेश की मान्यता, अमेरिका के प्रति द ढ़ता, सोवियत संघ के साथ सम्मानजनक तथा गुटनिरपेक्षता पर आधारित मैत्री सन्धि आदि कार्यों द्वारा अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा की। उन्होंने 'शिमला समझौते' (1972) द्वारा भारत की विदेश नीति की आदर्शवादिता को भी बरकरार रखा। उन्होंने कम्बोडिया तथा वियतनाम के मुक्ति आन्दोलनों का भी पूरा समर्थन किया। ऐसा करते समय भारत ने किसी महाशक्ति के दबाव की चिन्ता नहीं की। इस युग में सोवियत संघ के साथ भारत के सम्बन्धों का सुद ढ़ होना ही भारत की विदेश नीति की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इन्दिरा गांधी ने राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के मामले को गम्भीरता से लेते हुए एक तरफ तो सोवियत संघ से मैत्री सन्धि की और वहीं दूसरी तरफ अपनी सुरक्षा को मजबूती प्रदान करने के लिए 1974 में पोकरण परमाणु विस्फोट भी किया। इन्दिरा गांधी ने भी पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्धों के निर्धारण में व्यावहारिकता को ही अपनाया। उन्होंने गुटनिरपेक्षता को एक महान आन्दोलन से परिवर्तित किया और पश्चिम की आर्थिक सहायता को भी कम करने का प्रयास किया। उन्होंने हिन्द महासागर को 'शान्ति का क्षेत्र' (Zone of Peace) घोषित करवाकर महान कूटनीतिक सफलता भी प्राप्त की। उनके कार्यकाल में भारत के चीन, बर्मा, ईरान, श्रीलंका, इन्डोनेशिया, बंगलादेश, कुवैत, सोवियत संघ आदि देशों से मधुर सम्बन्ध स्थापित हुए।

आलोचकों का कहना है कि इन्दिरा गांधी ने भारत की विदेश नीति को सोवियत समर्थक बनाकर गुटनिरपेक्षता की नीति का उल्लंघन किया। उन्होंने बंगला देश को मान्यता देने में देरी की तथा शिमला समझौते में भारत को कूटनीतिक पराजय दिलाई। राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर उनके द्वारा अपनाई गई नीतियों से भी भारत की विदेश नीति को अमेरिका तथा पश्चिमी राष्ट्रों की नाराजगी मोल लेनी पड़ी। लेकिन इसके बावजूद भी इन्दिरा युग में भारत की विदेश नीति ने भारत को अन्तर्राष्ट्रीय जगत में नई पहचान दी। 1971 की भारत-सोवियत मैत्री तथा 1974 के पोकरण

परमाणु विस्फोट ने भारत की विदेश नीति को नई दिशा प्रदान की।

(4) जनता युगीन भारतीय विदेश नीति (1977 से 1979 तक)

(Indian Foreign Policy in the Janata Period, 1977 to 1979)

इस युग में प्रधानमन्त्री बनने के बाद मोरारजी देसाई ने भारत की विदेश नीति का निर्धारण करने का उत्तरदायित्व विदेशमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी को सौंप दिया। इस युग में भारत की विदेश नीति का निर्धारण व संचालन करने में विदेश मन्त्रालय व विदेश सेवा के अधिकारियों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण मानी गई। इस युग में वाजपेयी जी ने गुटनिरपेक्षता को वास्तविक आधार प्रदान करने का प्रयास किया। उन्होंने भारतीय विदेश नीति के मूल सिद्धान्तों का ही पालन किया और उनमें कोई बदलाव नहीं किया। उन्होंने दो शक्ति गुटों तथा पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने पर विशेष बल दिया, परन्तु किसी महाशक्ति पर निर्भर होने से बचने की बात भी उन्होंने दोहराई। इस युग में भारत ने अमेरिका के साथ सम्बन्ध सुधारने के कई प्रयास किये, परन्तु भारत को अधिक सफलता नहीं मिल सकी। भारत ने चीन के साथ सीमा विवाद को भी ही करने की दिशा में कुछ प्रगति की। उसने नेपाल, बंगलादेशश व पाकिस्तान के साथ भी मधुर सम्बन्ध बनाने के प्रयास किये और कुछ सफलता भी हाथ लगी। इस अल्पकाल में ही भारत की विदेश नीति काफी सफल रही। इस युग में भी भारत की विदेश नीति का झुकाव सोवियत संघ के पक्ष में ही रहा और अमेरिका तथा पश्चिमी राष्ट्रों से भारत को अधिक सहयोग नहीं मिल सका।

(5) द्वितीय इन्दिरा गांधी युग में भारत की विदेश नीति (1980 - 84)

इन्दिरा गांधी ने अपने दूसरे कार्यकाल में भी पुरानी विदेश नीति को ही अपनाया। इस युग में भारत-पाक सम्बन्ध अधिक तनावपूर्ण हो गये। पाकिस्तान भी परमाणु बम्ब बनाने में जुट गया। इससे भारत का डरना स्वाभाविक ही था। भारत द्वारा पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारने के सभी प्रयास निरर्थक साबित हुए। परन्तु अमेरिका तथा सोवियत संघ ने भारत के अन्तर्राष्टथीय द ष्टिकोण को ठीक तरह से समझा। श्रीमती इन्दिरा गांधी की अमेरिका यात्रा ने भारत के प्रति अमेरिका के गलत द ष्टिकोण को बदला और सोवियत संघ के साथ भी भारत की मित्रता सुद ढ़ हुई। इस युग में भारत को गुट-निरपेक्ष देशों के आन्दोलन का नेत त्व सौंपा गया और भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न संस्थाओं और निकायों का प्रतिनिधित्व किया। इस दौरान भारत की विदेश नीति चीन के साथ सीमा विवाद को हल करने की दिशा में कुछ सफल रही। परन्तु चीन फिर भी अपनी पुरानी जिद पर अड़ा रहा और सम्बन्ध अधिक सामान्य नहीं हो सके। इस युग में भारत के ब्रिटेन के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध अवश्य सुधरे। इस युग में भारतीय विदेश नीति की सफलता का महत्वपूर्ण बिन्दु यह आंका गया कि भारत ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को नई दिशा व नया नेत त्व देकर आर्थिक रूप प्रदान किया और इन्दिरा गांधी की छवि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महान नेता के रूप में उभरी। इस युग में भारत की विदेश नीति की असंतोषजनक विशेषता यह रही कि भारत के पाकिस्तान के साथ कश्मीर समस्या, चीन के साथ सीमा विवाद तथा अमेरिका के साथ हिन्द महासागर की समस्या को लेकर मतभेद जारी रहे। परन्तु इसी दौरान भारत फ्रांस से तारापुर परमाणु उर्जा केन्दे के लिए परिष्कृत यूरेनियम लेने में सफल रहा। यह भी भारत की विदेश नीति की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही।

(6) राजीव गांधी युग में भारत की विदेश नीति (1984 - 1989)

1984 में इन्दिरा गांधी की म त्यु के बाद भारत की विदेश नीति का संचालन राजीव गांधी ने किया। राजीव गांधी ने भी भारत की विदेश नीति के परम्परागत आधारों को कायम रखा, अफ्रो-एशियाई राष्ट्रों तथा गुट-निरपेक्ष आन्दोलन में गहरी रुचि ली तथा सोवियत संघ के साथ-साथ अमेरिका के साथ भी सम्बन्ध सुधारने के लिए प्रयास किए। राजीव गांधी ने 'यात्रा की कूटनीति' अपनाई

और विश्व के अनेक नेताओं के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किये। उन्होंने स्वयं ही विदेश नीति का निर्धारण किया। उन्होंने दक्षिण एशिया में भारत का वर्चस्व स्थापित करने पर अधिक जोर दिया। उन्होंने मालदीव में सैनिक क्रान्ति को विफल करने तथा श्रीलंका के जातीय संघर्ष को दबाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकी सरकार के विरुद्ध आर्थिक प्रतिबन्धों को लागू करने की मांग की और नेल्सन मंडेला को जेल से रिहा करने की पुरजोर अपील की। उन्होंने क्यूबा के साथ भी मित्रता की। उनका 'SAARC' के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने बंगलादेश के साथ भी सम्बन्ध सुधारने में सफलता प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उन्होंने अमेरिका तथा पाकिस्तान के साथ भी सम्बन्ध सुधारने के प्रयास किये। इस दौरान पाकिस्तान के साथ मिलकर भारत ने घोषणा की कि कोई भी देश एक दूसरे के परमाणु प्रतिष्ठानों पर हमला नहीं करेगा, परन्तु पाक द्वारा परमाणु हथियारों के निर्माण पर अधिक जोर दिये जाने के कारण भारत-पाक सम्बन्ध सामान्य नही हो सके। इस दौरान भारत की विदेश नीति की सफलता यह रही कि वह नामीबिया को स्वतन्त्र कराने में सफल रहा। परन्तु श्रीलंका की तमिल समस्या को हल करने में भारत की विदेश नीति असफल रही।

इस युग में भारत द्वारा निःशस्त्रीकरण, गुटनिरपेक्ष आन्दोलन तथा प्रजातिवाद विरोधी उठाए गए कदम बहुत महत्वपूर्ण माने गये। राजीव गांधी ने दक्षिण अफ्रीकी सरकार की रंगभेद की नीति का पुरजोर विरोध किया और नामीबिया की स्वतन्त्रता व नेल्सन मंडेला की जेल से रिहाई में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उन्होने दोनों महाशक्तियों तथा पड़ोसी देशों के साथ सम्बन्ध सुधारने के सकारात्मक प्रयास किये। उन्होंने चीन के साथ सीमा-विवाद तथा पाकिस्तान के साथ भी अपनी समस्याओं को हल करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। वास्तव में भारत की विदेश नीति को प्रभावी बनाने में जितनी महत्वपूर्ण भूमिका राजीव गांधी की रही, अन्य की नही। वस्तुतः राजीव गांधी ने सिद्धान्त और व्यवहार के साम्य पर आधारित विदेश नीति का ही निर्धारण व संचालन किया।

(7) 1989 से गुजराल सिद्धान्त तक भारत की विदेश नीति

1989 के चुनाव के बाद जनता दल की सरकान बनी जिसका नेत त्व वी०पी० सिंह ने किया। वी०पी० सिंह ने मोरारजी देसााई की तरह विदेश नीति के मामले में विदेश मन्त्रालय को ही अधिक सम्मान दिया। उस दौरान भारत की विदेश नीति का संचालन विदेश मन्त्री इन्द्रकुमार गुजराल ने किया। इस दौरान इन्द्रकुमार गुजराल ने कुवैत से भारतीयों को सुरक्षित वापिस लाकर सफल विदेश नीति का परिचय दिया। उन्होंने श्रीलंका से शांति सेना को सफलातापूर्वक वापिस बुलाया। उन्होंने पाकिस्तान व बंगला देश के साथ सम्बन्ध सुधारने के प्रयास किए और नवोदित नामीबिया के साथ भी मैत्री कायम की। वस्तुतः वी०वी० सिंह ने भी भारत की परम्परागत विदेश नीति में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं किया।

1990 में वी०पी० सिंह की सरकार के पतन के बाद चन्द्रशेखर ने प्रधानमन्त्री बनने के बाद विदेश नीति के क्षेत्र मे विदेश मन्त्रालय को ही उचित महत्व दिया। उन्होंने खाड़ी युद्ध के समय अमेरिका विमानों को ईंधन भरने की दी जाने वाली सुविधा रोक दी। उन्होंने कुवैत पर आक्रमण करने तथा स्वयं में उसका विलय करने के लिए ईराक की निन्दा की। उन्होंने चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए एक व्यापारिक शिष्टमंडल चीन भेजा और पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया। उन्होंने नेपाल के साथ भी सम्बन्ध सुधारने के प्रयास किये। परन्तु इस युग में विदेश नीति के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं लिया जा सका।

1991 में चन्द्रशेखर सरकार के पतन के बाद पी०वी० नरसिम्हाराव ने राष्ट्र की आर्थिक आवश्यकताओं के संदर्भ में भारत की आधारभूत गुटनिरपेक्षता की नीति को कायम रखते हुए

विदेश नीति के मानदण्ड निर्धारित किये। इस सरकार की आर्थिक उदारीकरण की नीति ने संयुक्त राज्य अमेरिका, पाश्चात्य देशों, जापान तथा कोरिया जैसे राष्ट्रों को भारत में पूंजी निवेश के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने इस बात को अच्छी तरह समझा कि शीत युद्ध का अन्त हो जाने पर भारत की विदेश नीति को नए सन्दर्भ में ढालना अति आवश्यक है। इसी कारण उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ने तथा भारत में पूंजी निवेश को बढ़ावा देने की नीति अपनाई। उन्होंने शीत युद्ध के पश्चात की स्थिति में गुट-निरपेक्षता के औचित्स पर बल दिया। उन्होंने पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध सुधारने की दिशा में भी प्रगति की। इस युग में भारत-अमेरिकी आर्थिक सम्बन्धों की नई शुंरुआत हुई तथा ईजराइल के साथ भी भारत ने नवीन सांझेदारी पर आधारित सम्बन्ध कायम किये। इसके अतिरिक्त भारत ने भूटान, बंगलादेश, श्रीलंका, ब्रिटेन, रूस, जर्मनी, फ्रांस, पुर्तगाल व स्पेन के साथ भी सम्बन्ध सुधारने के प्रयास किये। इस युग में भारत की विदेश नीति की सफलता यह रही कि भारत परमाणु अप्रसार पर अमेरिका को सहमत करा सका और NPT सन्धि तथा CTBT सन्धि पर हस्ताक्षर भी नहीं किये। ऐसा करके भारत की विदेश नीति राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा करने में सफल रही।

1996 में पी०वी० नरसिम्ळाराव के बाद अल्प समय के लिए भारत के प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी बने। परन्तु इन्होने विदेश नीति के निर्धारण व संचालन का अवसर 16 दिन में ही खो देना पड़ा। उसके बाद एच०डी० देवगौडा प्रधानमन्त्री बने। देवगौडा को विदेश नीति का कोई ज्ञान नहीं था। इसलिए उन्होंने विदेश नीति संचालन का भार विदेश मन्त्री इन्द्रकुमार गुजराल के कन्धो पर डाल दिया। गुजराल ने भी CTBT पर हस्ताक्षर नहीं किये। इस युग में भारत में आर्थिक उदारीकरण करने के लिए विदेश नति में कुछ परिवर्तन किये गये। इस दौरान भारत ने खुली अर्थव्यवस्था एवं बाजार मूल्य प्रणाली को भारत की विदेश नीति में महत्वपूर्ण स्थान दिया और अमेरिका के साथ बेहतर सम्बन्धों को प्राथमिकता दी। विदेश मन्त्री इन्द्रकुमार गुजराल के 'गुजराल सिद्धान्त' का प्रतिपादन करके अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ भी बेहतर सम्बन्धों को प्रमुखता दी। भारत ने रूस, चीन, श्रीलंका, इजराइल, ब्रिटेन आदि देशों के साथ भी मधुर सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास किये। इस युग में भारत ने बंगलादेश के साथ गंगाजी बंटवारे पर समझौता करके इस विवाद को हमेशा के लिए मिटा दिया और इसी तरह चीन के साथ भी सीमा-विवाद को भूलकर सम्बन्ध सुधारने के प्रयास किये। वस्तुतः इस युग में भारत की विदेश नीति काफी सफल रही।

1997 में देवगौडा सरकार का पतन हो जाने के बाद भारत के शासन व विदेश नीति के संचालन की बागडोर प्रधानमन्त्री इन्द्रकुमार गुजराल के हाथों में आ गई। देवगौडा सरकार में विदेश मन्त्री रह चुके गुजराल विदेश नीति का व्यावहारिक अनुभव रखते थे। उन्होंने भारत की विदेश नीति का संचालन 'गुजराल सिद्धान्त' के नाम से किया। उन्होंने विदेश विभाग अपने पास रखा और गुजराल सिद्धान्त के अनुसार कार्य किया। उन्होंने पाकिस्तान तथा अन्य पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने में सफलता प्राप्त की और संयुक्त राष्ट्र महासभा में आतंकवाद को समाप्त करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय योजना का आह्वान भी किया। गुजराल ने गुटनिरपेक्षता और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति पर चलते हुए दक्षिण एशिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। परन्तु इस दौरान भी भारत ने CTBT पर किसी दबाव में आकर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। इस युग में भारत के नेपाल, बंगलादेश, श्रीलंको, म्यामांर, थाईलैण्ड, मालदीव, चीन, दषिण अफ्रीका आदि देशों के साथ अच्छे सम्बन्ध कायम हुए। लेकिन गुजराल सिद्धान्त भी भारत-पाक,

भारत-चीन तथा भारत-अमेरिकी सम्बन्धों की कड़वाहट कम नहीं कर सका। यही भारत की विदेश नीति का असफलता रही।

(8) वाजपेयी युग में भारत की विदेश नीति (1998 से 2004 तक)

गुजराल के बाद भारत की विदेश नीति का संचालन अटल बिहारी वाजपेयी ने किया। वाजपेयी ने भी 'गुजराल सिद्धान्त' से दो कदम आगे बढ़कर सभी पड़ोसी देशों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को प्राथमिकता दी। वाजपेयी ने परमाणु नीति में परिवर्तन न करने की बात कही और 1998 में पांच परमाणु परीक्षण किये। परन्तु इस सन्दर्भ में राष्ट्र की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए परमाणु विस्फोटों के बाद भारत ने परमाणु नीति की पुनः समीक्षा की बात की और परमाणु हथियार बनाने के विकल्प का इस्तेमाल करने की बात भी स्वीकार की। यद्यपि भारत द्वारा किये गये परमाणु विस्फोटों की विश्व समुदाय ने निन्दा की और अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी देशों ने भारत पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये। परन्तु भारत ने बिना किसी दबाव के अपनी स्वतन्त्र विदेश नीति का संचालन किया। भारत ने पाकिस्तान के साथ समसामयिक आधार पर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पहल की और लाहौर घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किये। इसके तहत दोनों देशों ने पर्यटन व व्यापर को बढ़ावा दिया गया तथा दोनों देशों के बीच रेल, बस तथा हवाई सेवायें प्रारम्भ की गई। परन्तु मई 1999 में पाकिस्तान द्वारा कारगिल क्षेत्र में घुसपैठ करके भारत के शान्ति प्रयासों को चुनौती दी। इस घुसपैठ का मुंहतोड़ जवाब देकर भारत ने अपना राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान बरकरार रखा। कारगिल विजय भारत की विदेश नीति की महत्वपूर्ण सफलता थी। विश्व के अधिकांश देशों ने भारत का ही पक्ष लिया। कारगिल युद्ध के बाद भारत-पाक सम्बन्धों में कटुता आ गई। उसके बाद दिसम्बर, 2001 में पाकिस्तान समर्थक आतंकवादियों ने भारत की संसद पर हमला कर दिया। इससे दोनों देशों के बीच और अधिक सम्बन्ध खराब हो गये। परन्तु मई, 2002 में भारत ने पाकिस्तान के साथ शांतिपूर्ण सम्बन्ध कायम करने की दिशा में पहल करते हुए लाहौर बस सेवा पुनः आरम्भ की। इस दौरान भारत की विदेश नीति को नया आयाम देते हुए वाजपेयी ने ईरान, टर्की, इन्डोनेशिया, वियतनाम, जापान, आस्ट्रेलिया, मलेशिया, सिंगापुर, अमेरिका व थाईलैण्ड के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित किये। परन्तु इस दौरान भी भारत CTBT पर हस्ताक्षर न करने की जिद पर कायम है।

इस युग में भारत की विदेश नीति की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि भारत परमाणु शक्ति सम्पन्न देश बन गया और उसके नये देशों के साथ मधुर सम्बन्ध कायम हुए। मध्य एशियाई गणतन्त्रों के साथ व्यापार तथा राजनयिक सम्बन्ध सुधारे। वर्तमान मनमोहन सरकार ने भी अपने पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने की दिशा में पहल करने तथा नेहरु युग की विदेश नीति पर ही अमल करने की बात स्वीकार की है।

भारतीय विदेश नीति की उपलब्धियां

(Achievements of Indian Foreign Policy)

उपरोक्त विवेचन के बाद कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति जहां कुछ मामलों में सफल रही है, वहीं वह कुछ मामलों में असफल भी रही है। भारत की विदेश नीति की प्रमुख सफलतायें या उपलब्धियां निम्नलिखित है :-

(1) **गुटनिरपेक्षता की नीति के रूप में भारत की विदेश नीति की उपलब्धियां** :- भारत द्वारा गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाने का प्रमुख कारण स्वतन्त्र विदेश नीति, गुटों से अलगाववाद, विश्व शान्ति, आर्थिक विकास, नवोदित राष्ट्रों की समस्याओं को अन्तर्राष्ट्रीय मंच

पर उठाना, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद तथा रंगभेद की नीति का विरोध करने का उद्देश्य था। इस नीति के माध्यम से भारत ने उपरोक्त सभी लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयास किये। भारत ने ब्रिटेन, अमेरिका, चीन, रूस व अपने पड़ोसी देशों के साथ शांतिपूर्ण व सह-अस्तित्व पर आधारित सम्बन्ध स्थापित करने के लिए इसी नीति का अवलम्बन किया। भारत ने स्वतन्त्र विदेश नीति अपनाते हुए अपनी सुरक्षा को मजबूत बनाने के लिए सैनिक गुटबन्दी के स्थान पर कूटनीति का ही प्रयोग किया। इस नीति का प्रयोग करके भारत ने शीतयुद्ध के वातावरण में कुछ नरमी लाने में भी सफलता प्राप्त की। यदि भारत किसी गुट का सदस्य बन जाता तो विश्व शान्ति को खतरा उत्पन्न हो सकता था। इसलिए उसने गुटबन्दी से दूर रहकर ही विश्व शान्ति के लिए काम किया। इस नीति द्वारा भारत ने अमेरिका तथा सोवियत संघ दोनों से समान सम्बन्ध बनाये रखने के प्रयास किये, परन्तु अमेरिका की पाकिस्तान समर्थक नीति के कारण ऐसा असम्भव रहा। इसके विपरीत उसके सोवियत संघ के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध कायम हुए। सोवियत संघ ने नवोदित राष्ट्रों की स्वतन्त्रता व हिन्द महासागर को 'शांति का क्षेत्र' घोषित करवाने में भारत का ही साथ दिया। यद्यपि 1962 के चीनी आक्रमण के समय भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति सफल नहीं रही। इसी तरह 1965 के भारत-पाक युद्ध में भी ऐसा ही हुआ। परन्तु 1971 में 'भारत-सोवियत मैत्री सन्धि' इस नीति की महत्वपूर्ण उपलब्धि रही। अब भारत पाकिस्तान तथा चीन से अपनी सुरक्षा करने में सक्षम हो गया था। उसे सोवियत संघ की तरफ से तकनीकी एवं सैन्य सहायता मिलने लगी और आर्थिक विकास के लिए भी काफी धन प्राप्त हुआ।

गुटनिरपेक्षता की नीति को एक आन्दोलन में बदलकर भारत ने रंगभेद, प्रजातिवाद, उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के विरुद्ध आवाज उठाई। इससे भारत की प्रतिष्ठा एशिया व अफ्रीका के देशों में बढ़ी। इस आन्दोलन के मंच पर एशियाई-अफ्रीकी एकता का जन्म हुआ। अब भारत इस स्थिति में हो गया कि वह त तीय विश्व के हितों के लिए न्याय की लड़ाई लड़ सकता था। 1971 के भारत-पाक युद्ध तथा 1974 के पोकरण परमाणु विस्फोट का गुटनिरपेक्ष देशों ने समर्थन किया। इन देशों ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद व रंगभेद के विरुद्ध लड़ाई में भारत का साथ दिया और हिन्द महासागर को भी 'शान्ति का क्षेत्र' घोषित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके साथ ही 'नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था' की स्थापना में भारत द्वारा किये गये प्रयासों को गुटनिरपेक्ष देशों ने पूरी प्रसंशा की और G-77, G-15 तथा दक्षिण-दक्षिण सहयोग की प्रक्रिया में भी भारत गुटनिरपेक्ष देशों का सहयोग प्राप्त करने में सफल रहा। गुटनिरपेक्षता की नीति के आधार पर ही भारत ने SAARC तथा ASEAN जैसे क्षेत्रीय संगठनों को खड़ा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और दक्षिण-दक्षिण सहयोग की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए गुटनिरपेक्ष देशों से आर्थिक, तकनीकी एवं सांस्कृतिक समझौते किये। भारत के दक्षिण एशिया को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने के प्रयासों की भी इन देशों ने सराहना की और इस बात का पुरजोर समर्थन किया। परन्तु शीत युद्ध के अन्त तथा सोवियत संघ के विघटन के बाद यह नीति अधिक सफल नहीं रही। CTBT तथा भारत की स्थाई सदस्यता की मांग पर त तीय विश्व के देशों का समर्थन न मिलना गुटनिरपेक्षता की अप्रासंगिकता या महत्व में कमी को उजागर करते हैं।

(2) **राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत बनाना** :- स्वतन्त्रता के बाद भारत ने अपनी विदेश नीति को पंचशील व शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्तों के आधार पर संचालित किया। इस सन्दर्भ में भारत ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा को भुलाए रखा। भारत को इस बात का ज्ञान नहीं था कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध कोरे आदर्शवाद पर आधारित नहीं हो सकते। इसी के परिणामस्वरूप 1962 के चीनी आक्रमण के समय भारत की आदर्शवादी नीति की पोल खुल गई। इसके बाद भारत ने अपनी विदेश

नीति को राष्ट्रीय सरुक्षा के सन्दर्भ में यथार्थवादी बनाया। इस नीति के द्वारा भारत ने अपनी सैन्य क्षमता बढ़ाने के लिए विदेशों से अत्याधुनिक हथियार खरीदे और सैन्य तकनीक का भी आदान-प्रदान किया। 1971 में भारत ने सोवियत संघ से मैत्री सन्धि करके आधुनिक टैंक, मिग लड़ाकू विमान व अन्य सैन्य सामग्री खरीदनें में सफलता प्राप्त की। राष्ट्रीय सुरक्षा को मजबूत बनाने के इरादे से ही भारत ने 1974 में पोकरण विस्फोट किया तथा 1983 में एकीकृत निर्देशित प्रक्षेपास्त्र विकास कार्यक्रम चलाया जिसके अन्तर्गत भारत ने आधुनिक प्रक्षेपास्त्रो - अग्नि, प थ्वी, नाग, आकाश, त्रिशुल आदि का विकास किया। भारत ने कूटनीति का प्रयोग करके सोवियत संघ के साथ मित्रता करके भारत-विरोधी ताकतों को यह महसूस करा दिया कि अब भारत राष्ट्रीय सुरक्षा के मामले में किसी से कम नहीं है। स्वयं हेनरी किसिंजर ने कहा था कि "भारत एक उभरती हुई ताकत है।" शीत युद्ध के अन्त के बाद बदले हुए विश्व परिवेश में भी भारत ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के सन्दर्भ में 1998 में पांच परमाणु विस्फोट करके महाशक्तियों को अपनी नीति से अवगत करा दिया। आज अमेरिका तथा अन्य शक्तियां यह बात भली-भांति जान चुकी हैं कि राष्ट्रीय सुरक्षा के मामले में भारत आत्मनिर्भर बन चुका है। इसी कारण आज अमेरिका, ब्रिटेन तथा चीन भी भारत के साथ सम्बन्ध सुधारने की दिशा में प्रयासरत दिखाई देते हैं।

(3) **संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ सहयोग** :- भारत की विदेश नीति का प्रमुख सिद्धान्त व उद्देश्ययह रहा है कि उसने हमेशा ही संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी निष्ठा व्यक्त की है। इस संगठन के माध्यम से ही भारत ने उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद व रंगभेद के विरुद्ध अपने संघर्ष में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की हैं। भारत ने इस संगठन के माध्यम से ही हिन्द महासागर को 'शांति का क्षेत्र' घोषित करवाने, नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की मांग उठाने तथा नवोदित राष्ट्रों को स्वतन्त्रता दिलाने में अहम् भूमिका निभाई है। 1948 की संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकारों से सम्बन्धित घोषणा में भी भारत का विशेष सहयोग रहा। निःशस्त्रीकरण, सामूहिक सुरक्षा तथा विश्व शान्ति के लिए किए प्रयासों में भी भारत ने विशेष भूमिका अदा की। आज संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प थ्वी की सुरक्षा, पर्यावरण प्रदूषण, आतंकवाद की समस्या, ओजोन परत की सुरक्षा, पर्यावरण सन्तुलन आदि के सन्दर्भ में चलाये जा रहे अभियान में भारत पूरा सहयोग दे रहा है। आज भारत की रुचि संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रजातांत्रिकरण में है और भारत नई विश्व व्यवस्था का पक्षधर है।

(4) **विश्व शान्ति व सुरक्षा में योगदान** :- भारत की विदेश नीति विश्व शान्ति व सुरक्षा की प्रबल पक्षधर रही है। विश्व शान्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्दर तथा बाहर किए गए प्रयासों में भारत ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत ने निःशस्त्रीकरण व शस्त्र दौड़ को रोकने के लिए उन सभी प्रयासों का समर्थन किया है जो सार्वभामिक और न्यायपूर्ण थे। 1963 में भारत द्वारा 'आंशिक परमाणु परीक्षण सन्धि' पर हस्ताक्षर करने का कारण यही था कि यह सन्धि निःशस्त्रीकरण के प्रयासों द्वारा विश्व शान्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम थी। परन्तु NPT तथा CTBT पर भारत द्वारा हस्ताक्षर न करने का प्रमुख करण इन सन्धियों का भेदभावपूर्ण होना रहा। इसके अतिरिक्त भारत ने अन्तर्राष्टीय विवादों का शान्तिपूर्ण समाधान करवाने में भी अहम भूमिका निभायी। 1956 में कोरिया-विवाद, 1956 के स्वेज नहर संकट व 1990 के खाड़ी संकट को हल कराने में भारत ने सकारात्मक भूमिका अदा की और विश्व शान्ति के लिए किए गए प्रयासों में भारत को कुछ सफलता भी मिली। इसके साथ-साथ हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र घोषित करवाने में भी भारत ने संयुक्त राष्ट्र सांघ में जो प्रयास किये, वे भी विश्व शान्ति की दिशा में ही महत्वपूर्ण कदम हैं। ऐसे ही प्रयास भारत ने शीत युद्ध के तनाव को कम करने के लिए किये थे और भारत आज भी विश्व शांति के लिये शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति को ही प्राथमिकता देता है। भारत ने अपने पड़ोसी देशों के साथ भी शांतिपूर्ण व सह-अस्तित्व पर आधारित सम्बन्धों को सर्वोच्चता प्रदान करता है। भारत-पाक युद्धों में जीती गई भूमि भारत ने पाक को लौटा दी, परन्तु चीन आज

भी भारत की हजारों मील भूमि दबाए बैठा है। इसके बावजूद भी भारत अपने पड़ोसी देशों के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने के सतत् प्रयास करता रहता है, चाहे उसे इस उद्देश्य में कम ही सफलता मिले।

(6) **पड़ोसी देशों के साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्ध** :- भारत की विदेश नीति अपने पड़ोसी देशों के साथ पंचशील के सिद्धान्तों के आधार पर तथा 1997 के बाद गुजराल सिद्धान्त के आधार पर सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध कायम करने की रही है। परन्तु पाकिस्तान तथा चीन की तरफ से भारत पर 1962, 1`965, 1971 व 1999 में जो युद्ध थोपे गये, उनसे भारत की शान्ति की नीति को गहरा आघात पहुंचा। परन्तु 1999 की कारगिल लड़ाई में भारत ने एक तरफ तो पाकिस्तान को करारी मात दी और दूसरी तरफ कूटनीतिक सफलता प्राप्त की। इससे भारत की विदेश नीति सुद ढ़ हुई। परन्तु पाक अधिकृत कश्मीर तथा चीन द्वारा दबाए कए भारतीय क्षेत्र को मुक्त कराने के लिए भारत की विदेश नीति आज भी असमर्थ है।

(7) **आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त करना** :- 1947 के बाद शीत-युद्ध के वातावरण में भी भारत की विदेश नीति का लक्ष्य अमेरिका तथा सोवियत संघ दोनों से मित्रता बनाए रखने का रहा ताकि उन देशों से भारत के आर्थिक विकास के लिए आर्थिक मदद प्राप्त हो सके। परन्तु भारत की विदेश नीति अमेरिका की तरफ से कम ही आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सफल रही। उसे सोवियत संघ की तरफ से ही अधिक धन प्राप्त हुआ। इस धन का प्रयोग भारत ने गरीबी, भूख, बीमारी, बेरोजगारी आदि समस्याओं का समाधान करने के लिए किया। भारत ने विदेशों से मिलने वाली आर्थिक सहायता का उपयोग देश के औद्योगिक तथा संस्थागत ढोंचे का विकास करने में किया। धीरे-धीरे भारत ने आत्मनिर्भरता का लक्ष्य भी प्राप्त किया। 1991 में शीत युद्ध के अन्त के बाद तथा सोवियत संघ के विघटन की प्रक्रिया ने यह अनिवार्य कर दिया कि भारत अपनी विदेश नीति को बदले और आर्थिक उदारीकरण व सुधारों की प्रक्रिया शुरु करे। भारत ने आर्थिक सुधारों को अपनाकर अपनी खराब अर्थव्यवस्था को पटरी पर ला दिया। इसी कारण भारत की विदेश नीइति विश्व की प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं से आर्थिक विकास के लिए धन प्राप्त करने में सफल रही। आज भारत में विदेशी कम्पनियां पूंजी निवेश को बढ़ावा दे रही हैं और भारत को ब्रिटैनबुड संस्थाओं से भी भारी आर्थिक मदद मिल रही है। इसे भारत की विदेश नीति की महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है।

(8) **राष्ट्रीय हित की प्राप्ति** :- भारत की विदेश नीति राष्ट्रीय हित की सुरक्षा व अभिव द्धि में प्रायः सफल हो रही है। यद्यपि 1962 के चीनी आक्रमण ने भारत के राष्ट्रीय हित को अवश्य चोट पहुंचाई है और ऐसा ही पाकिस्तान ने किया। लेकिन फिर भी भारत की अरब समर्थ्क विदेश नीति इस बात में मददगार रही है कि भारत-पाक युद्धों में किसी अरब राष्ट्र ने पाकिस्तान का साथ नहीं दिया। भारत द्वारा अफ्रीका व एशिया के देशों के सन्दर्भ में अपनाई जाने वाली नीति उसके राष्ट्रीय हितों के ही अनुकूल रही है। भारत की बंगलादेश, श्रीलंका व सोवियत संघ के प्रति अपनाई गई नीति भी अपने राष्ट्रीय हित के लक्ष्यों को प्राप्त करने में मददगार साबित हुई। भारत की विदेश नीति को अपने राष्ट्रीय हितों में अभिव द्धि करने का जितना अवसर सोवियत संघ समर्थक नीति से मिला, उतना अन्य किसी से नहीं। 1971 की भारत-सोवियत मैत्री भारत की विदेश नीति के राष्ट्रीय हित के लक्ष्य को प्राप्त करने में मील का पत्थर सिद्ध हुई।

(9) **अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान में व द्धि** :- भारत द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सुरक्षा, आर्थिक विकास, नवोदित देशों की स्वतन्त्रता, उपनिवेशवाद, साम्राज्चाद व रंगभेद की नीति का विरोध तथा एशियाई-अफ्रीकी एकता के प्रयासों के सन्दर्भ में निभाई गई भूमिका ने भारत की विदेश नीति को अन्तर्राष्ट्रीय जगत में प्रतिष्ठा प्रदान की है। भारत द्वारा 'नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था' (NIEO) की स्थापना की दिशा में किए गए प्रयासों ने त तीय विश्व के राष्ट्रों अथवा नवोदित स्वतन्त्र राष्ट्रों का

मन मोह लिया है। इस सन्दर्भ में भारत द्वारा G-77, G-15, गैट, दक्षिण-दक्षिण सहयोग, SAARC तथा ASEAN में निभाई गई भूमिका महत्वपूर्ण रही है। नई विश्व व्यवस्था व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की स्थापना हेतु भी भारत द्वारा किए गये प्रयास भारत की छवि को निखारने वाले ही हैं। भारत द्वारा परमाणु निःशस्त्रीकरण तथा संयुक्त राष्ट्र सघ के लोकतांत्रिकरण की जोरदार मांग उठाये जाने से भी भारत की विदेश नीति को विशेष सम्मान प्राप्त हुआ है।

(10) **क्षेत्रीय सहयोग में व द्धि** :- भारत की विदेश नीति अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के साथ-साथ क्षेत्रीय सहयोग में भी व द्धि करने में सफल रही है। भारत द्वारा SAARC तथा ASEAN के मंच पर क्षेत्रीय सहयोग के प्रयास सार्थक रहे हैं। आज दक्षिण एशिया के अधिमतर देश SAFTA लागू गरने पर सहमत दिखाई पड़ते हैं। भारत की विदेश नीति का ध्येय क्षेत्रीय सहयोग द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं पर से आर्थिक निर्भरता कम करके आत्मनिर्भरता में व द्धि करना है। भारत का मानना है कि क्षेत्रीय सहयोग ही विकासशील व पिछड़े देशों को विकसित देशों के शोषण से बचा सकता है। इसलिए भारत ने चीन, जापान, ब्राजील, सिंगापुर, थाईलैण्ड आदि देशों से तकनीकी व आर्थिक सहयोग के कई समझौते किए हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति राष्ट्रीय हित की द ष्टि से सार्थक रही है। गुटनिरपेक्षता की नीति के रूप में भारत की विदेश नीति को विशेष पहचान मिली है और भारत विश्व नेता के रूप में उभरा है। इससे शीत युद्ध के तनाव में कमी आई है तथा विश्व शान्ति को बढ़ावा मिला है। संयुक्त राष्ट्र के साथ सहयोग करके भारत ने हमेशा ही विश्व शान्ति व सुरक्षा के लिए प्रयास किया है। भारत द्वारा अपने पड़ोसी देशों के प्रति अपनाई गई शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर सम्मान हुआ है। भारत द्वारा सोवियत समर्थक नीति से भारत की विदेश नीति को सार्थक आधार प्राप्त हुआ है। इससे भारत को अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा व आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में सुविधा हुई है। भारत द्वारा 1998 में किए गए परमाणु विस्फोटो ने भारत की विदेश नीति को सुद ढ़ बनाया है और विश्व राजनीति में भारत के महत्व को सार्थक सिद्ध कर दिया है। यद्यपि कई बार भारत की विदेश नीति अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में कुछ असफल भी रही हैं। लेकिन फिर भी कुल मिलाकर आज भारत की विदेश नीति प्रगति के मार्ग पर चल रही है और उसके अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में सफलता आशा की जाती है।

भारत की विदेश नीति की प्रमुख चुनौतियां

(The Major Chalanges of Indian Foreign Policy)

य़द्यपि अधिकतर मामलों में भारत की विदेश नीति अपने राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने में सफल रही है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके सामने कोई चुनौती नहीं आई है। सत्य तो यह है कि शीत युयद्ध के अन्त तक सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् (1989-91) अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में आए परिवर्तनों का प्रभाव भारत की विदेश नीति पर भी पड़ा। इसके बाद गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की अप्रासंगिकता, विश्व व्यापार संगठन के जन्म, व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध सन्धि (CTBT) का जन्म, भारत तथा पाकिस्तान द्वारा किये गये परमाणु विस्फोट, हिन्द महासागर में बढ़ती सैन्य प्रतिस्पर्धा आदि के सन्दर्भ में भारत की विदेश नीति को नई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। संयुक्त राज्य अमेरिका का एक ध्रुवीय शक्ति के रूप में उभार, आर्थिक उदारीकरण व तकनीकी विकास ने भारत की विदेश-नीति को जिन नई चुनौतियों के लिए प्रस्तुत किया, वे निम्नलिखित हैं :-

(1) **सामरिक चुनौतियां** **(Strategic Challenges)** :- सोवियत संघ के विघटन के बाद उत्पन्न

अन्तर्राघ्ट्रीय स्थिति में सम्पन्न किए गए परमाणु, प्रक्षेपास्त्र व तकनीक हस्तांतरण से सम्बन्धित सभी समझौते भारत को राष्ट्रीय सुरक्षा के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा बनकर उभरे हैं। CTBT का वर्तमान स्वरूप भारत के राष्ट्रीय हितों के सर्वथा प्रतिकूल है। रूस द्वारा भारत को दिये जाने वाले क्रायोजेनिक ईंधन की आपूर्ति रोकने के पीछे भी भारत को सामरिक द ष्टि से कमजोर करना है। विकसित राष्ट्रों द्वारा परमाणु अप्रसार से सम्बन्धित नीति भी भारत के राष्ट्रीय हित के विपरीइत ही है। परमाणु अप्रसार कार्यक्रम पर अमेरिका तथा उसके (पिछलग्गू) देशों का वर्चस्व होने के कारण भारत की विदेश नीति अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के मामले में कमजोर महसूस करती है। इसी तरह अमेरिमा द्वारा पाकिस्तान को उपलब्ध कराई जाने वाली सैन्य सहायता के पीछे भी यह लक्ष्य हही काम कर रहा है कि दक्षिण एशिया में भारत के बढ़ते वर्चस्व को रोककर अपना तथा अपने सहयोगी राष्ट्रों का वर्चस्व कायम किया जाये। इस तरह के अमेरिका के प्रयास भारत की विदेश नीति को भयंकर चुनौती पेश कर रहे हैं। पाकिस्तान को अपने गुट में शामिल करने के पीछे भी अमेरिका का यही लष्य कार्य कर रहा है कि भारत को विश्व की महान ताकत बनने से रोका जाये। इसी तरह की चुनौतियां भारत को चीन की तरफ से भी मिलती रही हैं।

वस्तुतः निःशस्त्रीकरण की दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किए गए प्रयास भी भेदभावपूर्ण संगठनों के माध्यम से ही हो रहे हैं और इन संगठनों पर अमेरिका जैसे देशों का वर्चस्व है। इन संगठनों में भारत को सहायता से वंचित करने के प्रयास किए जाते रहे हैं। विकसित राष्ट्र यथास्थिति के आधार पर ही निःशस्त्रीकरण कार्यक्रमों के पक्षधर हैं। इन देशों की तरफ से किए गए निःशस्त्रीकरण के प्रयासों का परिणाम आज तक भी विकासशील देशों को नहीं मिला है। इन देशों ने भारत तथा उसके पड़ोसी देशों के बीच मधुर सम्बन्ध कायम करने में कोई मदद नहीं दी है। इसके विपरीत उन्होंने भारत के पड़ोसी देशों को भारत के विरुद्ध उकसाया है ताकि भारत की विदेश नीति को अपने प्रभाव मं रखा जा सके। इससे भारतीय विदेश नीति के सामने सामरिक चुनौतियों का अम्बार सा लग गया है। इसके साथ-साथ अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी राष्ट्रों ने हिन्द महासागर में सैन्यकरण को बढ़ावा देकर भारत की विदेश नीति के शांतिपूर्ण कार्यक्रम को चुनौती दी है। भारत का बार-बार यह आग्रह रहा है कि हिन्द महासागर को 'शान्ति का क्षेत्र' (Zone of Peace) बनाया जाये। परन्तु अमेरिका के कान पर आज तक जूं तक नहीं रेंगी। अतः आत भारत की विदेश नीइति के सामने सामरिक द ष्टि से कई चुनौती उभरकर आए हैं जिनसे निपटनेद की क्षमता भारत को विकसित करनी होगी। इस दिशा में भारत द्वारा स्वदेशी तकनीक पर आधारित 'सारस' विमान का निर्माण तथा प्रक्षेपास्त्रा तकनीक का विकास करके यह सिद्ध कर दिया है कि भारत सामरिक चुनौतियों से निपट सकता है।

(2) **राजनीतिक चुनौतियां (Political Challenges)** :-आज भारत की विदेश नीति के सामने सामरिक चुनौतियों की तरह कुछ राजनैतिक चुनौतियां भी हैं। मानवाधिकारों के नाम पर भारत अमेरिका तथा अन्य देशों द्वारा डाले गए अनुचित दबाव भी आज भारत की विदेश नीति के सामने चुनौती बनकर उभरे हैं। आज भारत की राजनीतिक शर्तों पर मिलने वाली आर्थिक सहायता तथा गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का प्रभावहीन होना भी सोवियत संघ के विघटन से अमेरिका की बढ़ती दादागिरी तथा इस्लामिक कट्टरवाद की नीति भी भारत के लिए खतरा उत्पन्न करती है। ईराक तथा अफगानिस्तान का घटनाक्रम भी भारत को चिन्तित करती है। ईराक तथा अफगानिस्तान का घटनाक्रम भी भारत को चिन्तित करता है। पाकिस्तान में सैनिक शासन की उपस्थिति भी भारत-पाक सम्बन्धों को सामान्य बनाने से रोक रही है। चीन-पाक गठजोड़ तथा अमेरिका द्वारा NATO का विस्तार करने की नीति भी भारत की विदेश नीति को चुनौती पेश करती है। इसलिए आज यह आवश्यक है कि अमेरिका तथा उसके पिछलग्गू देशों के अनुचित राजनीतिक दबाव से

बचने के लिए नई राजनीतिक रणनीति का निर्माण किया जाये।

(3) **आर्थिक चुनौतियां (Economic Challenges) :-** शीत युद्ध के अन्त के बाद राजनीतिक गतिविधियो ंका स्थान आर्थिक गतिविधियों ने ले लिया है। शीत युद्ध के समय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रमुख आर्थिक मुद्दे - गरीबी, विकास रणनीति, व्यापर, धन, ऋण आदि थे। ये आर्थिक मुद्दे संयुक्त राष्ट्र की कार्यसूची का प्रमुख भाग होते थे। परन्तु आज आर्थिक मुद्दे संयुक्त राष्ट्र संघ की बजाय अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) विश्व बैंक (World Bank) तथा विश्व व्यापार संगठन (WTO) के प्रमुख मुद्दे हैं और इन आर्थिक संगठनों पर अमेरिका जैसे विकसित देशों का ही वर्चस्व है। ये देश इन संगठनों के माध्यम से विकासशील देशों पर नई शर्तें थोप रहे हैं। सुरक्षा परिक्षद क स्थाई सदस्य और वीटो पावर के धनी होने के कारण ये देश भारत जैसे देशों पर मनमानी आर्थिक व राजनीतिक शर्तें थोप रहे हैं। इससे भारत स्वतन्त्र विदेश नीति को नहीं अपना सकता। उसे अपनी विदेश नीति का निर्धारण WTO, IMF तथा विश्य बैंक की शर्तों के सन्दर्भ में ही करना पड़ता है।

आज भारत अपने आर्थिक विकास के लिए WTO के नियमों के तहत विदेशी पूंजी निवेश को बढ़ावा दे रहा है। इसके लिए वह अन्धाधुन्ध आर्थिक सुधारों व उदारीकरण के नाम पर लाभ में चलने वाले उद्योगों में भी निजी निवेश को बढ़ावा दे रहा है। इस प्रव ति को रोकना बहुत आवश्यक है। उसे आर्थिक बजार की जटिलताओं को समझकर ही अपनी नीति का निर्माण करना चाहिये, क्योंकि आज भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि आर्थिक उदारीकरण के लाभों को कैसे प्राप्त किया जाये, निर्यात व पूंजीनिवेश के क्षेत्र में सिद्धान्त तथा व्यवहार में तालमेल कैसे बिठाया जाये ताकि स्वतन्त्र विदेश नीति का निर्माण किया जा सके।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत की विदेश नीति के सामने आज कई राजनीतिक, आर्थिक व सामरिक चुनौतियां हैं। इसलिए आज यह आवश्यक है कि नए परिवेश में राष्ट्रीय हितों के अनुकूल विदेश नीति का निर्माण किया जाये। इसके लिए यह आवश्यक है कि भारत की विदेश नीति को सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त करके बहुवैकल्पिक बनाया जाये, राजनय को राष्ट्र हितों के अनुकूल बनाया जाये, आर्थिक चुनौतियों से निपटने के लिए आर्थिक राजनय का विकास किया जाए, क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग का विकास किया जाए, नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना की सीापना की दिशा में प्रयास किया जाएं, गुटनिरपेक्षता को सार्थक बनाया जाये, पड़ोसी देशों के साथ विश्वासपूर्ण सम्बन्ध कायम कियो जायें तथा परमाणु अप्रसार व निःशस्त्रीकरण से सम्बन्धित कार्यक्रमों का स्वागत यिका जाये। यदि ऐसा करने में भारत शांति व समझ से काम ले तो भारत की विदेश नीति अपने सामने आई सभी चुनौतियों से निपटने में सक्षम होगी और भारत के विश्व के सभी देशों के साथ मधुर व सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों का विकास होगा।

अध्याय-16

हिन्द महासागर क्षेत्रीय सहयोग एवं शान्ति का क्षेत्र

(Indian Ocean-Regional Co-operation and Zone of Peace)

विश्व का यह तीसरा बड़ा महासागर प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक विश्व राजनीति और विश्व के महान देशों की विदेश नीति का केन्द्र बिन्दु रहा है। खनिज सम्पदा का अपार भण्डार होने के कारया यह क्षेत्र अमेरिका, सोवियत संघ, चीन, जापान, फ्रांस तथा भारत के लिए प्रतिस्पर्धा का केन्द्र रहा है। हिन्द महासागर का महत्व उसके जल मार्गों और उसके क्षेत्र में उपलब्ध कच्चे माल के कारण ही है। उसके जल मार्ग पश्चिम और पूर्व के देशों के लिए जीवन रेखाएं हैं। इसके महत्व के बारे में 19वीं सदी के आरम्भ में अमरीकी नौसेना विशेषज्ञ अलफ्रेड माहन ने कहा था-"जो भी देश हिन्द महासागर को नियन्त्रित करता है, वह एशिया पर वर्चस्व स्थापित करेगा। यह महासागर सात समुद्रों की कुंजी है जो 21वीं सदी में विश्व का भाग्य निर्धारण अपनी समुद्री सतहों पर करेगा।" माहन का यह कथन आज सर्वथा सत्य है। आज अमेरिका व विश्व के सभी महान देशों की विदेश नीति का निर्धारण यही क्षेत्र करता है। किसी समय 'ब्रिटेन की झील' कहा जाने वाला यह क्षेत्र आज अमेरिका, रूस, फ्रांस, चीन, जापान तथा भारत की साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का अखाड़ा बना हुआ है। आज भारत तथा अन्य गुट-निरपेक्ष राष्ट्र इस क्षेत्र को 'शान्ति का क्षेत्र' घोषित कर चुके हैं और अमेरिका तथा अन्य देशों से इस क्षेत्र में शान्ति स्थापना करने के प्रयासों की उम्मीद रखते हैं। परन्तु फिर भी यह क्षेत्र अशान्ति का क्षेत्र बना हुआ है जो भारत की सुरक्षा के लिए सबसे बड़ी चुनौती है।

हिन्द महासागर का महत्व

(Significance of the Indian Ocean)

हिन्द महासागर विश्व का तीसरा बड़ा महासागर है जो 10,400 किलोमीटर लम्बे तथा 9,600 किलोमीटर चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ है। इस विशाल जल क्षेत्र में सामरिक द ष्टि से महत्वपूर्ण द्वीप-मेडागास्कर, मॉरिशस्, श्रीलंका, भारत के अंडमान निकोबार द्वीप, लक्ष्यद्वीप, द्वीव-दमन, क्रिसमस, मालद्वीप, सिंगापुर, सोकोवा, बहरीन आदि हैं। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले इन द्वीपों तथा तटीय क्षेत्रों पर ब्रिटेन का अधिकार था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इन द्वीपों पर से ब्रिटेन का नियन्त्रण ज्यों-ज्यों ढीला होता गया, वैसे-वैसे अमेरीका, रूस तथा अन्य देशों का प्रभाव इस क्षेत्र में बढ़ता गया। व्यापारिक, आर्थिक तथा सामरिक द ष्टि से महत्वपूर्ण होने के कारण ही इस क्षेत्र में साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा छिड़ गई और यह क्षेत्र अशान्ति का अखाड़ा बन गया। व्यापारिक द ष्टि

से इस क्षेत्र का महत्व इस बात में समझा गया कि यूरोप, पूर्वी अफ्रीका, पश्चिमी, दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी एशिया, सुदूरपूर्व, आस्ट्रेलिया तथा ओशियाना को आपस में जोड़ने वाले जल एवं वायु मार्ग इसी क्षेत्र से होकर गुजरते हैं। आर्थिक द ष्टि से इस क्षेत्र का महत्व इस बात में निहित है कि यहां पर खनिज तेल, रबड, डिन, मैंगनीज, क्रोमियम, लोहा, निकल, टंगस्टन, हीरे, यूरिनियम, जिंक, लिथियम, बेरीलियम आदि खनिज संसाधान उपलब्ध हैं।

हिन्द महासागर में साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा

(Indian Ocean and Imperialist Competition)

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हिन्द महासागर के अधिकांश तटवर्ती क्षेत्रों से ब्रिटेन के प्रभुत्व का अन्त होने लगा तो उस शून्य को भरने की कवायद में सबसे पहले अमेरिका आगे आया। शीत युद्ध की शुरुआत ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका को इस क्षेत्र में साम्यवाद का प्रसार रोकने तथा अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं को अमली जामा पहनाने के लिए प्रवेश करना ही पड़ा। उधर सोवियत संघ भी इस प्रतिस्पर्धा में पीछे नहीं रहा। अमरिका ने हिन्द महासागर में तेल एवं कच्चे माल के स्त्रोतों पर नियन्त्रण स्थापित करने तथा अपने बड़े-बड़े सैनिक अड्डों की श ंखला द्वारा हिन्द महासागर के प्रशान्त एवं एटलांटिक महासागरों से जोड़ने एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण वायु मार्गों एवं जलमार्गों पर नियन्त्रण स्थापित करने के उद्देश्य से इस क्षेत्र में अपना प्रभाव कायम करने की हर सम्भव कोशिश को व्यावहारिक बनाया। 1974 के प्रारम्भ में अमेरिका ने डियागो गार्सिया द्वीप ब्रिटेन से पट्टे पर लेकर वहां अपना आधुनिकतम नौसैनिक तथा वायु सैनिक अड्डा स्थापित किया। इसका भारत ने तीव्र विरोध किया। अमेरिका ने केवल इतना ही कहा कि उसने तो हिन्द महासागर में सोवियत नौसेना की बढ़त हुई गतिविधियों से आशंकित होकर और शक्ति संतुलन कायम करने के उद्देश्य से इस क्षेत्र में नौसेना का विस्तार करने की योजना बनायी है। परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। सामरिक मामलों के एक विशेषज्ञ का कहना है कि अमेरिका ने हिन्द महासागर में अपनी सैन्य शक्ति का जो विस्तार किया है उसके पीछे मूल कारण है :-

(i) अपने राष्ट्रीय हितों में व द्धि व रक्षा,

(ii) अपनी सैन्य शक्ति का विस्तार,

(iii) अपने सैन्य गठबन्धन के देशों में अपने प्रति विश्वास पैदा करना,

(iv) त तीय विश्व की राजनीति को प्रभावित करना तथा सोवियत संघ के प्रभाव को घटाना,

(v) अपनी नौसैनिक शक्ति का विस्तार व प्रदर्शन करना तथा

(vi) हिन्द महासागर को 'शान्ति का क्षेत्र' (Zone of Peace) बनने से रोकना।

इन बातों की पुष्टि इस बात से होती है कि आज हिन्द महासागर में अमेरिका के लगभग 50 युद्धपोत विचरण कर रहे हैं और अमेरिका तथा उसके मित्र राष्ट्रों के 30 सैनिक अड्डे इस क्षेत्र में विद्यमान हैं। अमेरिका द्वारा इस क्षेत्र में स्थापित सैनिक अड्डे व युद्धपोत परमाणु शस्त्रों से लैस हैं। इसके अतिरिक्त अमेरिका ने 1500 लड़ाकू विमान तथा 3 परमाणु पनडुब्बियां भी यहां पर तैनात कर रखी हैं। इस क्षेत्र में अमेरिका ने 2,20,000 सैनिकों वाली एक केन्द्रीय कमान का गठन भी कर रखा है। अमेरिका ने डयागो गार्शिया द्वीप पर बाहर हजार फीट लम्बी हवाई पट्टी का भी निर्माण किया है जहां से उसके वायुयान उड़ान भरते हैं व आवश्यकता पड़ने पर ठहर सकते हैं। हिन्द महासागर में अमेरिका की बढ़ती नौ-सैनिक गतिविधियों से इस क्षेत्र की शान्ति तो भंग हुई है, परन्तु अमेरिका को इससे व्यापारिक, आर्थिक व सामरिक द ष्टि से महत्वपूर्ण लाभ हुए हैं। अमेरिका का कहना है कि उसकी इस क्षेत्र में उपस्थिति शक्ति-संतुलन तथा क्षेत्रीय सुरक्षा की द ष्टि से आवश्यक है, अन्यथा उसके यहां से हट जाने से गम्भीर व हानिकारिक सैन्य असन्तुलन पैदा हो सकता है जो क्षेत्रीय सुरक्षा के लिए किसी भी द ष्टि से हितकर नहीं हो सकता। परन्तु वास्तविकता तो यह है

कि हिन्द महासागर में अमेरिका की उपस्थिति हिन्द महासागर के तटभ्य देशों तथा गुटनिरपेक्ष देशों के लिए खतरनाक है जो अमेरिका की दादागिरी या पुलिसमैन की नीति की परिचायक है और विश्व शांति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा भी है। वस्तुतः यह नव-साम्राज्यवाद की प्रगति का आसान मार्ग है जिस पर अमेरिका लगातार आगे बढ़ रहा है।

शीत युद्ध के वातावरण में अपने राष्ट्रीय हितों व सुरक्षा के द ष्टिगत हिन्द महासागर के क्षेत्र में प्रवेश करने वाली दूसरी प्रमुख महाशक्ति सोवियत संघ था। यद्यपि सोवियत संघ ने अमेरिका की तरह इस क्षेत्र में अपना कोई नौ-सैनिक अड्डा तो स्थापित नहीं किया, लेकिन फिर भी उसके पोत इस क्षेत्र में 1967 से गतिशील हैं। 1968 में पांच युद्धपोतों का एक सोवियत नौ-सैनिक स्कवैड्रन इस क्षेत्र में पहुंचा और अनेक वर्षों तक इस क्षेत्र में विचरण करता रहा। अफगानिस्तान संकट के समय सोवियत संघ ने इस क्षेत्र में अपनी सैनिक गतिविधियां बढ़ा दी थी। इससे तीसरे विश्वयुद्ध का खतरा उत्पन्न हो गया था। परन्तु बाद में सोवियत संघ ने अपनी सैनिक गतिविधियों पर कुछ नियन्त्रण बनाया। इस क्षेत्र में सोवियत संघ द्वारा अपनी सामरिक स्थिति मजबूत करने के लिए अपना शक्तिशाली नौ-सैनिक बड़ा लगातार कायम रखा जाता रहा है। इसके पीछे मूल कारण यह है कि हिन्द महासागर में अमेरिकी हस्तक्षेप उसके हितो को असुरक्षित बना देता है और उत्तर-पश्चिमी हिन्द महासागर में अमेरिकी नौ-सेना की निरन्तर उपस्थिति उसके लिए अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों एवं पनडुब्बियों के प्रक्षेपास्त्रों सहित वास्तविक खतरा उत्पन्न करती है। इसी कारण हिन्द महासागर में सोवियत संघ की उपस्थिति महान शक्ति-संतुलन कायम रखने तथा साम्यवाद की रक्षा के लिए आवश्यक मानी जाती रही है। अमेरिका की विदेश नीति के विपरीत सोवियत संघ बार-बार इस क्षेत्र को शान्ति का क्षेत्र बनाए जाने के विचार का भी समर्थक रहा है। यद्यपि सोवियत संघ के विघटन तथा शीत-युद्ध के अन्त की प्रक्रिया ने सोवियत संघके प्रभाव में कुछ कमी अवश्य ला दी है, परन्तु फिर भी हिन्द महासागर के तटीय क्षेत्रों पर आज भी सोवियत संघ के उत्तराधिकारी रूस का प्रभाव, अमेरिका की तुलना में अधिक है। मेडागास्कर एवं सेशेल्स द्वीपों पर रूस का ही प्रभाव है। सोवियत संघ ने सोमालिया में बारबेरा के पास सामरिक संचरण स्टेशन स्थापित कर लिया है जो परमाणु शक्ति सम्पन्न विध्वंसकों से लैस है एवं इसमें लगभग 20 जहाज हैं। इसके अतिरिक्त सोवियत संघ ने हिन्द महासागर में परमाणु चालित पनडुब्बियां, इलैक्ट्रानिक मछुआरे पोत एवं युद्धपोत भी इस क्षेत्र में छोड़ रखे हैं। इससे वह अमेरिका के प्रभाव को इस क्षेत्र में बढ़ने से रोकने में सफल रहा है। सोवियत संघ की हिन्द महसासागर में उपस्थिति का विश्लेषण करते हुए एक सामरिक विशेषज्ञ ने कहा है कि इस क्षेत्र में सोवियत संघ की उपस्थिति के उद्देश्य हैं :-

(i) स्वयं को महाशक्ति के रूप में प्रदर्शित करना,

(ii) कालासागर व बलादीवास्तोक के बीच चलने वाले जहाजी बेड़े को सुरक्षा प्रदान करना,

(iii) अमेरिकी जहाजों व नौ-सैनिक गतिविधियों पर नजर रखना,

(iv) स्वयं को सामरिक द ष्टि से सुरक्षित बनाना,

(v) अपनी व्यापारिक व आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देना तथा

(vi) इस क्षेत्र को 'शान्ति का क्षेत्र' बनाने में योगदान देना।

वस्तुतः हिन्द महासागर में अपना वर्चस्व कायम करके सोवियत संघ हमेशा ही अपने आर्थिक एवं सामरिक हितों की सुरक्षा के प्रयास करता रहा है और साथ में वह इस क्षेत्र को 'शान्ति का क्षेत्र' बनाने के विचार का बराबर समर्थक भी रहा है।

अमेरिका तथा सोवियत संघ के अतिरिक्त चीन, जापान, आस्ट्रेलिया, फ्रांस तथा भारत भी हिन्द महासागर में अपने-अपने प्रभाव का विस्तार करने के लिए प्रयासरत् रहे हैं। चीन को हमेशा यह

भय रहा है कि कहीं सोवियत संघ स्थलमार्ग के अतिरिक्त उसके जलीय मार्ग को भी अवरुद्ध न कर दे। इसलिए उसने पाक-अधिकृत कश्मीर क्षेत्र में सड़क का निर्माण करके उसे कराची बन्दरगाह तक जोड़ दिया है। अब चीन तंजानिया, जांबिया, जंजीबार में भी नौ-सैनिक अड्डे बनाना चाहता है। उसने बर्मा से कोको द्वीप पट्टे पर लेकर वहां पर अपना बहुत बड़ा नौ-सैनिक अड्डा भी बना लिया है। जापान भी भारत एवं अन्य तटवर्ती देशों से खनिज एवं अन्य कच्चा माल का आयात करने तथा इन देशों को तैयार माल निर्यात करने के उद्देश्य से इस क्षेत्र में अपने व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा के लिए अपनी नौ-सैनिक गतिविधियां बढ़ाने पर विचार कर रहा है। फ्रांस के भी इस क्षेत्र में जिबौरी रियूनियन, क्रोजेट, एमबर्टडस एवं कैंडलेन आदि सामरिक महत्व के अड्डे हैं। री यूनियन द्वीप पर भी फ्रांस का ही अधिकार है। इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया ने भी इस क्षेत्र में अपने युद्ध-पोत रखने की घोषणा कर दी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हिन्द महासागर में अमेरिका, रूस, जापान, फ्रांस व आस्ट्रेलिया का प्रवेश इस क्षेत्र की शान्ति व्यवस्था को सबसे बड़ी चुनौती पेश करता है।

भारत व हिन्द महासागर

(India and Indian Ocean)

भारत को तीन तरफ से घेरने वाला हिन्द महासागर आर्थिक, राजनीतिक, सामरिक व सांस्कृतिक द ष्टि से भारत के लिए महत्वपूर्ण रहा है। भारत का अधिकतर विदेशी व्यापार समुद्री रास्ते ही होता है। हिन्द महासागर पर किसी अन्य महाशक्ति का वर्चस्व भारत के व्यापार में बाधक बन सकता है। इसलिए भारत शुरु से ही इस क्षेत्र में सैन्यकरण के विरुद्ध रहा है। उसने हमेशा ही हिन्द महासागर में अमेरिका तथा अन्य देशों की बढ़ती सैन्य गतिविधियों के प्रति चिन्ता व्यक्त की है। भारत की लम्बी तटीय सीमा भी इस क्षेत्र में सुरक्षा व्यवस्था की द ष्टि से भारत को हिन्द महासागर के बारे में विचार करने पर विवश करती है। हिन्द महासागर में स्थित सामरिक द ष्टि से महत्वपूर्ण द्वीपों की रक्षा करना भी भारत की विदेश नीति के ध्येयों को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण माना जाताा है। इसके अतिरिक्त तटीय देशों के साथ जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भारत ने बनाए हैं, वे इसी महासागर के द्वारा कायम हुए हैं। हिन्द महासागर में बढ़ती साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा से भारत की अर्थव्यवस्था व सुरक्षा-व्यवस्था दोनों को खतरा उत्पन्न हो सकता है। इसी कारण भारत बार-बार इस क्षेत्र को 'शान्ति का क्षेत्र' (Zone of Peace) घोषित करने तथा अन्य देशों को इस क्षेत्र को छोड़कर चले जाने की बात दोहराता रहा है। इसके साथ ही भारत ने अपने आर्थिक, व्यापारिक, सामरिक व राजनीतिक हितों के द ष्टिगत एक शक्तिशाली नौ-सैनिक बड़ा भी कायम कर लिया है। भारत की समुद्री सीमा 12 समुद्री मील है जिसमें किसी भी देश का वायुयान या पोत बिना अनुमति के प्रवेश नहीं कर सकता। वस्तुतः हिन्द महासागर भारत की सुरक्षा तथा विदेश नीति की एक प्रमुख कड़ी बना गया है।

हिन्द महासागर व शान्ति का क्षेत्र

(Indian Ocean and Zone of Peace)

भारत प्रारम्भ से ही अपनी सुरक्षा के नाम पर इस क्षेत्र में अपना प्रभुत्व जमाने की बजाय इस क्षेत्र में पड़ोसी देशों के आपसी सहयोग पर आधारित व्यवस्था व शान्ति का क्षेत्र बनाने के प्रयासों का समर्थक रहा है। भारत तटीय व भू-बद्धय राष्ट्रों के सहयेाग से किसी भी प्रकार के सैन्यकरण से इस क्षेत्र को दूर रखने की जोरदार अपील करता रहा है। इसी कारण उसने कभी इस क्षेत्र में अपनी सैन्यवादी गतिविधियां शुरु नहीं की। उसने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के माध्यम से इस क्षेत्र को शान्ति का क्षेत्र बनाने का पक्ष लिया है। हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बनाने का सीधा अर्थ यह है कि इस क्षेत्र में बाह्य शक्तियों की सैन्य उपस्थिति न रहे, उनके सैनिक अड्डों तथा प्रतिस्पर्धा की

समाप्ति हो, शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए सामुद्रिक स्वतन्त्रता हो और शांति का क्षेत्र बनाने के लिए सहयोग प्राप्त हो। इसी कारण हिन्द महासागर में महाशक्तियों की घुसपैठ का राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निरन्तर विरोध होता रहा है। इस विरोध का झण्डा सर्वप्रथम भारत ने ही खड़ा किया और धीरे-धीरे अन्य तटवर्ती देश भी भारत के साथ मिलकर इस आवाज को बुलन्द करने में जुट गये।

गुटनिरपेक्ष देशों द्वारा सबसे पहले 1964 में काहिरा सम्मेलन में विश्व समुद्रों को शान्ति का क्षेत्र (Zone of Peace) घोषित करने पर जोर दिया गया। बाद में 1970 के लुसाका गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में भारत ने इस मांग का मारिशस, बंगलादेश तथा श्रीलंका ने भी समर्थन किया। 26वें अधिवेशन में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा हिन्द महासागर को 16 दिसम्बर, 1971 को शांति का क्षेत्र घोषित कर दिया गया। इस घोषणा पत्र को 13 देशों ने तैयार किया जिसमें भारत, इराक, कीनिया, ईरान, जाम्बिया, तेजानिया, बुरुण्डी, युगाण्डा, यमन, यूगोस्लाविया, श्रीलंका, सोमालीलैण्ड तथा स्वाजीलैण्ड शामिल थे। इस घोषणापत्र में कहा गया कि "हिन्द महासागर को उन सीमाओं में, जिन्हें अभी निर्धारित किया जाना है, इसके ऊपर फैले आकाशीय क्षेत्र तथा उसके समुद्र तल सहित इस प्रस्ताव द्वारा चिरकाल के लिए शांति का क्षेत्र घोषित किया जाता है।" इस घोषणापत्र में बड़े देशों से आह्वान किया गया कि वे हिन्द महासागर में सैनिक उपस्थिति का विस्तार रोकें, अपने फौजी ठिकाने व अड्डे, नाभिकीय संयन्त्र और जनसंहार को शस्त्रास्त्र हटाने में पहल करें तथा हिन्द महासागर के तटवर्ती या निकटवर्ती किसी भी देश की सम्प्रभुता, क्षेत्रीय अखण्डता व स्वतन्त्रता को खतरे में न डाले। इसी तरह के प्रयास 1976 में श्रीलंका में हुए गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में भी किए गए। 1979 में रूस के प्रधानमन्त्री कोसीगिन ने भी भारत यात्रा के समय इस बात पर पूरी सहमति व्यक्त की कि हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बनाया रखा जाये। उन्होंने स्वयं भी इस क्षेत्र में अपना कोई सैनिक अड्डा न बनाने का वचन दिया। परन्तु साथ में यह भी कहा कि यदि अमेरिका इसमें सहयोग नहीं देता है तो यह विचार प्राप्त नहीं हो सकता है।

भारत हमेशा ही शान्ति की घोषणा को व्यावहारिक रूप देने के लिए उन सभी विचारों का समर्थक रहा है जो इस पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने के बारे में दिए जाते रहे हैं। 1979 में संयुक्त राष्ट्र महासभा तथा 1981 में कोलम्बो गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में इस बारे जब व्यापक चर्चा हुई तो भारत ने उसका जोरदार समर्थन किया। उसके बाद 1983 में नई दिल्ली में गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में भी इस बात पर ध्यान दिया गया। परन्तु 1991 में शीत युद्ध के अन्त व सोवियत सेघ के विघटन के बाद भारत को गुटनिरपेक्षता की अप्रासंगिकता के द ष्टिगत इस क्षेत्र को शांति का क्षेत्र घोषित करना तो दूर, बल्कि इस विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन तक बुलाना भी कठिन हो गया। फिर भी 1993 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने हिन्द महासागर को शांति का क्षेत्र बनाने का संकल्प पारित किया और 1971 की घोषणा को ही दोहराया। इससे हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र घोषित करने के विचार को बल मिला। परन्तु अमेरिका ने कभी भी इस बात का समर्थन नहीं किया कि हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बना दिया जाये। रूस, चीन, फ्रांस, आस्ट्रेलिया व जापान द्वारा हिन्द महासागर क्षेत्र में अनाधिकृत प्रवेश का विचार व प्रयास भी इस विचार में बाधक रहे हैं कि हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र बना दिया जाये। इन देशों के संकीर्ण व स्वार्थपूर्ण राष्ट्रीय हित इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। स्वयं तटवर्ती राष्ट्र भी एकजुट होकर इस विचार को गति देने में नाकाम है।

हिन्द महासागर क्षेत्रीय सहयोग

(Indian Ocean Rgional Co-operation)

अमेरिका की हठधर्मिता व दादागिरी के कारण हिन्द महासागर को शान्ति का क्षेत्र तो नहीं

बनाया जा सका, लेकिन इस क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग की प्रक्रिया ने अवश्य जन्म ले लिया। सोवियत संघ के विघटन के बाद हिन्द महासागर में शक्ति संघर्ष में कमी आई और नए आर्थिक सहयोग की संभावनाएं उभरने लगी। शीत युद्ध के अन्त ने इस क्षेत्र के देशों को क्षेत्रीय संगठन बनाने का मार्ग दिखाया। यूरोपीय आर्थिक समुदाय तथा आशियान (ASEAN) की सफलता ने तटीय देशों को सहयोग करने पर विवश कर दिया। इसी कारण हिन्द महासागर रिम में भी आार्थिक क्षेत्रीय समूह का जन्म हुआ। त तीय विश्व के देशों द्वारा नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विचार ने भी इस क्षेत्र के देशो को आपसी सहयोग करने का मार्ग दिखाया। शीतयुद्ध के बाद आर्थिक मुद्दों के बढ़ते महत्व के कारण तथा राष्ट्रों की पारस्परिक अन्तनिर्भरता व विश्वीकरण की प्रक्रिया ने भी क्षेत्रीय सहयोग को नई दिशा दी।

हिन्द महासागर रिम में सहयोग की शुरुआत का श्रेय भारत, मॉरिशस, दक्षिण अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया को जाता है। क्षेत्रीय सहयोग के विचार का प्रारम्भ 1993 में दक्षिण अफ्रीका के विदेश मन्त्री पिक बोथा की भारत यात्रा के समय हुआ। इस यात्रा के दौरान पहली बार पिक बोथा ने हिन्द महासागर में रिम व्यापार गुट बनाने का विचार व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि शीत युद्ध के अन्त के बाद राजनीतिक मुद्दों की बजाय आर्थिक मुद्दे अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। विश्व के देशों में बढ़ती आर्थिक पारस्परिक निर्भरता तथा विश्वीकरण की प्रक्रिया भी क्षेत्रीय सहयोग की मांग करती है। इस यात्रा के दौरान बोथा ने 1994 के डरबन में हिन्द महासागर देशों का सम्मेलन बुलाने की बात कही। बाद में 1995 में दक्षिण अफ्रीकी राष्ट्रपति नेल्सन मंडेला ने भी इसी बात को दोहराया। इन प्रयासों को साकार रूप देने के लिए मार्च 1995 में प्रथम अधिकारी स्तर की बैठक मॉरिशस में हुई। इस बैठक में हिन्द महासागर के सात देशों - भारत, मॉरिशिस, कीनिया, ओमान, दक्षिण अफ्रीका, सिंगापुर व आस्ट्रेलिया ने भाग लिया। इस बैठक को एम-7 कहा गया। इसमें पर्यावरण, नशीले पदार्थों से सुरक्षा, व्यापार एव सेवाएं, मानव संशाधन विकास, उद्योग, विज्ञान, तकनीकी सहयोग, सूचना नेटवर्क आदि बातों को सहयोग की कार्य सूची का विषय बनाया गया। इस बैठक में हिन्द महासागर क्षेत्रीय सहयोग सम्मेलन बुलाने पर भी विचार किया गया। इसी सन्दर्भ में पर्थ में जून 1995 में एक सम्मेलन हुआ जिसमें 23 देशों के 122 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इससे हिन्द महासागर रिम-क्षेत्रीय सहयोग समूह की स्थापना के प्रयासों को बल मिला और 6 मार्च, 1997 को भारत तथा तेरह अन्य (कुल 14) देशों के सहयोग से 'हिन्द महासागर तटीय क्षेत्रीय सहयोग संगठन' (हिमतक्षेस) की स्थापना हो गई। इस संगठन ने एम-7 की बैठक में निर्धारित लक्ष्यों को ही स्वीकार कर लिया और अपने चार्टर के अनुच्छेद 3 में उन्हें उचित स्थान दिया।

हिन्द महासागर तटीय क्षेत्रीय सहयोग संगठन (हिमतक्षेस) के उद्देश्य

(Objectives of Indian Ocean Rim Association for Regional Co-operation - IORARC)

यह संगठन उन सभी देशों के हितों का संरक्षक है जो हिन्द महासागर के तट पर स्थित हैं और इन देशों की संख्या 47 है। प्रारम्भ में इस संगठन में कुल 14 देश शामिल थे, अब यह संख्या कुछ अधिक है। यह संगठन ऐसा अद्‌भुत अन्तर्राष्ट्रीय सगठन है जो इस क्षेत्र के देशों के आर्थिक हितों को विश्वीकरण के दुष्प्रभावों से बचाने का प्रयास करता है। इस संगठन के उद्देश्य वहीं हैं जो M-7 की बैठक में निर्धारित किये गये थे। ये उद्देश्य हैं :-

(1) क्षेत्र व इसके देशों में निरन्तर एवं सन्तुलित विकास को बढ़ावा देना।

(2) क्षेत्र के देशों व सदस्य देशों के नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार व कल्याण करना।

(3) इस क्षेत्र में वस्तुओं के आवागमन, सेवाओं, पूंजी निवेश व तकनीकी ज्ञान के मार्ग में आने वाली बाधाओं पर नियन्त्रण करना।

(4) अन्तर्राट्रीय मंचों पर विश्व आर्थिक मुद्दों पर सदस्य देशों के बीच बातचीत के माध्यम से सहयोग को बढ़ावा देनां

(5) सदस्य देशों के व्यापार, उद्योग, शैक्षणिक संस्थानों, बुद्धिजीवियों, आम जनता आदि के बीच आदान-प्रदान व घनिष्ठ सहयोग में व द्धि करना।

(6) आर्थिक सहयोग के ऐसे कार्यक्रमों को गति देना जिनमें व्यापार, पर्यटन, सीधा पूंजी निवेश, वैज्ञानिक व तकनीकी आदान-प्रदान व मानव संसाधन शामिल हो।

(7) बौद्धिक स्तर पर सहयोग, प्रशिक्षण व विश्वविद्यालयों के स्तर पर सहयोग व सम्पर्क को बढ़ावा देना।

(8) विश्व-स्तरीय आर्थिक मुद्दों पर विचार-विमर्श करनां

(9) क्षेत्रीय व्यापार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सीमा शुल्कों में कटौती तथा आयात-निर्यात को प्रोत्साहन देना।

इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए 'हिमतक्षेस' निरन्तर प्रयासरत् है। इसकी मन्त्री स्तर की बैठक 1999 में मोजाम्बिक में हुई। इसमें नए देशों को सदस्य बनाने पर विचार किया गया। इसके प्रयासों से ही इस क्षेत्र में सामुदायिक भावना जाग त हुई है। इससे सहयोग की प्रक्रिया को नई दिशा मिली है। इसकी वर्तमान स्थिति इस बात को प्रबल बनाती है कि आने वाले समय में यह संगठन क्षेत्रीय सहयोग का अनूठा उदाहरण पेश कर सकता है। परन्तु इस क्षेत्र को 'शान्ति का क्षेत्र' घोषित करने पर इसके सभी देशों में आपसी सहमति का अभाव इसके मार्ग में आज भी बाधक है। यदि इस बात पर सहमति प्राप्त करके सहयोग की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जाये तो यह संगठन अन्य क्षेत्रीय संगठनों की तरह प्रभावकारी भूमिका अदा कर सकता है।

इकाई-V

महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions)

Q. 1 अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश के सन्दर्भ में भारत की विदेश नीति की व्याख्या कीजिए।

Q. 2 शीतकालीन अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश का भारतीय विदेश नीति पर क्या प्रभाव पड़ा ?

Q. 3 शीत युद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश तथा भारतीय विदेश नीति के सम्बन्धों का परीक्षण कीजिए।

Q. 4 भारतीय विदेश नीति की प्रमुख उपलब्धियों व चुनौतियों की व्याख्या कीजिए।

Q. 5 हिन्द महासागर के घटनाक्रम का भारतीय विदेश नीति पर क्या प्रभाव पड़ा ?

Q. 6 हिन्द महासागर को संयुक्त राष्ट्र संघ में शांति का क्षेत्र (Zone of Peace) घोषित करवाने में भारत की क्या भूमिका रहीं ?

Q. 7 हिन्द महासागर क्षेत्रीय सहयोग संगठन (IORARC) पर संक्षिप्त निबन्ध लिखो।

Q. 8 भू-मण्डलीकरण का भारत की विदेश नीति पर प्रभाव का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

Q. 9 हिन्द महासागर में महाशक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता की व्याख्या कीजिए। वर्तमान सन्दर्भ में स्थिति का मूल्यांकन कीजिए।

Suggested Readings

A. Appadorai	The Domestic roots of India's Foreign Policy
A. Appadorai and M.S.Rajan	India's Foreign Policy and Relations
A.P. Rana	The Imperatives of Non-alignment : A Conceptual Study of India's Foreign Policy Strategy in the Nehru period
B.S.M. Murti	Nehru's Foreign Policy
J. Bandyopadhyaya	The Makingof India's Foreign Policy : Determinants, Institutions, Process and Personalities.
K.K. Pathak	Nuclear Policy of India
Leela Yadava	UN Policy in South Asia
M.S. Rajan	Studies in India's Foreign Policy
Prem Lata Sharma	India's Foreign Policy
आर.एस. यादव	भारत की विदेश नीति
Surjit Mansingh	India's Search of Power : Indira Gandhi's Foreign Policy
Surendra Chopra ed.	Studies in India Foreign Policy
V.P. Dutt	India's Foreign Policy